तुम पावक महँ करहु निवासा

: प्रकाशक :

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय

चित्रकूट (उ०प्र०)

卐 श्रीः 卐

तुम पावक महँ करहु निवासा

(नवदिवसीय प्रवचनों का संग्रह)

प्रवचनकर्ता

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय कविकुलरत्न वाचस्पति

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

जीवनपर्यन्त कुलाधिपति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय,

चित्रकूट (उ.प्र.)

प्रकाशक

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय,

चित्रकूट (उ.प्र.)

पुरोवाक्

परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म परमात्मा सर्वान्तर्यामी करुणावरुणालय भगवान श्री राघवेन्द्र की अकारण करुणा जब जीव पर होती है तब राम सुयश रूप जलवर्षण के लिये सन्त रूप मेघों का अनायास शुभागमन होता है-

जब द्रवै दीन दयाल राघव साधु संगति पाइये।
जेहिं दरस-परस समागमादिक, पाप राशि नसाइये।।

भगवान श्रीसीताराम जी की यशस्विनी अमृतमयी मन्दाकिनी में मज्जन कराकर हम जैसे कलि कलुषित जीवों का निरन्तर कलुष प्रक्षालन करने वाले, प्रखर पाण्डित्य से परिपूर्ण, शब्द साधना में निरत, सात्विक ऊर्जा से देदीप्यमान, प्रखर मेधासम्पन्न, परमपूज्य प्रातःस्मरणीय गुरुदेव भगवान, जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट के जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, दिल्ली में अति आवश्यक कार्य हेतु पधारे। दिन भर अनवरत श्रम और सायंकाल उस श्रम को दूर करने के लिये अद्भुत एवं दिव्य ऐकान्तिक सत्संग। नासिक में महाकुम्भ के पावन पर्व पर अमृतमयी, रसमयी कथागंगा की जो धारा 'तुम पावक महँ करहु निवासा' प्रवाहित की उसी विषय को केन्द्र बिन्दु बनाकर नवदिवसीय प्रवचन श्रृंखला का शुभ संयोग घटित हुआ। गुरुवरसदनबिहारीकक्ष, गाजियाबाद में गुरुवर की निर्व्याज करुणा एवं अहैतुकी कृपा से नासिक कुम्भ के अमृत बिन्दुओं से हम सब भी सिक्त एवं धन्य हो गये। अलौकिक सुगन्ध से परिपूर्ण नौ पुष्पांजलियाँ गुरुदेव ने राघव जी के श्रीचरणों में समर्पित कर हम लोगों को दिव्य प्रसाद वितरित कर धन्य कर दिया और वही प्रसाद अब पुस्तकाकार होकर आपके समक्ष प्रस्तुत है। गुरुदेव के अनुसार "ये पुष्प ऐसे पुष्प हैं जिनसे मानस जी के सिद्धान्तों का सारसर्वस्व समझा जा सकता है।"

प्रथम पुष्प के प्रारम्भ में ही गुरुदेव ने चित्रकूट के माध्यम से प्रभु के नाम, रूप, लीला और धाम पर विश्वास एवं पञ्चवटी के माध्यम से प्रभु की लीलाओं बाल लीला, विवाह लीला, वन लीला, रण लीला और राज्य लीला पर विश्वास करने का सुन्दर सिद्धान्त निरूपित किया। प्रभु के श्रीचरणों में गहन आस्था एवं अचल विश्वास रूप वटवृक्ष की छाँव में ही प्रभु श्रीराम अपनी कुटिया छवाते हैं।

द्वितीय पुष्प में प्रभु श्रीराम धीरललित नायक की भूमिका हेतु तत्पर जानकी जी से अग्निवास का प्रस्ताव रखते हैं। प्रभु के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चा

स्वरूप की व्याख्या के साथ ही 'अर्थपञ्चक' के सिद्धान्त के माध्यम से स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप और विरोधिस्वरूप का सुन्दर विवेचन है।

तृतीय पुष्प में निर्गुण, सगुण लीला की बहुत सुन्दर व्याख्या है और हमारे श्रौत-सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

चतुर्थ पुष्प में प्रभु नरलीला चिकीर्षा का प्राकट्य भगवती जी के समक्ष करते हैं, परन्तु लक्ष्मण जी को यह बताना उचित नहीं मानते क्योंकि उनकी मान्यता है कि इससे ललित नरलीला का आनन्द नहीं आएगा। उसमें जनकनन्दिनी जी की समर्पण शीलता का सुन्दर उदाहरण है कि पति के कार्य हेतु यदि पत्नी को अग्नि में भी कूदना पड़े तो वह सहर्ष स्वीकृति दे दे। ललित नरलीला में माया की सीता की आवश्यकता है क्योंकि इस लीला में प्रभु का साधारणीकरण होगा जो हमारी सीताजी को कथमपि स्वीकार्य नहीं होगा।

पञ्चम पुष्प में जयन्त के प्रसंग से प्रभु जानते हैं कि सीताजी इतनी क्षमाशील हैं कि वो निज अपराध करने वाले को भी जब क्षमा कर सकती हैं तो राक्षसों का वध तो स्वीकारेंगी नहीं। ये तो कृपाशक्ति हैं और इस समय क्रोधशक्ति की आवश्यकता है।

षष्ठ पुष्प में सीता जी की महनीय कृपा को अभिव्यक्त करता **'सिया स्वामिनी हैं मलिकिनी हमारी'** गीत है। उसमें सीता तत्व का रस एवं माधुर्य समाया हुआ है। राघवेन्द्र जी विविध अग्नियों में रहने का प्रस्ताव रखते हैं। बाल्मीकि रामायण में जानकी जी के अग्निवास का प्रकरण नहीं है। भक्तमाल के सुमेरु श्रीतुलसीदास जी ने सौ करोड़ रामायणों का सार लेकर श्रीरामचरितमानस जी की रचना की।

सप्तम पुष्प में प्रभु श्रीराम यदि यह संकेत न करते कि अग्नि के माध्यम से आप मुझमें समा जाइये तो कदाचित् जानकी जी स्वीकार न करतीं क्योंकि अयोध्या में रामजी से अलग होने की बात की गई तो उन्होंने अपने वैदुष्यपूर्ण तर्कों से सबको निरुत्तर कर दिया। तीन दोहों में राम जी ने सीता जी को समझाया तो तीन ही दोहों में उन्होंने सभी पक्षों व सिद्धान्तों का सहजता से खण्डन किया।

अष्टम पुष्प में धीरललित नायक की विदग्धा नायिका माया की सीता का प्राकट्य, रावण द्वारा माया की सीता का हरण और जानकी जी के अग्नि में प्रवेश करने की लीला का वर्णन है।

नवम पुष्प में कथा विश्राम की ओर चलने लगी है। श्रुतियों के संसार में जगत में सत्य रूप से प्रसिद्ध 'श्रीसूक्त' का भगवान राम पाठ करते हैं और फलश्रुति में

कहते हैं कि जो इन सोलह ऋचाओं में आपकी स्तुति करेगा उसे श्री मिलेगी। अग्निदेव ने स्वयं ब्राह्मण के रूप में प्रकट होकर भगवान राम को सीता जी को सौंप दिया।

एतावता, सीता जी के अग्निवास सम्बन्धी सभी गूढ़ जिज्ञासाओं का समुचित समाधान विस्तृत रूपों में वर्णित है। धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न, दिव्य स्मरण शक्ति से युक्त सम्पूर्ण धर्माकाश पर सूर्य के समान देदीप्यमान, सतत तप में रत एवं दृढ़ संकल्प वाले, राघव के वात्सल्य रस से सराबोर विश्व की एक विलक्षण विभूति हैं। शब्दों के अर्थ व उनकी व्युत्पत्ति लगाने में उनकी चमत्कारिक प्रतिभा का निदर्शन निरन्तर मिलता है। श्रीरामचरितमानस वेद, पुराण, दर्शन एवं धर्म से समन्वित एक ऐसा महासागर है जिसमें अनन्त अनमोल, दिव्य रत्न समाहित हैं। गुरुदेव अपनी पराऋतम्भरा प्रज्ञा से उन दिव्य अनमोल रत्नों का अन्वेषण करके, अपनी लोकोत्तर प्रतिभा से एक जौहरी की भाँति उन्हें तराश कर सुन्दरता से सँवाकर जनता के समक्ष उपस्थापित करने में अद्वितीय हैं। श्रीरामचरितमानस एवं भागवतादि कथाओं के प्रच्छन्न गूढ़तम रहस्यों के उद्घाटन में गुरुदेव की प्रत्युत्पन्नमति का अलौकिक चमत्कार देखते ही बनता है। परम पूज्य, परम तेजस्वी परमाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी द्वारा प्रणीत इस अनुसन्धानपरक ग्रन्थ में जहाँ एक ओर श्रीसीताराम जी की समर्चा है वहीं दूसरी ओर जीवन के विविध पक्षों एवं सिद्धान्तों की सुन्दर व्याख्या भी है। अतएव विपश्चित्पुंगवों और सभी भगवद्भक्तों के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय होगा। नौ प्रवचनात्मक पुष्पों से ग्रथित यह माला विश्वभारती के हृदय का हार बने और अपनी दिव्य अनुपम सुगन्ध से संसार को सुवासित करे ऐसी मंगलकामना है।

विद्यावारिधि के वारिधि में कितने रत्न समाये!
लहर लहर हर आवर्तन में रत्न ढूँढकर लाये।।
तुम पावक महँ करहु निवासा ग्रन्थरत्न अद्भुत है।
नासिक कुम्भ पर्व का इसमें छलक रहा अमृत है।।

श्रीराघवः शन्तनोतु

श्रीगुरुवरचरणानुरागिनी
डॉ. श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव

नमो वाक्

परिपूर्णतम, परात्पर, परमात्मा, सर्वसर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान, सर्वहृदयनिवासी, सर्वगुणगणराशि, सर्वाधिपति भगवान् श्रीसीताराम जी की जब जीव पर भुवनपावनी-अहैतुकी कृपा होती है तभी उसके जीवनद्वार पर भगवद्रूप, परमकारुणिक, अमलात्मा, योगीन्द्रमुनीन्द्र सद्गुरुदेव भगवान् अपनी निर्व्याज करुणा करके उपस्थित होते हैं। ऐसा ही शुभ संयोग प्रस्तुत नवदिवसीय प्रवचनशृङ्खला में उपस्थित हुआ। हमारे पूज्यपाद गुरुदेव श्रीराघव परिवार के परमाराध्य एवं विश्व की विलक्षण विभूति धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज इन नवदिवसीय प्रवचन पुष्पों के प्रणेता हैं। विश्वविद्यालयीय व्यस्तताओं के तथा धार्मिक साहित्य के प्रणयन के चलते पूज्य आचार्य श्री द्वारा भगवान् श्रीसीताराम जी के नामरूपलीला तथा धाम का निरन्तर चिन्तन, नित्यनवीन दिव्य उन्मेषों का अवतरण कराता रहता है। सितम्बर २००३ में अपने दिल्ली प्रवास के समय पूज्य जगद्गुरु जी ने गाजियाबादीय श्रीराघवकक्ष में अपनी नौ वाक्पुष्पाञ्जलियों से जहाँ एक ओर अपने प्राणधन श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार की दिव्य एवं ऐतिहासिक समर्चा की वहीं दूसरी ओर भगवद्भक्तों को श्रीसीतारामभक्तिभागीरथी में अवगाहन कराकर उनका जीवन सार्थक किया। कथा को अपने जीवन का साधन नहीं साध्य मानने वाले पूज्य जगद्गुरु जी ने प्रस्तुत नौ दिव्य पुष्पों में श्रीरामचरितमानस के प्रायः सभी सिद्धान्तों का सारसर्वस्व व्याख्यायित किया है। भगवान् श्रीराम ने पञ्चवटी में भगवती श्रीसीता जी को अग्निदेव के संरक्षण में रहने की आज्ञा क्यों दी? उसके पीछे कौन-कौन से गूढ रहस्य थे, कौन से वे उद्देश्य पूर्ण हुए जो श्रीसीता जी की प्रत्यक्ष उपस्थिति में सम्भव नहीं थे आदि अनेक जिज्ञासाओं का ऐतिहासिक समाधान इन प्रवचनों में सविस्तार स्पष्ट हुआ है।

आज गलीमौहल्लों, नगरों और महानगरों में भगवत्कथाओं के भव्यतम आयोजन हो रहे हैं। दूरदर्शन, समाचारपत्र आदि प्रचारतन्त्रों के माध्यम से भी धार्मिक संस्कार और आस्था को सुरक्षित रखने के प्रयास किये जा रहे हैं, किन्तु इन दिव्य कथाओं में छिपे हुए रहस्यों को समझकर समझाने में बहुत कम महानुभाव सक्षम हैं। प्रदर्शन की चकाचौंध में दर्शन दब गया है। सम्पन्नता के प्रवाह में प्रपन्नता बह रही है तथा मादकता के साम्राज्य में मोदकता अपनी शुद्धता खो चुकी है। ऐसे उल्बण वातावरण में भगवदीय कथाओं में प्रच्छन्न रहस्यों को उद्घाटित करने में और भारतीय जीवन

मूल्यों एवं आदर्शों के संस्थापक धर्मशास्त्रों की वास्तविक व्याख्या करने में पूज्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज जैसे महनीय एवं लोकोत्तर व्यक्तित्व का प्रवचन एवं लेखन अपना विशिष्ट औचित्य रखता है। श्रीरामचरितमानस तथा श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा से मानवसमाज की व्यथा को शान्त करने में भगवदीय भावों की भूमिका को पूज्य आचार्य श्री अधिक उपादेय मानते हैं इन भावों से श्रोता सांसारिक सुखों को भूलकर ईश्वर के आनन्द समुद्र में डुबकी लगाने लगता है। रघुवीरपदपाथोजमधुकर गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज द्वारा श्रीमानस जी में निबद्ध अन्यून भगवदीय भावों को अपनी पराऋतम्भरा प्रज्ञा से खोजकर तथा अपनी लोकोत्तर प्रतिभा एवं स्मृति से सँवारकर जनता जनार्दन के सम्मुख उपस्थापित करने में पूज्य गुरुदेव वास्तव में अद्वितीय हैं।

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

जैसी अनेक दृष्टकूट चौपाइयों का समय-समय पर पूज्य गुरुदेव ने गूढार्थ स्पष्ट किया है और अपना कृपा प्रसाद विश्वभारती के प्रसाद में सप्रेम वितरित भी किया है। जो जितनी पात्रता रखता है उतना प्रसाद लेकर अपना जीवन धन्य करता है। सनातनधर्म की यह अद्वितीय उपलब्धि है कि इसपर भगवान् की विशेष अनुकम्पा है। इसी अनुकम्पा से जगत के सर्वविध कल्याण हेतु ऐसे दिव्यांश अवतरित होते रहते हैं जो सनातनधर्म की मान्यताओं को पुनःस्थापित करते हैं। जागतिक विभीषिकाओं से इस धर्म की रक्षा करते हैं और मानवहृदय में इसके पालन की प्रेरणा देते रहते हैं। ऐसे दिव्यांशों की उपस्थिति से धर्म और राष्ट्र दोनों ही कृतार्थ होते हैं। धार्मिक जनता का यह सौभाग्य है कि पूज्यपाद जगद्गुरु जी महाराज जैसे आप्तपुरुष महापुरुष आज अन्यून शरीरभाजाओं का मार्गदर्शन कर रहे हैं विद्वानों को सन्तोष दे रहे हैं और भगवद्भक्तों को रामानन्द प्रदान कर रहे हैं।

इस प्रवचन शिविर में ऐसे-ऐसे नवीन-सरस और चमत्कारी भावों का अवतरण हुआ है जिनसे सुधी पाठक पूज्यपाद गोस्वामी जी महाराज की प्रसन्नगम्भीरवाणी का अनुभव तो करेंगे ही पूज्यपाद जगद्गुरु जी द्वारा सहजभाव से प्रस्तुत करने की सुन्दर शैली के भी भरपूर में दर्शन करेंगे। आधुनिक युग के प्रवाह में बहकर धर्मकर्म से विमुख होने वाले तथाकथित सुधारकों को जहाँ पूज्य आचार्यश्री साधिकार सावधान करते देखे जाते हैं वहीं वेदादिधर्मशास्त्रों में सुस्थिर मानदण्डों के अनुसार जीवन को सार्थक बनाने का हितोपदेश करते हुए भी देखे जाते हैं। यही कारण है कि इनके शिक्षा शिविरों में श्रोतागण अपनी हस्ती को राम जी की मस्ती में लुटाते देखे जाते हैं।

"तुम पावक महँ करहु निवासा" नामक प्रस्तुत पुस्तक पूज्यपाद जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की धार्मिक जनता पर अकारणकरुणा का प्रसाद है। श्रीमानस जी पर पूज्यआचार्यश्री की अगाध श्रद्धा है अनूठा विश्वास और अद्वितीय पकड़ है। इनका प्रत्येक वाक्य साधनासम्पन्न और निष्ठाजन्य होता है। एक-एक चौपाई पर महिनों महिनों तक शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत करना आपश्री के लिए सहज कार्य है। गुरुदेव कथा को जीते हैं और इसका प्रेम रस पीते और पिलाते हैं। प्रातःकाल से निशीथ काल तक की सभी शास्त्रीय क्रियाओं को सानन्द सम्पन्न करते हुए भी पूज्यपाद आचार्यश्री शास्त्र के पन्ने पलटते रहते हैं निमीलित नेत्रों से वे वही सब कुछ निहारते रहते हैं जो अपने प्यारे-प्यारे भगवान् श्रीसीताराम जी के भक्तों के लिए कल्याणकारी हो। इनका मन्दस्मित हास जहाँ भगवद्भक्तों को प्रमुदित करके भजनानन्द में लगाता है वहीं इनका गम्भीर चिन्तन धर्म और राष्ट्र की श्रीवृद्धि के लिए सभी को संघटित रहने का परामर्श देता है। श्रीचरणों के शब्दों में ही-"हम तो अपने आनन्द के लिए भगवान को प्रेम से कथा सुनाते हैं यह आपका सौभाग्य कि आपको उस कथा से आनन्द आता है।" ऐसे तपःपूत महात्मा और भारतीयता के प्रबलपुरोधा एवं जगद्‌गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय के जीवनपर्यन्त कुलाधिपति पूज्यपाद जगद्‌गुरु जी की विशेष अनुकम्पा है कि वे अपने कृपाप्रसाद को अपने विकलांग विश्वविद्यालय से ही प्रकाशित कराते हैं। हम इस अनुग्रह के लिए उनके आजीवन कृतज्ञ रहेंगे। पूज्य जगद्‌गुरु जी की अनन्य शिष्या डॉ. श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव (गाजियाबाद) ने प्रस्तुत प्रवचनों को लिपिबद्ध करके अत्यन्त श्लाघनीय प्रयास किया है। एक हाथ से ही लेखनकार्य और प्रूफसंशोधन का दुस्तर कार्य इन्होंने पूज्यगुरुदेव और भगवान् राघव जी की विशेष कृपा से ही पूर्ण किया है। फलतः आदरणीया वन्दना जी के प्राति हम श्रद्धानवत हैं। मुद्रणकार्य के लिए अपने गुरुभाई श्रीप्रभात जी को भी हम इस कार्य के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अन्त में इतना निवेदन करना आवश्यक होगा कि इस नवपुष्पांजलि के माध्यम से पूज्यपाद गुरुदेव ने धर्मजागरण की दिशा में रामानन्द और प्रेमामृत की वर्षा करके हम सबको धन्य किया है और अपने अवतरण का हेतु सिद्ध किया है। आशा है सनातनधर्मावलम्बी सभी बहिन भाई इस प्रसाद से प्रसन्न होंगे और जनमानस में इसको समुचित समादर प्राप्त होगा। नमो राघवाय

श्रीरामनवमी महोत्सव
विक्रमीसंवत् २०६१

विदुषामनुचर
डॉ० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'
गाजियाबाद

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ प्रथम वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १२-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।

श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान आनन्दकन्द श्रीसीताराम जी की भुवनपावनी कृपा से हमको यह अनायास सत्संग प्राप्त हो रहा है और इस ऐकान्तिक सत्संग में हम भगवान के चरणों में नौ पुष्प चढ़ाने का एक मंगलमय प्रयास करेंगे और ये पुष्प एक ऐसे पुष्प हैं जिनसे सम्पूर्ण मानस के सिद्धान्तों का सार सर्वस्व समझा जा सकता है। आज भगवान श्री राम पञ्चवटी में विराजमान पर्णकुटी में आसीन हैं। वातावरण बड़ा मधुर है। खर दूषण और त्रिशरा का वध हो चुका और सम्पूर्ण देवता, मानव, मुनिगण सब निर्भय हो चुके हैं।

गोस्वामी जी स्वयं कह रहे हैं -

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके भय बीते।।
तब लछिमन सीतहिं लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए।।

परिस्थिति बड़ी गम्भीर हो चुकी है। खर-दूषण की सेना को देखकर भगवान राम ने लक्ष्मण जी से कहा था कि लक्ष्मण भयंकर शत्रु-कटक आ रहा है, अपनी भाभी माँ को लेकर पर्वत की गुफ़ा में चले जाओ।

धूरि पूरि नभमण्डल रहेऊ। राम बुलाइ अनुज सन कहेऊ।।

क्या कहा -

लै जानकिहिं जाहु गिरिकन्दर। आवा निशिचर कटक भयंकर।।

आज भी वह गुफ़ा पञ्चवटी में विराजमान है, जहाँ पर भगवान राम ने सीता जी के सहित लक्ष्मण जी को भेजा था। हम वह गुफ़ा देखकर आए हैं, उसमें एक व्यक्ति भी बड़ी कठिनता से प्रवेश कर सकता है। अब प्रश्न यह है कि खर-दूषण के वध के समय भगवान राम सीताजी को उपस्थित रखना अनुकूल नहीं मान रहे हैं। लक्ष्मण जी के सहित उन्हें गुफ़ा में भेजने के लिये अनुरोध करते हैं, ऐसा क्यों ? क्या

उनकी दृष्टि में यह बात स्पष्ट है कि सीताजी के रहने से वे राक्षसों का वध नहीं कर सकेंगे अथवा सीताजी के रहने से राक्षस नहीं मरेंगे ? कौन सी ऐसी परिस्थिति उनके और सीताजी के बीच बन रही है कि उनको लगने लगा है कि सीताजी की उपस्थिति में मैं ललित नर लीला नहीं कर सकूँगा। पहले मैं यह निवेदन करूँ कि भगवान राम आज पञ्चवटी में विराजमान हैं। पञ्चवटी का अर्थ आप लोग जानते तो होंगे ही! संस्कृत में 'वट' माने होता है बरगद का वृक्ष। पञ्चवटी माने 'पञ्चानां वटानां समाहारः' जहाँ पाँच पाँच बरगद के वृक्ष हों उस स्थान को 'पञ्चवटी' कहते हैं। चित्रकूट में एक ही वट वृक्ष है और चार अन्य वृक्ष हैं। भगवान राम की कुटिया पाँच वृक्षों के नीचे बनती है। चित्रकूट और पञ्चवटी में थोड़ा सा अन्तर है और वह अन्तर यह है कि चित्रकूट में चार पृथक्-पृथक् वृक्ष हैं, पाकरि का वृक्ष है, जामुन का वृक्ष है, रसाल माने आम का वृक्ष और तमाल का वृक्ष है और इन चारों के बीच में बरगद का वृक्ष है। केवट कहता है -

नाथ देखियहिं बिटप बिशाला। पाकरि जम्बु रसाल तमाला।।
जिन्ह तरुबरन मध्यबट सोहा। मञ्जु बिशाल देखि मन मोहा।।

वो देखिये महाराज, पाकरि, जम्बु, रसाल और तमाल के बड़े सुन्दर-सुन्दर वृक्ष दिखाई दे रहे हैं और उन चारो वृक्षों के बीच में एक वट का वृक्ष है जो बड़ा सुन्दर और विशाल है। पृथक्-पृथक् वृक्षों के बीच में वट वृक्ष है, इसका संकेत क्या हैं? इसका संकेत बड़ा स्पष्ट है कि इसमें चार वृक्ष-नाम, रूप, लीला और धाम के हैं। पाकरि, ये नाम का वृक्ष है, जम्बू, ये रूप का वृक्ष है, रसाल, ये लीला का वृक्ष है और तमाल, ये धाम का वृक्ष है। तो, भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम, इन चारो के बीच में ये जो वट का वृक्ष है, ये है भगवान के चरणों में विश्वास।

बट विश्वास अचल निज धरमा। तीरथ राज समाज सुकरमा।।

अपने धर्म पर दृढ़ विश्वास ही बरगद का वृक्ष है। नाम, रूप, लीला और धाम, इन चारों पर जो विश्वास है, वही यहाँ वट वृक्ष है इस वृक्ष के नीचे चित्रकूट में भगवान की कुटिया बनी है और 'पञ्चवटी' में ये चार वृक्ष भी नहीं हैं। यहाँ तो पाँच बरगद के ही वृक्ष हैं और इसका अर्थ यही है कि नाम, रूप, लीला और धाम की बात छोड़ो, अब तो भगवान के पाँच विषयों पर विश्वास करना पड़ेगा, तब आगे की लीला सफल हो सकेगी। भगवान के इन पाँच विषयों पर हमें विश्वास करना पड़ेगा, ये हैं भगवान की पाँच लीलाएँ। जो लोग रामायण जी का पाठ करते हैं वे समझ जाएँगे कि भगवान राम की पाँच लीलाएँ हैं-

१. बाल लीला
२. विवाह लीला
३. वन लीला
४. रण लीला, और
५. राज्य लीला।

संयोग देखिये कि इन पाँचों लीलाओं में किसी न किसी को मोह हुआ। भगवान राम की 'बाल लीला' पर मोह भुषुण्डी जी को हुआ। भुषुण्डी जी कौए का रूप धारण करके भगवान राम के सामने खेल रहे हैं और जब वो भगवान को पकड़ने जाते हैं तो भगवान भाग जाते हैं और तब भगवान उनको मालपुआ दिखाते हैं कि आओ, आओ खा लो। भुषुण्डी जी को लगता है कि जो हमको मालपुआ भी नहीं दे रहा है, वो हमको गति कैसे देगा? इसलिये निश्चित ही यह भगवान नहीं हैं, ये तो साधारण बालक हैं।

किलकत मोहि धरन जब धावहिं। भागि चलउँ तब पूप देखावहिं।।

जब मैं भाग जाता हूँ तो भगवान मुझे मालपुआ दिखाते हैं। सन्देह यह हो रहा है कि अरे! जो व्यक्ति मालपुआ भी नहीं दे रहा है मुझको, तो अपनी भक्ति, अपनी गति, कैसे देगा? यह ब्रह्म नहीं हो सकते, यह साधारण कोई राजकुमार हैं।

प्राकृत शिशु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह।।

ये कौन सा चरित्र कर रहे हैं! देखिये, बाललीला पर मोह भुषुण्डी जी को हो रहा है। अब, विचार करो कि भुषुण्डी जी से भगवान राम अपने चरण क्यों नहीं छुवाते हैं? कितना सुन्दर दृश्य है–

आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितइ पराहिं।।

भुषुण्डी जी कहते हैं कि जब चरण पकड़ने जाते हैं तो भगवान घूम-घूमकर देखते हैं और फिर भाग जाते हैं अर्थात् भुषुण्डी जी सोच रहे हैं कि किसी भी मूल्य पर मैं भगवान के चरण छू लूँ। पहले तो उन्होंने देखने का निर्णय लिया–

राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सुफल करि लेखौं।।

भुषुण्डी जी सोच चुके हैं कि मैं जब राम जी के चरण कमल को देखूँगा, तब मैं अपना जीवन सफल मानूँगा। अब देख तो चुके पर नियम होता है कि व्यक्ति जब

थोड़ा सा बैठने को पा जाता है तो सोचता है कि लेट लूँ तो चकाचक आनन्द आए। जब व्यक्ति थोड़ी सी सुविधा पा जाता है तब अधिक सुविधा के लिये उसका मन बढ़ता है। यही व्यापार का नियम है कि और बढ़े, और बढ़े। इसी प्रकार भुषुण्डी जी सोच रहे हैं कि किसी प्रकार मैं भगवान के चरण छू लूँ। भगवान राम ने कहा कि बच्चू चरण देख तो लिया पर चरण छुवाऊँगा नहीं तुमसे।

भुषुण्डी जी ने कहा कि कौन सा पाप किया है मैंने जो आप अपने चरण नहीं छूने देंगे। आप मेरा पाप बताइये।

भगवान राम ने कहा कि आपने पाप नहीं किया है पर मेरी एक मर्यादा है कि मैंने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है और आप साक्षात् ब्राह्मण से कौआ बने हैं गर्भतः तो आप कौआ नहीं बने हैं, गर्भतः तो आप ब्राह्मण ही हैं। जन्मना आप ब्राह्मण ही हैं, वेष भले ही कौआ का है और मैं जन्मना क्षत्रिय हूँ और यदि ब्राह्मण क्षत्रिय का पैर छुवेगा तो उसका सर्वनाश हो जाएगा, इसलिये मैं आपसे चरण नहीं छुवा सकता। इसका तात्पर्य यही है कि बाल्यकाल में भी हमारे प्रभु को अपनी मर्यादा का कितना ज्ञान है, स्मरण है कि जन्मना क्षत्रिय यदि जन्मना ब्राह्मण से चरण छुवाएगा तो उसका बहुत पुण्य-क्षय होगा, उसके जीवन में बहुत बड़ी हानि होगी तो मैं आपसे चरण किसी भी मूल्य पर नहीं छुवाऊँगा।

भुषुण्डी जी ने कहा कि यदि मैं चरण छुवूँगा नहीं तो मैं मर जाऊँगा।

राम जी ने कहा कि कोई बात नहीं, जब आपका ऐसा मन है तो चलो पहले क्षत्रिय बनो।

भुषुण्डी जी ने कहा कि कैसे क्षत्रिय बनूँ? कोई माता तो है नहीं।

भगवान ने कहा कि चलो मैं ही माता बन जाता हूँ-'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' बालक माता के पेट से ही जन्म लेता है तो भगवान के मुख में भुषुण्डी जी चले गए और फिर पेट से होकर निकल आए। भगवान ने कहा अब ठीक है, अब माता बन गए। अब चरण छू लो।

तब दौड़कर भुषुण्डी जी ने भगवान के चरण छू लिये और उनकी इच्छा पूर्ण हो गई। इस प्रकार भगवान ने भुषुण्डी जी की इच्छा पूर्ण की अर्थात् बाललीला देखकर भुषुण्डी जी को मोह हुआ।

२- भगवान की विवाह-लीला में साक्षात् ब्रह्मा जी को ही मोह हुआ जब उन्होंने मिथिला की सुन्दर सज्जा देखी-

सुरन सुमंगल अवसर जाना। बरसहिं सुमन बजाइ निसाना।।

प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिबाहू।।

देवता भगवान राम की बारात में आ रहे हैं। पाँच देवता बारात में हैं-ब्रह्मा जी, विष्णु जी, भगवान शंकर, कार्तिकेय जी और इन्द्र जी। सब देवता तो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से आनन्द ले रहे हैं पर ब्रह्मा जी का तो वही स्वभाव, जैसे कोई हलवाई किसी पार्टी में जाएगा तो और लोग तो पार्टी का आनन्द लेंगे पर वो तो मिठाई बनी कैसे है, यही सोचता रहेगा। अब ब्रह्मा जी चूँकि स्वयं रचयिता हैं, शिल्पी हैं, कलाकार हैं तो ब्रह्मा जी ने सोचा कि यहाँ कोई मेरी कलाकारी है या नहीं। सब लोग तो भगवान के रूप का आनन्द ले रहे हैं पर ब्रह्मा जी चारों ओर देख रहे हैं। शिव जी ने कहा कि बुढ़ऊ आप क्या देख रहे हैं ? तब कहा-

बिधिहिं भयउ आचरज विशेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी।।

ब्रह्मा जी को लगा कि मेरी यहाँ कोई करनी ही नहीं दिखाई दे रही है। यहाँ मेरी कोई कलाकारी नहीं।

शिव जी ने कहा कि आप यहाँ अपनी कलाकारी देखने आए हैं कि सीताराम जी का विवाह देख रहे हैं, पहले यह बताइये।

ब्रह्मा जी ने कहा कि मुझे अपनी कलाकारी देखनी है।

शिव समुझाए देव सब, जनि आचरज भुलाहु।

हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय रघुबीर बिबाहु।।

आप साधारण अर्थ करेंगे कि शिव ने सभी देवताओं को समझाया पर वास्तव में और कोई देवता तो मोहित था ही नहीं, मोहित तो ब्रह्मा जी ही थे-

बिधिहिं भयउ आचरज विशेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी।।

अपनी करनी कहीं न देखने पर ब्रह्मा जी को आश्चर्य हो रहा है। इसके यहाँ पर 'देव सब' कहने का यह भाव है कि शिव जी ने ब्रह्मा जी की मर्यादा रखी कि यदि सभी देवताओं को समझाऊँगा तो ब्रह्मा जी समझ जाएँगे। अपने लोग नहीं देखते हैं कि किसी को सीधे न कहना हो तो हम लोग दूसरों के माध्यम से दूसरों को सुना देते हैं, उसी प्रकार दूसरों के माध्यम से शिव जी ने ब्रह्मा जी को समझाया।

शिव समुझाए देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय रघुबीर बिबाहु।।

इस प्रकार शिव जी ने कला प्रेमी सुर अर्थात् ब्रह्मा जी को समझाया। शिव जी ने कहा कि ब्रह्मा जी आपका स्वभाव एक कलियुगी बालक की भाँति हो गया है और इसको मैं आपको एक कलियुगी दृष्टान्त से समझाता हूँ कि एक बार किसी कलियुगी लड़के ने अपनी मम्मी से कहा कि मम्मी मुझे आपके विवाह का कैसेट देखना है। मम्मी ने कहा, ठीक है देखो! अब बच्चा बड़े ध्यान से देखने लगा। एक घण्टे तक देखता रहा, सबके चित्र उसने देखे, नानी का, मौसी का, मामा का, चाचा का, ताऊ का, सबका चित्र देखा और फिर उसने पटक दिया कैसेट। तब उसकी मम्मी ने कहा कि पटक क्यों रहे हो कैसेट ? तब बालक ने कहा कि इसमें मेरा चित्र तो है ही नहीं। मम्मी ने एक चाँटा लगाया कि जब मेरे विवाह काल में तेरा जन्म ही नहीं हुआ था तो तुम्हारा चित्र कहाँ से रहता ? शिव जी ने कहा कि यही परिस्थिति आपकी है कि जैसे माता-पिता के विवाह में बच्चा अपनी उपस्थिति की अपेक्षा करे, वही परिस्थिति आपकी है कि जो सारे संसार के माता-पिता हैं, उनके विवाह में आप अपनी कला का चिन्तन कर रहे हैं ? ये तो आपके भी माता पिता हैं-

जिन कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय राम कहेउ कामारी।।

शिव जी ने कहा कि जिनके नाम लेने मात्र से सारे अमंगलों की जड़ें नष्ट हो जाती हैं और 'करतल होहिं पदारथ चारी' अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हथेली पर आ जाते हैं, वे हैं श्रीसीता राम भगवान। अब आप कहें कि 'करतल होहिं पदारथ चारी', हम तो आपसे अर्थ धर्म, काम और मोक्ष नहीं चाहते, क्योंकि-

अर्थ चाहिये न धर्म काम चाहिये।
कौसल्या कुमार मुझे राम चाहिये।
मोक्ष चाहिये न स्वर्गधाम चाहिये।
कौसल्या कुमार मुझे राम चाहिये।

भक्त कह सकता है कि हम आपके पदार्थों को नहीं चाहते पर भगवान कहते हैं कि आप चाहें या न चाहें पर आपके सामने वो आ जाते हैं। पदार्थ आपके सामने आएँगे, चाहे आप चाहें अथवा न चाहें-'करतल होहिं पदारथ चारी' अथवा 'पदार्थ' के यहाँ दूसरे अर्थ कर लेते हैं कि 'करतल होहिं पदारथ चारी' भगवान का नाम लेते

ही चार वस्तुऐं हमको मिल जाती हैं अर्थात् चार प्रकार की भक्ति हमारे सामने आ जाती है-

१. निर्भरा भक्ति

२. अविरला भक्ति

३. अनपायनी भक्ति

४. प्रेमा भक्ति

१. निर्भरा भक्ति-भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे

२. अविरला भक्ति-अविरलि भगति माँगि बर गीध गयउ हरिधाम।

३. अनपायिनी भक्ति-देहु भगति रघुपति अनपायनि।
अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं।

४. प्रेमा भक्ति-प्रेम भगति जल बिनु रघुराई

ये चार प्रकार की भक्ति रामायण जी में कही गई है। तो भगवान का नाम लेने से जीव के सामने ये चारों वस्तुएँ आ जाती हैं। भगवान कहते हैं लो-

करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सियराम कहेउ कामारी।।

सीताराम कहे जाओ और ले लो प्रेम भक्ति-

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। आभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई।।

ले लो प्रेम भक्ति, ले लो निर्भरा भक्ति, ले लो अविरल भक्ति और ले लो अनपायनी भक्ति, कोई चिन्ता नहीं।

इस प्रकार विवाह लीला में मोह हुआ ब्रह्मा जी को। देखिये, बाललीला में मोह हुआ भुषुण्डी जी को और विवाह लीला में मोह हुआ ब्रह्मा जी को अब देखते हैं वन लीला, इसमें मोह हुआ सती जी को। सती जी ने भगवान का विरही रूप जब देखा, उन्होंने देखा कि भगवान रो रहे हैं और सीताजी को ढूँढ रहे हैं-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी।।

भगवान राम आज भगवती जी के लिये रो रहे हैं। वो सबसे पूछ रहे हैं कि हे खगों तुमने मृगनयनी सीता जी को देखा! हे मृग तुमने मृगनयनी सीता जी को देखा। हे मधुकर श्रेणी, हे भँवरों के समूह तुमने सीता जी को देखा! आज भगवान वृक्षों से पूछ रहे हैं, लताओं से पूछ रहे हैं, खगों से, मृगों से, भँवरों से, सबसे सीता जी के सम्बन्ध में पूछ रहे हैं। उन्हीं प्रभु को देखकर शंकर जी ने प्रणाम कर लिया-

जय सच्चिदानन्द जगपावन। अस कहि चले मनोज नसावन।।

'जय सच्चिदानन्द जग पावन' शिव जी गद्गद हो रहे हैं हे प्रभु आपकी जय हो! ऐसा कहकर, प्रणाम करके शिव जी चल दिये। अब यहाँ प्रश्न करो कि यहाँ 'मनोज नसावन' कैसे कह रहे हैं ? अस कहि चले मनोज नसावन माने कामदेव को नष्ट करने वाले, अभी यह प्रसंग है पचासवें दोहे का और कामदेव की दहन लीला होगी पचासीवें दोहे पर, तो अभी तो काम को जलाया नहीं तो 'मनोज नसावन' विशेषण क्यों दे दिया? तब कहा कि 'मनोज नसावन' विशेषण शिव जी के लिये नहीं है ये विशेषण राम जी के लिये कहा जा रहा है। आज शिव जी प्रसन्न होकर पाँचों मुखों से बोल रहे हैं-हे सत् आपकी जय हो, हे चित् आपकी जय हो, हे आनन्द आपकी जय हो, हे जगपावन आपकी जय हो, हे मनोज नसावन आपकी जय हो! ये मनोज नसावन विशेषण राम जी के लिये है। जैसे-

'मम हृदय कञ्ज निवास कुरु कामादि खलदलगञ्जनम' शिव जी कहते हैं कि मैं बाहर से काम को नष्ट कर सकता हूँ पर भीतर से काम को मैं नहीं नष्ट कर सकता। भीतर से तो काम को राम ही नष्ट कर सकते हैं क्योंकि-

जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम तहँ काम।
तुलसी नहिं दोऊ रहे, रवि रजनी एक ठाम।।

जहाँ काम होता है वहाँ राम नहीं होते और जहाँ राम होते हैं वहाँ काम नहीं होता, जैसे जहाँ रात होती है वहाँ सूर्य नहीं रह सकते और जहाँ सूर्य रहते हैं, वहाँ रात नहीं रह सकती। यदि आप गम्भीरता से विचार करें तो वर्णमाला में आप देखेंगे कि 'काम' जहाँ समाप्त होता है, वहीं से 'राम' का प्रारम्भ होता है। 'काम' शब्द में क् + अ +म ये तीन अक्षर हैं। 'क' व्यञ्जन वर्णमाला का पहला अक्षर है और स्वर का पहला अक्षर है 'अ' और 'म' व्यञ्जन का पच्चीसवाँ अक्षर है इस प्रकार, क का एक, अ का एक और 'म' के पच्चीस अक्षर जुड़कर बन गए सत्ताइस। इस प्रकार 'काम' की संख्या सत्ताइस पर समाप्त हो गई। संयोग से 'राम' का पहला अक्षर 'रा' वर्णमाला का सत्ताइसवाँ अक्षर है अर्थात् जहाँ काम समाप्त होता है, वहीं से 'राम' का प्रारम्भ होता है।

जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन।।

इसलिये शिव जी ने आज पाँचों मुखों से भगवान की जय-जयकार की। शिव जी के पाँच मुख हैं और पाँचों मुखों के नाम भी वेदों में अलग-अलग कहे गए हैं-

१. भगवान के एक मुख का नाम है - अघोर

२. भगवान के दूसरे मुख का नाम है - ईशान

३. भगवान के तीसरे मुख का नाम है - तत्पुरुष

४. भगवान के चौथे मुख का नाम है - वामदेव, और

५. भगवान के पाँचवें मुख का नाम है - सद्योजात।

आज भगवान शंकर, राम जी को अपने पाँचों मुखों से प्रणाम करते हैं। यही पाँचों मुख, राम जी के विवाह में भी थे और एक-एक मुख में शिव जी के तीन-तीन नेत्र होते हैं, इस प्रकार पाँच मुख में नेत्र हो गए पन्द्रह।

शंकर राम रूप अनुरागे। नयन पञ्चदश अति प्रिय लागे।।

विवाह में भी पन्द्रह नेत्रों के साथ पाँच मुख थे और यहाँ 'अरण्यकाण्ड' में भी पाँच मुख हैं और एक मुख से सत्, एक से चित्, एक से आनन्द, एक से जगपावन और एक से मनोज नसावन, ये पाँचों विशेषण भगवान राम के लिये, शिव जी ने कहा-

जय सच्चिदानन्द ज़ग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन।।

अथवा ये पाँचों विशेषण, भगवान की पाँचों लीलाओं के लिये संकेत हैं। पाँचों लीलाओं की बात शिव जी ने एक साथ कह डाली।

१. बाललीला भगवान की 'सत्' लीला है।

२. विवाहलीला भगवान की 'चित्' लीला है।

३. वनलीला भगवान की 'आनन्द' लीला है।

४. रणलीला भगवान की जगपावन लीला है, और

५. राज्यलीला भगवान की मनोज नसावन लीला है।

ये नया भाव है। नए-नए भाव आते रहते हैं-

ज्यों केले के पात में पात-पात में पात।
त्यों जगद्‌गुरु की बात में बात-बात में बात।।

इसलिये, इन पाँचों लीलाओं के लिये शिव जी ने पाँच विशेषण दिये कि बाललीला आपकी 'सत्‌लीला' है। ये सन्तों के लिये लीला है। गोस्वामी जी ने एक प्रतिज्ञा की! किसी ने गोस्वामी जी से कहा कि क्यों तुलसीदास जी महाराज, आप तो सन्त हैं, घर द्वार छोड़ा, बाल बच्चे तो आपके यहाँ जन्मे नहीं! आप तो भगवान का नाम लीजिये, बाललीला में आप इतना क्यों रमे? राम जी घुटनुओं से चल रहे हैं -

'ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ', ये सब लिखने की आपको क्या आवश्यकता थी ? तब तुलसीदास जी ने एक बड़ी सुन्दर बात कही कि बात ऐसी है कि भगवान की जो बाललीला है, वो सन्तों के लिये कामधेनु गाय है। उन्होंने पूछा कि तुम कौन हो? तब तुलसीदास जी महाराज ने कहा कि मैं उसको दुहकर के घल्ला पीता रहता हूँ।

रघुबर बाल केलि सन्तन की, सुखद सुभग सुर गैय्या।
दुहि पीवत तुलसी सुख जीवत, पै सप्रेम घन घैय्या।।

आप शहर में रहने वाले लोगों को तो आनन्द नहीं मिलेगा पर वास्तव में गाय का जो घल्ला होता है, वह बहुत स्वादिष्ट होता है। गाय के थन में मुँह लगाकर जो पिया जाता है, उसे घल्ला कहते हैं। उसमें सीधा-सीधा दूध मुख में निकलता है, बड़ा स्वादिष्ट लगता है। जो गाय सीधी होती है उसका घल्ला पीने में तो आनन्द आता है पर यदि मरकहिया गाय होगी, लात मारेगी तो दाँत ही टूट जाएँगे। तो कहते हैं कि ये जो भगवान की बाललीला है, ये तो बिल्कुल भोली-भाली गाय है। उछलती नहीं, कूदती नहीं, बड़े प्रेम से दूध पिलाती है। इसलिये ये बाललीला, भगवान की 'सत्‌लीला' है।

विवाहलीला, भगवान की 'चित्‌लीला' है। चित् माने ज्ञान। विवाह लीला वास्तव में ज्ञानलीला है। थोड़ी देर तक इसकी चर्चा करूँगा। देखिये, रामचरितमानस में तीन नगरों की चर्चा है अयोध्यानगर, मिथिला नगर और लंका नगर की।

१. अयोध्यानगर, भगवान का 'ध्यान नगर' है–

मज्जहिं सज्जन बृन्द बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर श्याम शरीर।।

यहाँ भगवान का ध्यान किया जाता है। अयोध्या अर्थात् 'अयोवत् ध्यायन्ति यस्याम्' जिसमें लोहे के समान स्थिर होकर लोग भगवान का ध्यान करते हैं। अय् माने संस्कृत में होता है लोहा। लोहा स्थिर रहता है, कहीं हिलता डुलता है क्या ? इस प्रकार अयोध्या भगवान का ध्यान नगर है।

२. मिथिला 'ज्ञान नगर' है क्योंकि जनक जी जैसा ज्ञानी।

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ बिदेह बिदेह बिशेषी।।

पहले जनक जी विदेह थे 'भयेउ बिदेह बिदेह' विदेह माने विगत देह। पहले उनको देह का ज्ञान नहीं था पर जब राम जी को देखा तब बिदेह अर्थात् विशिष्ट देह, अब उनको विशिष्ट ज्ञान हो गया। मिथिला 'ज्ञान नगर' है।

पुर नर नारि सुभग शुचि सन्ता। धरमशील ज्ञानी गुनवन्ता।।

वहाँ सबको ब्रह्मज्ञान है। जिनकी ससुराल ही ज्ञाननगर हो, तो वहाँ भगवान चित् लीला नहीं करेंगे तो अचित् लीला करेंगे क्या ? जिसकी ससुराल ज्ञानमय हो, जहाँ वेदान्त के अतिरिक्त कोई चर्चा ही न होती हो, उसी मिथिला के सम्बन्ध में शंकराचार्य जब मण्डन मिश्र के यहाँ शास्त्रार्थ करने को पधारे तो वहाँ सरस्वती पनिहारिन बनकर रहती थी। शंकराचार्य ने पूछा – 'क्वास्ति मण्डन भिश्रस्य गृहम् ? मण्डन मिश्र का घर कहाँ है ?

पनिहारिन ने कहा–बाबा अभी तुमको क्या ज्ञान। अभी तुमको पता चल जाएगा आटा दाल का भाव।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
सरस्वती वास निपीडिताग्रं अवेहितन्मण्डनमिश्रधाम।।

अरे शङ्कराचार्य, जहाँ के तोता मैना शास्त्रार्थ करते हैं कि स्वतः प्रामाण्यवाद अपनाया जाए कि परतः प्रामाण्यवाद अपनाया जाए। श्रुतियाँ स्वतः प्रमाण हैं और पुराणादि परतः प्रमाण हैं। तो जहाँ स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण की मीमांसा तोता मैना करते हैं वहाँ मनुष्य की बात छोड़ दो। जहाँ सरस्वती पनिहारिन बनकर रहती है, वह है मण्डन मिश्र का गृह। तो, इतना बड़ा जहाँ वैदुष्य हो, वहाँ भगवान को 'चित्लीला' ही तो करनी पड़ेगी। इसलिये पूरी लीला ये 'चित्लीला' है। दो, चार उदाहरण से आप पूरी तरह समझ जाओगे। 'चित्लीला' का सबसे बड़ा उदाहरण ये है कि साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा वहाँ आ रहे हैं। भगवान आनन्दकन्द ब्रह्म आ रहे हैं और आनन्द की बात यह है कि विशिष्टाद्वैत विशिष्ट का अद्वैत वहीं बन रहा है। भगवान राम भी ब्रह्म हैं और सीताजी भी ब्रह्म हैं। भगवान राम सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं और सीताजी सम्विदानन्द ब्रह्म हैं और जहाँ सच्चिदानन्द और सम्विदानन्द का ग्रन्थिबन्धन हो रहा है। भगवान राम कारण ब्रह्म हैं और सीताजी कार्य ब्रह्म हैं। ब्रह्म एक ही होता है। जब कोई कार्य नहीं करता, निर्लेप रहता है, तब वह कारण ब्रह्म होता है और जब जीवों के हृदय में अन्तर्यामी बनकर आ जाता है तब वह कार्य ब्रह्म हो जाता है। इसलिये 'सुन्दरकाण्ड' में भगवान राम के सम्बन्ध में एक वाक्य कहा गया–

पुनि सर्वज्ञ सर्व उर वासी। सर्व रूप सब रहित उदासी।
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।।

भगवान को कारण मनुज कहा गया। भगवान कारण मनुज हैं। कारण मनुज का तात्पर्य कारण ब्रह्म हैं वे। सीताजी कार्य ब्रह्म बनकर आ रही हैं और दोनों का अद्वैत हो रहा है, दोनों का ग्रन्थिबन्धन हो रहा है-

क्यों करे विनय विदेह कियो विदेह मूरति साँवरी।
करि होम विधिवत गाँठ जोरी होन लागी भाँवरी।।

सीताराम जी का गठबन्धन हो रहा है। सुभग चूनरी, पीत पिछौरी, सीताजी की चुनरी से राम जी के दुपट्टे का ग्रन्थिबन्धन हो रहा है। दोनों ब्रह्म ही गाँठ में बँध रहे हैं। वेदान्त कहता है-'जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई', अन्यत्र तो जड़ और चेतन की गाँठ पड़ती है और यहाँ चेतन की चेतन से गाँठ पड़ रही है, ग्रन्थिबन्धन हो रहा है, भाँवरी हो रही है, अद्‌भुत आनन्द हो रहा है। इसलिये ये 'चित्‌लीला' है। सबसे बड़ी बात कि जब चित्‌लीला होती है तो भय दूर हो जाता है और यहाँ-

भञ्जेउँ राम आप भव चापू। भव भय भञ्जन नाम प्रतापू।।

ये देखिये। जनक जी के नगर की सबसे बड़ी विडम्बना यही है। जनक जी ज्ञानी हैं पर जनक जी ज्ञानी होते हुए भी धनुष का कुछ बिगाड़ नहीं पा रहे हैं जबकि ये शिव जी का धनुष है और शिव जी अहंकार के देवता हैं-

अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान।।

ये धनुष अहंकार है और इसको भगवान ने जड़ कर दिया है और शिव जी ने इसे मिथिला में रख दिया है। अब यह अज्ञान ही तो है कि इसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है, इससे आप कोई काम नहीं ले रहे हैं और कहते हैं कि इसकी पूजा करो! इसीलिये सीताजी को यह बात अच्छी नहीं लगी। हमने अपने 'भार्गवराघवीयम्' में लिखा है कि सीताजी को यह बात बिल्कुल नहीं जँच रही है कि इस धनुष की पूजा की जाए। कौन सा काम ससुरा कर रहा है, बस पड़ा ही तो रहता है। इसीलिये सीताजी ने उसको घसीटा कि उसका कोई कार्य नहीं है, निरर्थक पड़ा हुआ है और जनक जी उसकी पूजा कर रहे हैं। सीता जी कहती हैं कि यह कौन सा ज्ञान है ? जो अज्ञान की पूजा कर रहा है ? वास्तव में हम और आप आजकल कर क्या रहे हैं, हम और आप आजकल राघवेन्द्र सरकार की पूजा नहीं करते हैं, हम अपने अहंकार की पूजा करते हैं। राघवेन्द्र का अपमान हो तो कोई बात नहीं पर जब हमारा अपमान हो तो हमको क्रोध आता है। कोई हमारा तो अपमान करता नहीं, हमारे अहंकार का ही तो अपमान होता है और तब हमें क्रोध आ जाता है। सभी राजा धनुष को उठा रहे

हैं किन्तु किंसी से वह उठ नहीं रहा है क्योंकि अहंकार नष्ट होगा ज्ञान से। सभी राजा अज्ञानी हैं, देहाभिमानी हैं, भटमानी अतिशय मन माखे, तो भटमानियों से तो यह नहीं टूटेगा। ये तो–

तमकि ताकि तकि शिव धनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं।।

उनसे नहीं उठ रहा है। सब हार गए। रावण, बाणासुर सब हार गए। दस हजार राजा वहाँ बैठे थे, सब हार गए। उसे कोई नहीं उठा पाया और जनक जी के मन में एक चिन्ता है कि धनुष टूट क्यों नहीं रहा है ? जनक जी अपनी चिन्ता व्यक्त भी कर चुके–

द्वीप द्वीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पन ठाना।।

देव दनुज धरि मनुज शरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा।।

सारे संसार के राजा सिमट गए पर इसे कोई उठा नहीं पाया ? क्या विधाता!

कुअँरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।

पावनहार विरञ्चि जनु, रच्यो न धनु दमनीय।।

जनक जी सोचने लगे कि लगता है कि सीता जी को पाने वाले की रचना ब्रह्मा जी ने नहीं की और धनुष को तोड़ने वाले की भी रचना ब्रह्मा जी ने नहीं की। अब ये नहीं टूटेगा! जनक जी की चिन्ता यह है कि कौन सा ज्ञान जो इस अहंकार को नहीं तोड़ पाया। लक्ष्मण जी कहते हैं कि धनुष टूट जाएगा। राम जी लक्ष्मण जी को रोक रहे हैं। राम जी ने कहा कि चुप रहो! लक्ष्मण जी ने कहा कि आपकी आज्ञा पाकर मैं नहीं तोड़ सकता ? राम जी ने कहा कि ये तुमसे नहीं टूटेगा क्योंकि तुम्हारे मन से तो नहीं पर वचन से थोड़ा सा अहंकार झलक रहा है कि मैं ये कर सकता हूँ, ये गड़बड़ है और ये अहंकार ही तो है और अहंकार, अहंकार से नहीं टूटेगा। लक्ष्मण जी ने कहा फिर क्या होगा ? राम जी ने कहा कि घबड़ाओ मत, अब इसकी व्यवस्था हो जाएगी। मैं इस धनुष को तोडूँगा क्योंकि ज्ञान से अहंकार नष्ट हो सकता है। चलो, विश्वामित्र जी ने प्रेरणा की–

उठहु राम भञ्जहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा।।

ये चित्‌लीला है, देखिये।

सुनि गुरु बचन चरन सिर नावा। हरष विषाद न कछु उर आवा।।

जो हर्ष से परे हो, शोक से परे हो, सुख दुख द्वन्द्वों से परे हो, वही तो अहंकार को समाप्त कर सकता है। राघवेन्द्र मस्ती में उठ रहे हैं–

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मञ्जु बर कुञ्जर गामी।।

मतवाले हाथी के समान झूमते-झूमते राघवेन्द्र सरकार आ रहे हैं और-

गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा।।

अब आप देखिये कि उनको धनुष तोड़ लेने का बिलकुल अहंकार नहीं है। परशुराम जी ने कहा कि तुमने धनुष तोड़ा तो तुम्हें अहंकार हो गया ? मानो भगवान राम कह रहे हैं कि जो अहंकार करता है उससे यह धनुष टूट ही नहीं सकता था। अहंकारी से धनुष नहीं टूटता। इसलिये कहा-

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना।।

यह टूटा, मैंने तोड़ा नहीं क्योंकि तोड़ने का यदि भान हो जाएगा तब तो अहंकार हो गया, तब ये नहीं टूटेगा। इसीलिये तो कह दिया कि 'मैं केहि हेतु करौं अभिमाना'

परशुराम जी ने कहा कि तुमने नहीं तोड़ा तो कोई गवाह प्रस्तुत करो।

भगवान राम ने कहा कि बिलकुल, छोटे भैय्या लक्ष्मण मेरी गवाही देंगे।

लक्ष्मण जी ने कहा-

छुअत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू।।

ये धनुष तो राम जी के छूते ही टूट गया।

परशुराम जी ने राम जी से कहा कि लक्ष्मण तो तुम्हारा भाई है, तुम्हारे ही पक्ष की बात करेगा, कोई निष्पक्ष गवाह बुलाओ।

राम जी ने कहा कि निष्पक्ष गवाह किसको बुलाएँ ? तब राम जी ने कहा कि अच्छा, जनकपुर के नगर नर नारी तो कोई पक्ष नहीं लेंगे, उनसे आप पूछ लीजिये कि किसी ने राम जी को धनुष तोड़ते हुए देखा है क्या ? खड़े हो जाओ और बताओ तुम लोगों ने देखा ?

जनकपुर वाले कहते हैं-

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े।।

किसी ने देखा ही नहीं। तब परशुराम जी ने कहा नहीं, इन लोगों पर भी मुझे विश्वास नहीं है क्योंकि ये तो तुम्हारे ससुराल के हैं, तुम्हारा ही पक्ष लेंगे।

तब परशुराम जी से पूछा गया कि फिर आप किसका विश्वास करते हैं ?

परशुराम जी ने कहा कि किसी बाबा को बुलाकर लाओ, जो किसी का पक्षधर न हो।

राम जी ने कहा कि तुलसीदास जी पर तो आप विश्वास करेंगे ?

परशुराम जी ने कहा कि हाँ, ठीक है। साधु किसी का पक्ष नहीं ले सकता, अतः उन पर विश्वास मैं करूँगा।

तुलसीदास जी से राम जी ने कहा कि चलिये आप ही गवाही दीजिये कि मैंने धनुष तोड़ा है क्या ?

तुलसीदास जी ने कहा-

मयन महनपुर दहन गहन जानि,
आनि के सबै को सार धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल,
कियो बलहीन बल आपनो बढ़ायो है।
कुलिस कठोर कूर्म पीठ ते कठिन अति,
काहु न पिनाक नेक चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत,
टूट्यो मानो बारे तें पुरारी हूँ पढ़ायो है।

'मयन महन' माने मदन मथन, कामदेव के नाशकर्ता भगवान शंकर ने 'पुर दहन गहन जानि' त्रिपुरासुर के जलाने को कठिन जानकर, सबका सार लेकर विश्वकर्मा जी से उसको गढ़वाया था और यह धनुष इतना विचित्र कि 'जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल' जनक जी की सभा में जो बड़े-बड़े राजा आए 'कियो बलहीन बल आपनो बढ़ायो हैं' सबका बल उसने नष्ट कर दिया। 'कुलिस कठोर कूर्म पीठ ते कठिन अति' जो वज्र से भी कठोर था और कछुए की पीठ से भी कठिन था, 'काहु न पिनाक नेक चपरि चढ़ायो है' वही 'तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत' धनुष राम जी के कर-कमल का स्पर्श करके 'टूट्यो' माने अपने आप टूटा मानो 'बारे तें पुरारी हूँ पढ़ायो है' मानो लड़कपन से शंकर भगवान ने उसको पढ़ाकर रखा था। अपने गुरु बाबा अर्थात् शंकर जी से पूछ लो कि ऐसी गड़बड़ी क्यों की ? शंकर भगवान ने उस धनुष को पढ़ाकर रखा था कि हे धनुष, जब राम जी का स्पर्श हो, तुम बहुत नाटक मत करना, अपने आप ही टूट जाना, इसलिये टूट गया। राम जी को कुछ भी नहीं करना पड़ा। इसलिये-

छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहिं हेतु करौं अभिमाना।।

ये तो छूते ही टूट गया, मैं क्यों अभिमान करूँ ? यह चित्लीला है और अहंकार रूप धनुष टूटा है और इसीलिये आगे चलकर जो भी लीलाएँ हुईं वो पूरी ज्ञानपरक थीं, वेदान्तपरक थीं 'हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिबाहु' सीता जी के मस्तक पर राम जी का सिन्दूरदान और वह ग्रन्थिबन्धन, आठ बार धान कूटना। मिथिला में मिथिलानियों ने तभी तो गाया भी-

चितचोरवा आजु बंधैलन हे।
सब सान गुमान गँवौलन हे।
कमल करन सोहे कनक मुसरवा
(अरे) आठ बेरी धनवाँ कुटौलन हे।

आज भगवान राम के हाथ में मूसर दिया गया और कहा गया कि आप ये धान कूटिये, यदि एक भी चावल टूटा तो हम जान लेंगे कि आप अपने बाप के नहीं हैं। कुछ गड़बड़ है। ये मूसर कम्प्यूटर है। ये आपका परीक्षाफल निकालेगा। एक भी धान टूटना नहीं चाहिये। आठ बार धान क्यों कुटवाया गया ? इसलिये कि जीव ही धान है और अज्ञान उसकी भूँसी है। ज्ञान रूप मूसर से कूटकर भूँसी से धान को अलग करना पड़ेगा, यही इसका रहस्य है।

श्रेयः स्त्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यतं
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।।

इसलिये यह विवाह लीला, चित्लीला है। इसके अनन्तर भगवान की वनलीला है, ये 'आनन्द लीला है। हमको आपको इसमें कष्ट हो रहा है पर भगवान को इसमें आनन्द हो रहा है। भगवान राम इस 'वन-लीला' से बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। बार-बार ये वर्णन करेंगे-

'मन मुसुकाहिं भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू।।

भगवान राम आनन्द के निधान हैं। वन-लीला में उनको आनन्द आ रहा है।

नव गयन्द रघुबंश मनि, राज अलान समान।
छूट जानि बन गमन सुनि, उर अनन्द अधिकान।।

वन-लीला में भगवान आनन्द ले रहे हैं। ये भगवान की आनन्द लीला है।

"आनन्दाध्येव खल्यमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देनैव जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्।"

आनन्द ही ब्रह्म है इसलिये जब भगवान गंगा जी के किनारे हैं और केवल गंगाजल पिया है वहाँ गोस्वामी जी ने कहा-

शुद्ध सच्चिदानन्दमय, राम भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु।।

आनन्द की स्पष्ट प्रतीति जब वाल्मीकि जी को हुई तब वाल्मीकि जी ने कहा-

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।

एक भी बूँद आँसू राम जी के नहीं गिरे। मुस्कुराते-मुस्कुराते राज्य को छोड़कर, भगवान वन में आ रहे हैं। 'रम्यो राम मन देवन जाना' राम का मन कब रमता है? जब-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।

जहाँ सत्यानन्द स्वरूप होता है, राम जी का मन वहीं रमता है इसलिये 'वन-लीला' 'आनन्द लीला' है। इसलिये, 'जय सच्चिदानन्द' 'रण-लीला' है 'जगपावन' अर्थात् भगवान की 'रण-लीला' ये 'जगपावन' लीला है क्योंकि ये जगत को पवित्र करेगी, क्योंकि-

जग पावनि कीरति विस्तरिहैं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहैं।।

'अस कहि चले मनोज नसावन' 'राज्यलीला' यह काम को नष्ट करने वाली लीला है। 'जहाँ राम तहँ काम नहिं' यहाँ किसी प्रकार की कामना नहीं आएगी। कामारि होंगे। 'मनोज नसावन' क्यों? हनुमान जी को अयोध्या में क्यों रक्खा? सब तो चले गए-

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हेउँ हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तब चरन देखिहउँ देवा।।

इसलिये ये अवध लीला, 'राज्यलीला' भगवान की 'मनोज नसावन' लीला है। अतः पाँचों लीलाओं का गान करके शिव जी चल दिये-

जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन।।

देखिये, भगवान शंकर को तो आनन्द हो रहा है। भगवान शंकर के मन में स्नेह है, सती के मन में सन्देह है। राम जी अभिनय-वन में हैं, शंकर भगवान प्रणय वन

में हैं और सती जी संशय-वन में हैं, तीनों वन में हैं। इस प्रकार 'वन-लीला' में सती जी को सन्देह हो रहा है।

'रण-लीला' में सन्देह हुआ गरुड़ जी को। नागपाश में भगवान राम को, मेघनाद ने बाँधा। नारद जी आए और कहा कि सरकार आपको मेघनाद ने नागपाश में बाँध लिया ?

भगवान राम ने कहा कि हाँ बाँध लिया।

नारद जी ने कहा कि क्यों बाँधा ?

भगवान ने कहा कि नारद जी इसके कई कारण हैं-

१. पहला कारण यह है कि नारद जी आपने मुझसे कहा था कि 'करम शुभाशुभ तुमहिं न बाधा' आपको तो कोई बाँधता नहीं है तो लो अब तो मुझे बाँध लिया, अब तो तुम प्रसन्न हो।

२. भगवान कहते हैं कि दूसरा कारण यह है कि कद्रू के पुत्र नाग लोग जो थे, उन्होंने सोचा कि हमें जहर ही मिलता है, एक बार प्रभु के चरणों में चिपक जाएँ, प्रभु के शरीर में चिपक जाएँ, इसलिये चिपक गए।

३. तीसरा कारण यह भी है कि लक्ष्मण जी के लिये वाल्मीकि जी ने कहा था 'जो सहस सीस अहीस महिधर' लक्ष्मण जी शेषनाग हैं तो हमने सोचा कि एक बार सर्प का आलिंगन करूँ तो मुझे लक्ष्मण जी के आलिंगन का आनन्द आ जाएगा, इसलिये मेरी इच्छा से लक्ष्मण के रूप में नाग मेरे शरीर में लिपटे हुए हैं।

४. चौथी बात यह है कि मुझे राक्षसों को मारना है और राक्षसों को मारने के लिये मुझे रुद्र बनना पड़ेगा और रुद्र मैं तब बनूँगा जब नाग लिपटें 'यस्योरसि व्यालराट्' मेरे ऊपर नाग लिपटें कैसे, इसलिये मैंने अपने को रुद्र बनाने के लिये मेघनाद से कहा कि बेटा मेघनाद आज मुझे बाँध ले अपने नागपाश में। गरुड़ जी को यहाँ पर सन्देह हो गया कि ये भगवान नहीं हो सकते-

भवबन्धन ते छूटहिं, नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निशाचर बाँधेउ, नागपाश सोइ राम।।

इसलिये 'रण-लीला' में मोह हो गया गरुड़ जी को।

'राज्य-लीला' में तो गुरु बाबा वसिष्ठ जी को ही मोह हो गया। भगवान ने वसिष्ठ जी को बुलाया। वसिष्ठ जी आए 'अति आदर रघुनायक कीन्हा' रघुनायक जी ने आदर किया। मोह क्या एक आश्चर्य हुआ कि 'पद पखारि' भगवान ने पद को पखारा और राम जी वसिष्ठ जी के सामने ही पादोदक पी रहे हैं, चार, छः कटोरी पी गए। सीताजी से कहा कि जरा चकाचक लइयो, मुझे बहुत प्यास लग रही है, आज

गुरुबाबा बहुत दिनों के पश्चात् मिले हैं, जरा चकाचक पियेंगे। एक दो कटोरी से कुछ थोड़े ही होता है। तब वसिष्ठ जी ने सोचा कि अरे! जिनके चरण के एक बिन्दु से गंगा जी निकलीं, वो मेरा चरणोदक ले रहे हैं ? तब कहा-

देखि देखि आचरण तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा।।

आपके भिन्न-भिन्न आचरणों को देखकर मेरे मन में मोह हो रहा है।

इसलिये, यहाँ भगवान कह रहे हैं कि 'पञ्चवटी' का यहाँ तात्पर्य यह है कि पाँचों लीलाओं में मोह का न होना, पाँचों लीलाओं में जो विश्वास है वही है पञ्चवटी। बाल-लीला, विवाह-लीला, वन-लीला, रण-लीला और राज्य-लीला इन पाँचों लीलाओं में मोह का न होना और इनमें विश्वास, वही है पञ्चवटी और उसी में कुटिया बनाकर मैं रहा करता हूँ।

पञ्चवटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुरमुनि सुखदायक।।

इसी पञ्चवटी में जहाँ पाँचों लीलाओं पर विश्वास रूप पाँच वट के वृक्ष हैं उनकी छाया में भगवान श्रीराम, सीताजी और लक्ष्मण जी के सहित बैठे हैं। अब रावण वध के लिये विशिष्ट नर-लीला का भगवान उपक्रम कर रहे हैं। लक्ष्मण जी को भेज दिया कि आप कन्द मूल फल लेने जाइये-

लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख वृन्द।।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।।

लक्ष्मण जी भी यहाँ नहीं हैं। जब लक्ष्मण जी कन्द मूल फल लेने गए तब जनकसुता सीता जी के समक्ष भगवान श्रीराम बोले अर्थात् इस लीला को लक्ष्मण जी को बताना ठीक नहीं समझ रहे हैं। अब यहाँ दो बातें भगवान राम ठीक नहीं मान रहे हैं, एक तो यहाँ सीता जी की उपस्थिति अनुकूल नहीं लग रही है और इस लीला का भेद लक्ष्मण जी को जनाना भी अनुकूल नहीं लग रहा है। तो पहले हम यह चर्चा करेंगे कि भगवान राम लक्ष्मण जी को यह लीला क्यों नहीं बताना चाहते और फिर यह चर्चा करेंगे कि सीताजी को अनुपस्थित करके यह लीला क्यों करना चाहते हैं, यह चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सियावर राम चन्द्र की जय।
पवनसुत हनुमान की जय।
प्रथम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण
।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ द्वितीय वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १३-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।
कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।
कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।
श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा आनन्दकन्द सर्वसर्वेश्वर सर्वलोकेश्वर सर्वशक्तिमान सर्वशरण्य सर्वाधिष्ठान सर्वान्तर्यामी सर्वहृदयनिवासी सर्वगुणगणराशि सर्व सुन्दर सर्वश्रेष्ठ सर्वाधिपति भगवान श्रीसीताभिराम प्रभु श्रीराम की कृपा से इस ऐकान्तिक सत्संग का अब हम द्वितीय पुष्प भगवान के चरणों में अर्पित कर रहे हैं।

कल आप सुन चुके हैं कि भगवान श्रीराम पञ्चवटी में विराज कर दिव्य चरित्र कर रहे हैं। उपक्रम में कहा जा चुका है कि-

पुरजन भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई।।
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन।।

अयोध्याकाण्ड में भरत जी की कथा कही गई, अब प्रभु के चरितों का वर्णन करेंगे और वे चरित इतने अलौकिक हैं। उदात्त नर लीला करते हुए बहुत समय हो चुका है और अब भगवान आनन्दकन्द ललित नर लीला करना चाहते हैं। ललित नर लीला, उदात्त नर लीला से कुछ विलक्षण होगी। ये अनुकरणीय नहीं होगी केवल श्रवणीय होगी अर्थात् केवल सुनी जा सकेगी पर इसका अनुकरण सम्भव नहीं होगा। ललित नर लीला का साहित्यिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। भगवान चारों प्रकार के नायकों का अपने में समावेश करेंगे। अब तक वो 'धीरोदात्त' बने, रावण-वध में 'धीरोद्धत्त' बनेंगे, विभीषण शरणागति आदि प्रकरणों में 'धीर प्रशान्त' बनेंगे पर अभी 'धीर ललित' बनने जा रहे हैं। इसलिये भगवान कहते हैं कि मैं अब कुछ ललित नर लीला करूँगा। भगवती सीता जी पूछती हैं कि ललित नर लीला में मुझे क्या करना पड़ेगा ? भगवान कहते हैं कि प्रत्येक लीला में कोई न कोई नायिका होती है और उदात्त नर लीला में आप नायिका थीं, यहाँ तक तो ठीक था पर ललित-नर-लीला में आपको नायिका नहीं रखना है। ललित-नर-लीला में आपका प्रतिबिम्ब नायिका बनेगा, आपकी प्रतिच्छाया नायिका बनेगी, लीला-शक्ति नायिका बनेगी,

इसलिये आपकी उपस्थिति यहाँ ठीक नहीं रहेगी। अतः आप तब तक अग्नि में निवास कर लें, जब तक मैं राक्षसों का नाश नहीं कर लेता।

प्रकरण बड़ा मधुर है। आज पूर्ण एकान्त है। खर दूषण का वध हो चुका है। शूर्पणखा 'सीता-हरण' के लिये रावण को प्रेरित कर चुकी। देखिये, रावण मुक्ति बनाना चाह रहा है और रामचन्द्र जी युक्ति बनाना चाह रहे हैं। रावण कहता है कि मुझे मुक्ति चाहिये और तामस देह से मुक्ति नहीं मिल सकती। भजन नहीं होगा तो मुक्ति भी नहीं मिलेगी। रावण के यहाँ मुक्ति का संकट है और राम जी के यहाँ युक्ति का संकट है। इसलिये रावण कहता है कि जब तक मेरा तामस देह रहेगा, मैं भजन नहीं कर सकूँगा और भजन के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है-

'भक्त्याविमुच्येन नरः' इसलिये यह पक्ष भी रावण ने अन्यथा किया। 'ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः' रावण कहता है कि ज्ञान की बात नहीं है। ज्ञान भी भजन से होता है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।

गीता १८/५५

गीता अध्याय अट्ठारह के पचपनवें श्लोक में भगवान प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि 'भक्त्यामामभिजानाति' जैसे बिना माता के बेटा नहीं उत्पन्न हो सकता, कोई कुछ भी कर ले, उसी प्रकार बिना भक्ति के ज्ञान नहीं आ सकता। ज्ञान के लिये भक्ति चाहिये क्योंकि भक्ति ज्ञान की माँ है अतः 'भक्त्या मामभिजानाति' साधक भक्ति से मुझे जानता है। 'अभिजानाति' माने क्या ? भक्त्यामामैवजानाति भी तो कह सकते थे पर ऐसा नहीं कहा। भगवान कहते हैं कि 'अभिजानाति' जब भक्ति आती है तो व्यक्ति मुझको अभीष्ट रूप से जानता है। वैसे तो सभी भगवान को जानते हैं-

राम-राम सब कोउ कहे ठग ठाकुर और चोर।
बिना प्रेम रीझे नहीं तुलसी अवध किशोर।।

जब जीवन में भक्ति होती है तो व्यक्ति भगवान को अभीष्ट रूप से जानता है। जिसके जीवन में भक्ति नहीं होती, वह भगवान को अनिष्ट रूप से जानता है। कंस के जीवन में भक्ति नहीं है अतः वो भगवान को अनिष्ट रूप से जानता है कि ये मुझे मारेंगे। भगवान से विमुख व्यक्ति सोचता है कि भगवान मुझे मारेंगे और भक्त सोचता है कि भगवान मुझे तारेंगे। अभक्त भगवान को मारक रूप में जानता है और भक्त भगवान को तारक रूप में जानता है। 'मृत्युर्भोजपतेः' भोजपति भगवान को मृत्यु के

रूप में जान रहा है और भक्त भगवान को मोक्ष के रूप में जानता है। यही तो भजन और अभजन में अन्तर है। इसलिये भगवान ने कहा कि 'भक्त्या मामभिजानाति' जब हृदय में भक्ति आती है तभी भगवान जाने जाते हैं। भगवान को कौन जान सकता है? जिसे भगवान जनाना चाहते हैं, वही भगवान को जानता है। यदि भगवान नहीं जनाना चाहेंगे तो कोई लाख प्रयत्न करके भी भगवान को नहीं जान सकता। इसलिये स्पष्ट है-

सोइ जानइ जेहिं देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई।।

तुमरिहिं कृपा तुमहिं रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चन्दन।।

देखिये, भगवान को वही जान सकता है, जिसे भगवान जनाते हैं, जिसे भगवान जानने की शक्ति देते हैं। कोई भगवान को जान सकता है? जी, भगवान को भगवान ही जान सकते हैं और कोई तो भगवान को जानेगा नहीं। जो भगवान को जानेगा नहीं वो कैसे जनाएगा? इसलिये गीताजी के दसवें अध्याय के पन्द्रहवें श्लोक में अर्जुन ने बहुत स्पष्ट कहा-

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।

भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। गीता १०/१५

हे पुरुषोत्तम, हे भूतभावन, हे भूतेश, हे देवदेव, हे जगत्पते आप ही अपने को, अपने से जानते हैं। यहाँ पाँच सम्बोधन अर्जुन ने भगवान को दिये। पाँच सम्बोधनों का तात्पर्य यह था कि हमारे और आपके सामने भगवान के पाँच रूप दिखाई पड़ते हैं पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा।

१- पर-

'पर' रूप वह है जो साक्षात् साकेतलोक में सीताजी के सहित विराजते हैं।

२- व्यूह-

जो चार रूपों में हमारे यहाँ उपस्थित होते हैं हमारे चित्त को नियन्त्रित करने के लिये वासुदेव के रूप में, हमारे अहंकार को व्यवस्थित करने के लिये संकर्षण के रूप में, हमारी बुद्धि को नियमित करने के लिये प्रद्युम्न के रूप में और हमारे मन को सुस्थिर करने के लिये अनिरुद्ध के रूप में। ये भगवान के चार व्यूह होते हैं।

३- विभव-

ये जो भगवान के चौबीसों अवतार हैं, यही भगवान के विभव हैं। यहाँ भगवान अपना वैभव प्रकट करते हैं।

४- अन्तर्यामी-

प्रत्येक जीवात्मा के साथ जो परमेश्वर का रूप विराजमान रहता है, उसी को अन्तर्यामी कहते हैं। जिसके लिये श्रुति कहती है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य नश्नन् अन्यो अभिचाकशीति।।

श्रुति स्पष्ट कहती हैं कि यह शरीर एक वृक्ष के समान है। जैसे वृक्ष पर पक्षी बैठे रहते हैं उसी प्रकार अनादि काल से इस शरीर रूप वृक्ष को या इस संसार रूप वृक्ष को चिपककर, सुन्दर पंख वाले, एक साथ रहने खेलने वाले परस्पर मित्रता से युक्त दो पक्षी बैठे हैं। उनमें से एक पक्षी ऐसा है कि जो कुछ भी न खाता हुआ प्रसन्न रहता है और दूसरा खाता हुआ भी दुखी रहता है। ये जीवात्मा ही भोक्ता है। यही सुख दुख का अनुभव करता है। यही फलों का भोक्ता है। शुभ और अशुभ कर्मों के फलों को यह खाता रहता है और परमात्मा कुछ भी नहीं खाकर प्रसन्न रहते हैं। ये जो पक्षी के रूप से श्रुति ने समझाया कि दो पक्षी इस शरीर रूप वृक्ष पर बैठे हैं, वही एक अन्तर्यामी परमात्मा हैं और दूसरा उनके द्वारा नियमित जीवात्मा है। एक परमात्मा है और दूसरा प्रत्यगात्मा है। इस दृष्टि से जो प्रत्येक जीवात्मा के साथ विराजमान रहते हैं मित्र के रूप में, वही अन्तर्यामी हैं, सबके हृदय में विराजते हैं पर कुछ करते नहीं। नन्दिघोष के रूपक का यही तो तात्पर्य है। यही शरीर ही नन्दिघोष है। दसो सुन्दर-सुन्दर इन्द्रियाँ ही उसके घोड़े हैं। वह नन्दिघोष रथ जब धर्मक्षेत्र में आया तब भगवान उसके सारथी बने। जब पापक्षेत्र में वह रथ रहता है तो भगवान सारथी नहीं बनते।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।

अर्थात् जब हमारा शरीर रूप नन्दिघोष पापक्षेत्र में रहता है, तब जीवात्मा रूप अर्जुन के रथ की बागडोर भगवान हाथ में नहीं लेते हैं। जब धर्मक्षेत्र में चला आता है तब जीवात्मा रूप अर्जुन की बागडोर परमात्मा श्याम सुन्दर अपने हाथ में ले लेते हैं।

ततः श्वेतैर्हर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यं शंखं प्रदध्मतुः।।

गीता १/१४

अर्थात् कौरवों के शंख आदि निनाद के अनन्तर, श्वेत घोड़ों से युक्त, भजन से पूर्ण, महान रथ पर विराजमान, मायापति भगवान श्रीकृष्ण एवं पाण्डु के तृतीय पुत्र श्री अर्जुन ने अपने-अपने अलौकिक शंख प्रकृष्टता से बजाए।

एक सामान्य सा प्रश्न होता है कि जब परमात्मा हमारे हृदय में रहते हैं तो गलत कर्म करते समय हमको क्यों नहीं मना करते। हम पाप क्यों करते हैं ? इसका यही तो उत्तर है। भगवान सबके शरीर में रहते हैं। सबका शरीर रथ है पर समस्या इस बात की है कि और शरीरों में रहकर भगवान सोते रहते हैं। 'पुरु शरीरे शेते इति पुरुषः' और सबके शरीर में रहकर भगवान सोते रहते हैं। केवल शरीर को सँभालने की भगवान की भूमिका होती है परन्तु अर्जुन के समान जो जीवात्मा भगवान की शरण में चला जाता है, उसके जीवन में भगवान सारथी बनकर उसका रथ चलाते रहते हैं। उसके रथ को भगवान नष्ट नहीं होने देते! उस जीवात्मा को पाप-कर्म नहीं करने देते। भगवान ने सबको गीता क्यों नहीं सुनाई जबकि दोनों ही पक्षों के वीर वहाँ खड़े हैं। अर्जुन के सिवा क्या वहाँ चारों पाण्डव नहीं ? इस पक्ष में चारों पाण्डव हैं और उस पक्ष में सौ दुर्योधन आदि, एक सौ चार लोग, एक सौ पाँच में से अर्जुन को ही भगवान ने क्यों चुना ? न ही चुना युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव को और न ही चुना दुर्योधनादि सौ भ्राताओं को। यहाँ भी सात्यकी, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद आदि अपने पक्ष के राजाओं को भी नहीं चुना और वहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा आदि शत्रुपक्षीय सहायकों को भी नहीं चुना। अर्जुन को ही भगवान ने क्यों चुना, इसी प्रश्न का उत्तर है यह। इसका उत्तर यही है कि प्रत्येक के शरीर में होते हुए भी भगवान उसी प्रकार से तटस्थ रहते हैं जैसे अर्जुन को छोड़कर सबके साथ तटस्थ रहे। देखिये, भगवान हृदय में सबके रहते हैं पर जो भजन करता है वहाँ निकटस्थ हो जाते हैं और जो भोजन करता है वहाँ तटस्थ हो जाते हैं।

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करहैं रघुराई।।

मन, वाणी, शरीर से जो चतुरता छोड़कर, अपने स्वार्थ की चिन्ता छोड़कर भजन करता है, उस पर भगवान कृपा करते हैं। देखो, भगवान के पास दोनों वस्तुएँ हैं, विमुखों के लिये उनके पास कृपाण है और सम्मुख जनों के लिये उनके पास रहती है कृपा। भगवान विमुख जनों को मार डालते हैं 'मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा' इनको मैने मार डाला है, क्योंकि यहाँ कृपा नहीं की है मैने। यहाँ तो मैने कृपाण रखा है। इनके लिये तो काल-कृपाण है, काल करवाल है और अर्जुन के लिये कृपा है। इसलिये उत्तर बिलकुल स्पष्ट है कि 'भक्त्या मामभिजानाति।' जीव

बिना भक्ति के भगवान को नहीं जान सकता। जब समर्पण होता है तब भगवान कृपा करते हैं। यहाँ तो अन्तर्यामी रूप में भगवान रह रहे हैं। ठीक 'नन्दिघोष' की परिस्थिति हमारे हृदय की परिस्थिति है। यदि हमारा शरीर नन्दिघोष बन जाए, हमारी इन्द्रियाँ अर्जुन के घोड़े के समान श्वेत हो जाएँ तो निश्चित किसी न किसी दिन हमारे हृदय में सोए हुए परमात्मा जग जाएँगे, पकड़ लेंगे रस्सी, चलाने लगेंगे हमारे शरीर का रथ जिसे अब तक काम चला रहा है, जो अब तक कामचलाऊ है, भगवान कृपा करें तो श्याम चलाऊ हो जाए। इसलिये भक्ति से ही व्यक्ति भगवान को जान सकता है 'भक्त्या मामभिजानाति।' जीवन में जब भक्ति आती है, तब व्यक्ति कहता है कि भगवान हमारे अभीष्ट हैं। केवल भगवान ही हमारे हितैषी हैं, और कोई हमारा हितैषी नहीं और ये धारणा व्यक्ति के मन में तब आती है जब उसके जीवन में भक्ति आती है। यही तो विडम्बना है हमारी कि हम भगवान को अपना अभीष्ट नहीं मान रहे हैं। अभी तो हम संसार को अभीष्ट मान रहे हैं। पत्नी अभीष्ट है, पति अभीष्ट है, पुत्र अभीष्ट है, पुत्री अभीष्ट है, मित्र अभीष्ट है, घर अभीष्ट है, सम्पत्ति अभीष्ट है, जबकि सब भ्रम है। कोई अभीष्ट नहीं है क्योंकि ये सब तभी तक हमको चाहते हैं, जब तक हमारे पास कुछ रहता है। जब किसीको यह ज्ञान हो जाए, कि ये अब हमारा कोई हित नहीं कर सकता, तुरन्त वह हमसे अपना सम्बन्ध तोड़ लेगा। वृहदारण्यक उपनिषद में इसे स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्य जी मैत्रेय जी से कहते हैं–

न वा अरे पतिः पत्न्याः कामाय पतिः पत्न्याः प्रियो भवति।
आत्मनस्तु कामाय पतिः पत्न्याः प्रियो भवति।।
न वा अरे! पत्नी पत्युः कामाय पत्युः प्रिया भवति।
आत्मनस्तु कामाय पत्नी पत्युः प्रिया भवति।।

पति, पत्नी के लिये, पत्नी को प्रिय नहीं रहता, वो अपनी कामना की पूर्ति के लिये पत्नी से प्रेम करता है। बहुत विस्तृत वर्णन किया है कि कोई भी किसी से प्रेम करता है, तो वहाँ उसका कोई न कोई स्वार्थ छिपा हुआ रहता है। यदि स्वार्थ समाप्त तो उसकी प्रियता समाप्त। निःस्वार्थ प्रेम केवल भगवान करते हैं–

तैं निज करम जाल जहँ घेरो।
श्री हरि संग तज्यो नहिं तेरो।

भगवान आनन्दकन्द का ये बहुत महत्वपूर्ण दृष्टिकोण रहा है कि वो तभी व्यक्ति से प्रेम करते हैं जब उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता। गजेन्द्र से तब तक

प्रेम नहीं किया जब तक गजेन्द्र के पास बल रहा। जब गजेन्द्र का बल थक गया तब भगवान ने गजेन्द्र से प्रेम किया। 'सुने री मैंने निर्बल के बलराम' सबल के बल, राम नहीं होते, वो तो निर्बल के बल होते हैं। भगवान आनन्दकन्द केवल अन्तर्यामी रूप में जीव की रक्षा करते हैं।

५- अर्चा-

अर्चा रूप अर्थात् जो ये पूजा हम करते हैं, राघव जी की पूजा, शालग्राम की पूजा, गोपालजी की पूजा ये भगवान का पाँचवाँ अवतार हैं।

यहाँ पाँच विशेषण देकर यही बात कही गई कि भगवान के जो पाँचों रूप हैं, उनको भगवान ही जानते हैं। इसलिये, पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देव देव और जगत्पते, ये पाँच सम्बोधन दिये गए।

दूसरी बात, 'अर्थ पञ्चक' की दृष्टि से केवल आप ही अपने को जानते हैं। हमारे यहाँ भागवत की व्याख्या की गई कि किसे भागवत कहते हैं, तो कहा-

अर्थ पञ्चक तत्वज्ञाः पञ्च संस्कार संयुताः।
अकार त्रय सम्पन्नाःते वै भागवताः स्मृताः।।

अर्थ पञ्चक का सिद्धान्त जान लें। अर्थ पञ्चक क्या है ? पाँच ही वस्तुएँ तो हमें जाननी हैं-

१- हमारा क्या स्वरूप है अर्थात् **स्वस्वरूप।**

२- हमारे परमात्मा का क्या स्वरूप है अर्थात् **परस्वरूप।**

३- परमात्मा को जानने के जो उपाय हैं उनका स्वरूप-**उपायस्वरूप।**

४- परमात्मा को जानने का फल क्या है, अर्थात् - **फलस्वरूप।**

५- परमात्मा को जानने में विरोधी कौन हो रहे हैं - **विरोधीस्वरूप।**

यही अर्थ पञ्चक है।

एक आप बड़ा रोचक प्रकरण देखियेगा कि सीता हरण के पश्चात् भगवान को पाँच-पाँच विभूतियाँ मिलीं, पाँचों महाविभूतियों के दर्शन से एक-एक स्वरूप की व्याख्या हुई।

१- सीताहरण के पश्चात् सबसे पहले भगवान को जटायु जी मिले।

२- तत्पश्चात् शबरी जी मिलीं।

३- तदनन्तर नारद जी मिले।

४- इसके पश्चात् हनुमान जी मिले।

५- और फिर सुग्रीव जी मिले।

इस प्रकार पाँच प्रकार के लोग मिल रहे हैं। और ये पाँचों भगवान के भक्त हैं। इन पाँचों के दर्शन से हमें दार्शनिक संकेत भी मिले कि जटायु जब भगवान को मिल रहे हैं तो वहीं पर **'स्व-स्वरूप'** की व्याख्या हो रही है, क्योंकि जब तक 'अर्थ पञ्चक' का तत्व समझ में नहीं आता तब तक भक्ति नहीं मिलती। सीता जी भक्ति हैं और उनको पाने के लिये अर्थ पञ्चक चाहिये। इसलिये भगवान ढूँढ रहे हैं-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी।।

सबसे पूछ तो रहे हैं पर क्या कोई बता रहा है ? क्या सीताजी राम जी को यहाँ मिल जाएँगी ? नहीं मिलेंगी क्योंकि जब तक ये पाँचों नहीं मिलेंगे, जब तक उनके सामने अर्थपञ्चक की भली-भाँति व्याख्या प्रस्तुत नहीं हो जाएगी, तब तक सीता जी उन्हें कथमपि नहीं मिल सकेंगी। इसलिये पहले जटायु जी, भगवान को मिलते हैं। जटायु के दर्शन से भगवान के समक्ष 'स्व-स्वरूप' की व्याख्या स्पष्ट हो रही है। जीव का स्वरूप क्या होना चाहिये ? शुद्ध जीवात्मा का स्वरूप क्या है ? जीव की गति क्या है ? जटायु जो खग था वो नीचे गिरा-

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी।।

जटायु खग थे। 'खं आकाशं गच्छति इति खगः' पंख कटने पर जटायु नीचे गिर पड़े। संकेत्त यही है कि पंख कटने पर जटायु नीचे गिर रहे हैं मानो इसका तात्पर्य है कि जब हमारी जीवन की विडम्बनाओं से लोक और परलोक दोनों पक्ष कट जाएँ, दोनों से व्यक्ति बहिर्भूत हो जाए, अन्त में पृथ्वी पर पड़ जाए अर्थात् भगवान के चरणों की शरणागति स्वीकार कर ले, तब लोक परलोक सब ठीक हो जाएगा। जटायु जी निष्पक्ष होकर भगवान की शरणागति स्वीकार कर रहे हैं। 'काटेसि पंख परा खग धरनी', यहाँ पर 'परा' शब्द आया है, गिरा नहीं क्योंकि पड़ने और गिरने में अन्तर है। जब सिर से व्यक्ति नीचे आता है तो उसे गिरना कहते हैं और जब मुँह से गिरता है तो उसे पड़ना कहते हैं। जटायु गिरे नहीं पड़े क्योंकि उन्होंने साष्टांग दण्डवत किया मानों वो पृथ्वी माता से क्षमा माँग रहे थे कि मुझे क्षमा कर दीजिये मैं आपकी बेटी की रक्षा नहीं कर पाया! और दण्डवत फिर क्यों किया मानो दण्डवत इसलिये किया कि हे रघुनाथ जी, यहीं आपके चरण पड़े हैं और मैं आपके चरणों की शरणागति ले रहा हूँ। पृथ्वी है क्या ? राम जी की भक्ति ही पृथ्वी है-

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई।।

तथा भगति सुख सुन खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।

इसलिये भक्ति पृथ्वी है, और पृथ्वी की शरण में जटायु जी हैं। जीव का पहला स्वरूप यही है कि जीव भक्ति की शरणागति ले ले। भगवान की शरणागति मिले या न मिले, यदि वो पहले भक्ति की शरणागति ले लेगा, तो भगवान अपने आप उसको उठा लेंगे! यही यहाँ हो रहा है-

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन चिन्ह रेखा।।

जटायु पड़ गए। श्रीराम उनके सिर पर कर कमल का स्पर्श कर रहे हैं मानों भगवान कह रहे हैं कि जो भक्ति की शरण में आ जाएगा, उसके पाप, ताप और माया तीनों ही मैं मिटा दूँगा-

शीतल सुखद छाँह जाकर की, मेटत पाप ताप माया।

निशि बासर तेहिं कर सरोज की, तुलसिदास चाहत छाया।।

इसलिये-'कर सरोज सिर परसेउ' प्रभु ने जटायु जी के सिर पर कर कमल का स्पर्श किया। यही स्व-स्वरूप है। यही जीव का अपना रूप है। भगवान के निकट रहना, उनका सामीप्य ही जीव का स्वरूप है। भगवान ने जटायु को अपनी गोद में ले लिया है। अद्भुत आनन्द हो रहा हो रहा है। शरीर गोद में पड़ा है। मुख से राम-राम निकल रहा है। शरीर राम जी के नेत्र के जल से भीग रहा है। आँखों से भगवान की रूप माधुरी के दर्शन हो रहे हैं और अन्ततोगत्वा-

गीध देह तजि धरि हरिरूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।

जटायु जी ने श्रीहरि का रूप धारण किया। जीव का स्वरूप देखिये कि ब्रह्म को जानने के पश्चात् भी जीवात्मा के अस्तित्व का रहना, यही उसका स्वरूप है, ब्रह्म है। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। श्रुति कहती है कि ब्रह्म को जानने वाला 'ब्रह्मैव' भवति। लोग समझ नहीं पाते हैं, वो ब्रह्म + एव सन्धि करते हैं। यहाँ ब्रह्म एव सन्धि नहीं है। यहाँ ब्रह्म + आ + इव सन्धि है कि ब्रह्म को जानकर जीव ब्रह्मणः आ इव भवति, थोड़ा सा ब्रह्म के समान हो जाता है। थोड़ी सी उसमें समानता आ जाती है, वो भी पूरी नहीं आती है। इसीलिये जटायु थोड़ा सा ब्रह्म के समान हो रहे हैं-'गीध देह तजि धरि हरि रूपा' रूप की समानता आई पर पूरी नहीं आई। वैष्णव रूप मिला पर राम रूप नहीं मिला 'भूषन बहु पट पीत अनूपा' क्या द्विभुज ब्रह्म का रूप मिल गया ? जी नहीं, श्यामल गात विशाल भुज चारी' जटायु को श्याम शरीर मिला, विशाल चार

भुजाएँ मिलीं पर द्विभुज ब्रह्म का स्वरूप नहीं मिला क्योंकि राम जी अपना रूप किसी को दे ही नहीं सकते। कोई राम नहीं बन सकता है, विष्णु बन सकता है, सब कुछ बन सकता है।

पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा।।

राम तो राम हैं। उनका रूप किसी को मिल ही नहीं सकता। सादृश्य होता है, वही नहीं होता। जीव ब्रह्म नहीं हो सकता। जीव ब्रह्म के समान न हो जाएगा! सादृश्य भेद घटित होता है। प्रतियोगिता अनियोगिता बनी रहती है। न्याय में 'भेद घटित सादृश्य' होता है। इसलिये 'ब्रह्मणः आ इव भवति' जीव ब्रह्म से थोड़ी सी समानता प्राप्त कर सकता है।

इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यमागता।

भगवान के समान धर्म हो सकते हैं। सादृश्य क्या है–'तद् भिन्नत्वे सति तद्गत भूयो धर्मवत्वम्' अपने प्रतियोगी से भिन्न रहकर उसके बहुत से धर्म आ जाते हैं, इसलिये भगवान से वो भिन्न हैं। जटायु भगवान नहीं हैं और भगवान से भिन्न हैं और भगवान का धर्म ये मिला कि श्यामल शरीर मिल गया–'श्यामल गात' और अन्तर ये है कि राम जी के दो भुजाएँ हैं और इनके चार भुजाएँ हैं–''विशाल भुजचारी' यही राम जी से अन्तर है और थोड़ी सी और समानता है कि 'जल भरि नयन' राम जी की आँखों में आँसू हैं तो इधर 'अस्तुति करत नयन भरि बारी' जटायु की आँखों में भी आँसू हैं। हरि का रूप धारण करने पर भी जटायु जीव है और भगवान राम ब्रह्म हैं।

जौं सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।

इसलिये तो एक भिक्षुक ने कहा कि मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया पर मुझे कुशल वसुता नहीं मिली। अर्थात् मैं धनाढ्य नहीं बन पाया अथवा 'कुश लव सुता' नहीं मिली, कुश लव जिनके पुत्र हैं अर्थात् सीता जी मुझे नहीं मिलीं। सीता तो केवल राम को मिल सकती हैं, जीव को सीता नहीं मिल सकतीं। उसने कहा–

जनस्थाने भ्रान्तं कनकमृगतृष्णान्धितधिया।
वचोवैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपितम्।।
कृता लंकाभर्तुर्वदन परिपाटीषु घटना
मयाप्तं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगिता।

उसने कहा कि मैंने रामत्व को प्राप्त किया। राम के कुछ गुण मुझे मिले पर

कुशल वसुता मुझे नहीं मिली। कुश लव सुता तो राम जी की ही पत्नी है। सीता जी केवल राम जी की हैं और किसी की नहीं हैं। इसलिये सीता जी को प्राप्त करना जीव का कार्य नहीं है। रावण सीता जी को प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि सीता जी तो राम जी को ही मिलेंगी। आह्लादिनी शक्ति परमेश्वर की शक्ति है, जीव की शक्ति नहीं।

एतावता, जिस पर परमात्मा की कृपा होती है वही उन्हें जान पाता है और कोई नहीं जान पाता है। आप देखिये कि केवट कहता है कि 'कहइ तुम्हार मरम मैं जाना' मैं आपका मर्म जानता हूँ।

भगवान ने कहा-तुम जान गए ?

केवट ने कहा- हाँ। गंगा जी के किनारे रहता हूँ। गंगा जी की धारा में बैठा हूँ तो 'भक्त्या मामभिजानाति' तो 'राम भगति जहँ सुरसरि धारा।' और 'सुरसरि तीर आप चलि आए' ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः का यहाँ सीधा खण्डन कर रहे हैं। 'ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः' का अर्थ है ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती, बिलकुल ठीक है। उसी प्रकार बिना भक्ति के भगवान का ज्ञान हो ही नहीं सकता। अन्तर है-

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणाः मनोरथेनासति धावतो बहिः।।

श्रीमद्भा० ५/१८/१८

अर्थात् जिसके हृदय में भगवान के प्राति निष्किञ्चना भक्ति होती है उसी के समीप सभी देवता, सभी गुणों के साथ विराजते हैं। जिसके हृदय में भगवान के प्रति भक्ति नहीं होती उसमें श्रेष्ठ गुण आ ही नहीं सकते। वह झूठे मनोरथों से प्रेरित होकर नाशवान बहिरंग संसार में दौड़ता रहता है।

जिसके जीवन में भगवान के प्रति भक्ति नहीं उसमें महद्गुण आ ही नहीं सकते। जब भगवान के चरणों में हमारा प्रेम होता है, तो धीरे-धीरे वे गुण आने लगते हैं। धीरे-धीरे सारी विशेषताएँ, विलक्षणतायें आने लगती हैं। बदल जाता है व्यक्ति। देखिये, जो वाल्मीकि कितने क्रूर रहे होंगे अपने पूर्व जीवन में और कहा तो यह जाता है कि जब तक वो ब्राह्मणों की हत्या करके यज्ञोपवीतों से कुआँ नहीं भर देते थे, तब तक उन्हें सन्तोष नहीं होता था, वही वाल्मीकि भजन करते-करते कितने बदले कि एक क्रौञ्च पक्षी का वध भी वो नहीं सह पाए। व्यक्ति में सुधार आता है भक्ति से। भक्ति सुधारती और भगवान उद्धारते हैं। भगवान सुधार नहीं पाते हैं, सुधारती तो भक्ति ही है। सामान्य उदाहरण आप देखिये कि आपके पास बालक हो

और वो शौच करके आया हो तो आप थोड़े ही बालक को धोएँगे ? सुन्दर स्वच्छ करेगी माता ही, पिता नहीं स्वच्छ कर सकता ! इसलिये भगवान उद्धार करते हैं पर भक्ति सुधार करती है, यही अन्तर है। इसलिये जीवन में अन्तर यहीं आता है कि जब व्यक्ति भगवान का भक्त नहीं होता है तो वहाँ मारकत्व रहता है और यहाँ भगवान तारक हो जाते हैं। इसलिये पहली बार भगवान के स्व-स्वरूप का दर्शन हो रहा है जटायु के यहाँ, इसका तात्पर्य यही है कि भगवान को प्राप्त कर लेने के बाद भी जीव का जीवत्व बना रहता है जैसे नदी समुद्र में मिलती है, अपने नाम, रूप को भूल जाती है, अपने को समर्पित कर देती है फिर भी नदी का जल वहाँ रहता है, ऐसा नहीं कि नहीं रहता है। हम आप भले ही उसे न समझ पाएँ पर नदी का जल रहता तो है ही, उसी प्रकार व्यक्ति भगवान को प्राप्त करने के पश्चात् अपना स्वत्व छोड़ देता है, भगवान का हो जाता है, भगवान का दास बन जाता है, वो अपना नहीं रह जाता। वो स्वतन्त्र नहीं रह जाता, भगवत् परतन्त्र बन जाता है, यही उसका तात्पर्य है।

यथा एवं विद्वान् नामरूपात् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

पुरुषं उपैति उप + एति पुरुष के समीप जीव चला जाता है-

सरिता जल जलनिधि महिं जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

समुद्र में जल जाता है और फिर क्या नहीं लौटता है ? लौटता है। उसी समुद्र में से मेघ जब जल को ले आता है और उसे बरसाता है तब सारे कृषकों का लाभ हो जाता है, समुद्र से किसी का लाभ नहीं होता है। इसी प्रकार जब तक जीव भगवान के पास रहता है वो जगत का कल्याण नहीं कर पाता और वही जब मेघ रूप सन्तों का साथ करके संसार में आता है तब कृषक रूप सामान्य जीव का उद्धार कर देता है। जब तक समुद्र में जल है, वह क्या उपकार करेगा ? इसलिये भगवान के पास रह कर जीव उतना उपकार नहीं कर सकता जितना सन्त के पास रहकर कर सकता है क्योंकि भगवान समुद्र हैं और सन्त मेघ हैं। क्योंकि-

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा।।

जब भगवान राम बनवास जाने लगे तो ग्रामवासियों ने भगवान राम को देखा और पहली बार एक शब्द का प्रयोग किया-

पुन्यपुञ्ज मग निकट निवासी। तिनहिं सराहहिं सुरपुर बासी।।
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता अनुज सहित घनश्यामहिं।।

वे मग निवासी धन्य हैं, जो भर नेत्र राघव जी सरकार को सीता जी और लक्ष्मण जी के सहित निहार रहे हैं। आज भगवान घनश्याम हैं। घन के समान श्यामल हैं और उधर भी 'लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा' पूरी रामायण में दो बार भगवान 'घनश्याम' बने। प्रश्न किया कि आज आप घन के समान श्याम क्यों हैं सरकार ? उत्तर दिया कि आज मैं घन के समान श्याम इसलिये हूँ क्योंकि सन्त घन हैं और आज मैंने सन्त के समान रूप धारण किया है।

राम सिन्धु घन सज्जनधीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा।।

जटायु भगवान को पाकर भी अपने स्वरूप को रखे हुए हैं। इसका तात्पर्य यही है कि भगवान को पाकर भी व्यक्ति भजन नहीं छोड़ता-

श्यामल गात विशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

आज भी सेवक-सेव्य भाव बना हुआ है। इसलिये श्रुति कहती है **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सः ब्रह्मणा विपश्चिता।'** अर्थात् भगवद् भक्त परमात्मा के साथ रहता हुआ उनके सभी भोगों को भोगता है। ब्रह्मसूत्र में भी लिखा है 'भोगमात्र साम्य लिंगात्' जीव केवल भोगमात्र में भगवान की समता प्राप्त कर सकता है और कहीं जीव भगवान की समता नहीं प्राप्त कर पाता केवल भोग मात्र में उसकी तुलना हो जाती है। एतावता, जटायु-दर्शन से आज भगवान ने 'स्व-स्वरूप' की व्याख्या सिद्ध की।

जब भगवान शबरी माँ के पास आए तो भगवान 'पर-स्वरूप' की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं। परमात्मा का स्वरूप हो कैसा सकता है-

ताहि देइ गति राम उदारा। शबरी के आश्रम पगु धारा।।

आज परमात्मा अपने ईश्वरत्व का परिचय दे रहे हैं। शबरी के पास कोई साधन नहीं है। शबरी के यहाँ परमात्मा फल खा रहे हैं। 'प्रेम सहित प्रभु खाए बारम्बार बखान' भगवत्व का भी परिचय है और 'पर-स्वरूप' का भी परिचय है। परमात्मा का यही तो स्वरूप है कि वो भक्त को आनन्द दें। 'भक्त मनोरथ पूरकत्वम् परमात्मत्वम्।' परमात्मा का स्वरूप है भक्त के मनोरथ को पूर्ण करना। शबरी को मनोरथ है कि परमात्मा मेरे बेटे बनें और परमात्मा मेरे हाथ का दिया हुआ फल खाएँ और उसी मनोरथ को परमात्मा पूर्ण कर रहे हैं-

कन्द मूल फल सुरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारम्बार बखानि।।

यह परमात्मा का पर-स्वरूप है। यह परमात्मा का स्वरूप सकलविरुद्ध धर्माश्रयत्व रूप है। भगवान को कभी भूख नहीं लगती, यहाँ लग रही है। भगवान कभी खाते नहीं पर आज पा रहे हैं, यही तो परमात्मा का स्वरूप है जिसका हम निर्धारण नहीं कर सकते। श्रुति ने तो कह दिया - **'अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'** श्रुति ने कहा कि मैंने तो कहा था कि आप नहीं खाते। भगवान ने उससे एक विनोद किया। भगवान ने कहा कि पत्नी के सामने भूख नहीं लगा करती पर माँ के सामने तो भूख लगती ही है। पत्नी कहती है कि अरे अमुक के पापा खा लो। तब पति कहता है कि नहीं मन है और माता जी कहती हैं कि बेटा खा लो और बेटा कहता है कि नहीं मन है तो माँ कहती है कि दूँगी चार चाँटे, चुपचाप खा ले तो बेटा कहता है कि अच्छा माँ ले आओ, अभी खा लेता हूँ। पत्नी के सामने कभी कोई नहीं कहता है कि बहुत भूख लगी है। **'क्षुधातृषार्ता जननी स्मरन्ति।'** आज भगवान को भूख लगी है। तुलसीदास जी ने कहा कि आप इतने बड़े हैं फिर भी भूख लगी है।

दानव देव महेश गणेश सुरेश महामुनि सिद्ध समाजी।
जग जाँचक दानिबि की ये नहीं तुम ही सबकी सब राखत बाजी।।
एते बड़े 'तुलसीस' तऊ शबरी के दिये बिनु भूख न भाजी।
राम गरीब नेवाज बने हौ गरीब नेवाज गरीब नेवाजी।।

हे परमात्मा, इतने बड़े होने पर भी जब तक शबरी ने आपको नहीं खिलाया, तब तक आपका पेट नहीं भरा। श्रुति ने कहा-**'अविजिघित्सः'**, आपको भूख नहीं लगती भगवान ने कहा-पत्नी के सामने भूख थोड़े ही लगती है, भूख तो माँ के सामने लगती है। तुम क्या खिलाओगी ? तुम्हारे पास क्या है ? तुम तो बेर को 'अपथ्यम्' कह रही हो - **'धात्रीफलं भवेत् पथ्यं अपथ्यं बदरीफलम्।'** जिसको तुम 'अपथ्य' कह रही हो, उसी को मैं चकाचक खा रहा हूँ। 'प्रेम सहित प्रभु खाए, बारम्बार बखानि।' यह भगवान का पर-स्वरूप है। सारे विरुद्ध धर्मों का जो आश्रय हो, वही परमात्मा हो सकता है। श्रुति कहती है कि इनको भूख नहीं लगती। भगवान कहते हैं कि मुझे भूख लगती है तुम खिलाकर तो देखो। श्रुति कहती है कि इनको प्यास नहीं लगती है, भगवान कहते हैं कि चकाचक प्यास लगती है। श्रुति कहती है

कि इनको कामना नहीं, भगवान कहते हैं कि कामना होती है मेरे पास। किसने कहा कि कामना नहीं होती, माँ के समक्ष सब कामना होती है। इसलिये-

ब्याह न कीन्हेउँ सपनेहुँ, पति दर्शन नहिं कीन्ह।
शबरी पुत्रवती भईं, प्रभु गोदी भर दीन्ह।।

ये भगवान का 'पर-स्वरूप' है।

मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा।।

परमात्मा शबरी को मुक्त कर रहे हैं-

जाति हीन अघ जन्म महि, मुकुत कीन्हि अस नारि।
महा मन्दमति सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिं बिसारि।।

यह है 'पर-स्वरूप' की व्याख्या।

नारद जी जब मिलते हैं तो उनके मिलने पर 'उपाय-स्वरूप' की व्याख्या की गई। कैसे परमात्मा मिलेंगे ? यहाँ भगवान ने 'उपाय-स्वरूप' की व्याख्या की। जीव कौन सा उपाय करके भगवान को पा सकता है और बता दिया कि 'राम सकल नामन ते अधिका।' केवल राम नाम जप करके जीव भगवान को पा सकता है।

कलि पाखण्ड प्रचार प्रबल पाप पामर पतित।
तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल।।

नारद जी कहते हैं-

राम सकल नामन ते अधिका। होहु नाथ अघ खग गन बधिका।।

राम नाम जप करके जीव भगवान को पा सकता है। नारद-मिलन से भगवान ने 'उपाय-स्वरूप' की व्याख्या की।

भगवान को मिलने का फल क्या है, ये है 'फल-स्वरूप' की व्याख्या। 'जीव पाव निज सहज स्वरूपा' हनुमान जी जब मिलते हैं तो-

पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर वेष की रचना।।

ये 'फल-स्वरूप' है। भगवान को पाने पर क्या फल मिलता है, जो हनुमान जी को मिला। इतना फल मिला कि पीठ पर बैठा लिया-

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिये दुऔ जन पीठि चढ़ाई।।

यह फल हनुमान जी को मिला 'तब रघुपति उठाइ उर लावा' तब भगवान ने हनुमान जी को उठाकर हृदय से लगा लिया। वाल्मीकि रामायण में सुग्रीवादि ने भगवान से पूछा कि आपने हनुमान जी को कुछ दिया ? भगवान ने कहा कि मेरा सर्वस्वभूत है मेरा आलिंगन, मैं जल्दी किसी को गले से नहीं लगाता-

एष सर्वस्वभूतोमे परिष्वङ्गो हनूमतः।

इमं कालं मया प्राप्य दत्तो ह्यस्य महात्मनः।।

मेरा जो सर्वस्वभूत आलिंगन है, परिष्वङ्ग है, वों मैंने हनुमान जी को दे दिया, सब कुछ तो दे दिया, अब कुछ भी नहीं बचा। ये 'फल-स्वरूप' है। हनुमान जी का पूरा प्रकरण, जो वर्णन किया गया, हनुमान जी के साथ जो यहाँ पर राम जी का समागम हुआ यहाँ 'फल-स्वरूप' की व्याख्या की गई।

मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा।।

भगवान, हनुमान जी से क्यों चिढ़ रहे थे ? हनुमान जी ने कहा कि मुझे एक बात समझ में नहीं आई कि जब मैं ब्राह्मण रूप में था तब आपने मुझे गले से क्यों नहीं लगाया ?

भगवान ने कहा कि, क्या ब्राह्मण रूप तुम्हारा सहज स्वरूप है ? तुम्हारा सहज स्वरूप है दास होना और इस अवतार में मैंने दासत्व की आज्ञा किनको दी है-

बानर तन धरि धरनि महँ, हरि पद सेवहु जाय।

सेवा का अधिकार मिला है वानर तन को और जिसे सेवा का अधिकार मिला है, उसे तुम छिपा रहे हो। अरे! ब्राह्मण बन करके, तुम तो स्वामी बन बैठे, मैं स्वामी को थोड़े ही गले से लगाउँगा। जब तक सेवक का स्वरूप नहीं रहेगा, तब तक गले से नहीं लगाउँगा। इसलिये-

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तन प्रगटि प्रीति उर छाई।।

तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।।

यहाँ दोनों बातें हैं कि राम जी गले से तब लगाएँगे, जब कपट स्वरूप छूट जाए, क्योंकि-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।।

भगवान ने कहा कि तब तो रावण और तुममें अन्तर ही क्या है ? अन्तर तो इतना ही है कि रावण सन्यासी बना था और तुम ब्रह्मचारी बने।

हनुमान जी ने कहा कि अन्तर तो है ही सन्यासी बनकर वो आपकी पत्नी को चुरा ले गया था और मैं ब्रह्मचारी बनकर आपकी पत्नी को ले आता।

भगवान ने कहा कि नहीं ला पाते। सम्भव ही नहीं, क्योंकि जब तक कपट स्वरूप रहेगा, सीताजी मिल ही नहीं सकतीं। कपटी को सीता जी थोड़े ही मिलेंगी, सीता जी तो मिलेंगी भक्त को। ब्राह्मण को सीता जी दर्शन नहीं देंगी, और डर जाएँगी कि हो सकता है ये कहीं रावण का ही प्रतिरूप हो। इसलिये पहले तुम वानर बनो, तब सीता जी तुमको दर्शन देंगी।

हनुमान जी ने कहा कि वानर को क्यों सीता जी दर्शन देंगी ?

भगवान ने कहा कि मैंने विशेषण दिया है कि सीता जी 'मृगनयनी' हैं-'तुम देखी सीता मृगनयनी' और वानर कौन हैं ? तो कहा-'शाखामृग कै बड़ि मनुसाई' तो मृगनयनी तो मृग को मिलेगी !

दूसरी बात यह है कि सीता जी का पीला वर्ण है और तुम भी वानर रहोगे तो पीले वर्ण के रहोगे। कनक वर्णा सीता और तुम भी कनक वर्ण के, अतः जब तक सीता जी का सादृश्य नहीं मिलेगा तब तक मैं तुमको गले से नहीं लगा सकता और तब तक तुम सीता जी को भी नहीं पा सकते।

तीसरी बात यह है कि मुझे तुम्हें भेजना है सीता जी के पास और मृगियों ने व्यंग्य किया है-

हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम कहँ भय नाहीं।।

मुझे देखकर मृग भागते हैं। मृगी कहती हैं कि नहीं, नहीं, तुम मस्ती में खेलो, तुम पर ये वार नहीं करेंगे। ये तो सोने का मृग ढूँढने आए हैं-

तुम आनन्द करहु मृग जाए। कञ्चन मृग खोजन ये आए।।

ये तो कञ्चन मृग ढूँढने आए हैं और हनुमान जी तुम भी कञ्चन वर्ण बनो-

कञ्चन बरन बिराज सुबेषा। कानन कुण्डल कुञ्चित केशा।।

इसलिये हनुमान जी का स्वरूप 'फल-स्वरूप' है और फल है भगवत्कृपा वो भी जब-

मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई।।

जब तक चतुराई रही, तब तक कृपा नहीं और जब चतुराई छूटी तब कृपा हो गई।

तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।।

सुग्रीव के दर्शन से भगवान ने 'विरोधी-स्वरूप' का वर्णन किया। भगवान की भक्ति में कौन-कौन विरोधी है, देखो-

सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई।।

यह सब राम भगति के बाधक। कहहिं सन्त तव पद अवराधक।।

जब तक तुम अपना सुख भगवान का नहीं मानोगे तब तक तुम भजन नहीं कर सकते। सम्पत्ति भगवान की मानो, तब भजन होगा, परिवार भी भगवान का मानो छोड़ो मत उसको, बड़ाई भगवान की मान लो। हमको जब राष्ट्रपति पुरस्कार की सूचना मिली, तो हम आए राघव के पास, लो राघव, तुम्हारे गुरु जी का पुरस्कार है, तुम जानो और वे जानें। हमको क्या, हम तो जैसे तब थे वैसे ही अब हैं। इसलिये प्रत्येक उपलब्धि भगवान की मानो। किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा और भजन बढ़ता जाएगा।

एतावता, भगवान राम को सीता-हरण के पश्चात्, ये जो पाँचों महाविभूतियों के दर्शन हुए, ये अर्थ-पञ्चक का संकेत कर रहे थे। तो मेरे इस वक्तव्य का इतना ही तात्पर्य आज है कि भगवान राम आज पञ्चवटी में पूरे वातावरण में बैठे हैं और ललित-नर-लीला का प्रारम्भ कर रहे हैं। वो जानते हैं कि 'ललित-नर-लीला' में अब सीता जी का यहाँ उपस्थित रहना ठीक नहीं रहेगा। क्योंकि ललित-नर-लीला में नायिका दूसरी होनी चाहिये। लीला-शक्ति नायिका होनी चाहिये। यह अनुकरणीय लीला नहीं होगी। एतावता-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।।

लक्ष्मण जी जब कन्द मूल फल लेने चले गए-

लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कन्द।
(तब) जनकसुता सन बाले बिहँसि कृपा सुख वृन्द।।

जनकनन्दिनी के समक्ष भगवान हँसकर कह रहे हैं कि देखो मैं ललित-नर-लीला करूँगा। जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास कर

लो! ये कितनी बड़ी बात है! सामाजिक दृष्टि से भी पत्नी के लिये कितनी बड़ी चुनौती है ये। आज कोई पति अपनी पत्नी से कहे कि आग में चली जाओ तो पत्नी यही कहेगी कि मैं नहीं जा सकती, तुम्हें जो कुछ करना है करो परन्तु क्या सीता जी ने किसी प्रकार का विरोध किया ? उस बार विरोध किया जब घर में रहने के लिये कह रहे थे तब विरोध किया था कि नहीं, मैं आपके साथ वन में चलूँगी और आज अग्नि में जाने के लिये विरोध नहीं कर रही है क्योंकि सीताजी जानती हैं कि वह परिस्थिति दूसरी थी और यह परिस्थिति दूसरी है। वहाँ यदि मैं घर में रह लेती तो भगवान की लीला ठीक नहीं हो सकती थी, परन्तु यहाँ अब मेरी उपस्थिति ठीक नहीं रहेगी। यहाँ पावक में रहना उचित ही होगा।

सीता जी का पावक में रहना क्यों उचित होगा, और लक्ष्मण जी की उपस्थिति क्यों बाधक बनेगी, इसकी चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

द्वितीय वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ तृतीय वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १४-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।

श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा जगन्नियन्ता जगदीश्वर सर्व-सर्वेश्वर भगवान श्रीराम की लीला के सामान्य रूप से तीन भेद कहे जा सकते हैं-

१. गुप्त लीला
२. प्रकट लीला
३. गुप्त प्रकट दोनों प्रकार की लीला

बालकाण्ड के प्रथम दोहे की आठवीं पंक्ति में कहते हैं-

सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहिं खानिक।।

भगवान की लीलाओं में बहुत से अंश गुप्त होते हैं, बहुत से अंश प्रकट होते हैं और बहुत से अंश प्रकटाप्रकट होते हैं परन्तु इतना ध्यान रखनाचाहिये कि लीलाएँ कभी अनित्य नहीं होतीं भगवान की लीलाएँ निरन्तर नित्य होती हैं। भगवान के यहाँ कभी भूतकाल या भविष्यत् काल नहीं होता। परमेश्वर के यहाँ निरन्तर वर्तमान काल ही रहता है, वहाँ न कोई भूत है न भविष्यत्। इसलिये लीलाओं का जब वर्गीकरण होता है एक बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि लीला क्या है? पहले लीला-पदार्थ पर हम थोड़ी देर विचार करेंगे।

सामान्य रूप से लीला माने खेल होता है। जब परमेश्वर इतर निरपेक्ष होकर, स्वानन्द सापेक्ष होकर कोई क्रीड़ा करते हैं तो वही लीला कही जाती है अर्थात् जहाँ और किसी की कोई अपेक्षा नहीं होती, केवल अपने आनन्द के लिये जहाँ बालक खेलता है वो उसकी लीला होती है परन्तु भगवान के यहाँ ऐसा नहीं है। भगवान तो लीला ही लीला में, खेल-खेल में ही संसार को बना डालते हैं। अद्वैतवादियों के मत में यह संसार परमेश्वर का अविद्या-विलास है, परन्तु हमारे मत में यह अविद्या विलास नहीं है, क्योंकि भगवान के यहाँ अविद्या हो ही नहीं सकती। इसलिये श्रौत-सिद्धान्त के अनुसार यह संसार भगवान का लीला-विलास है। अद्वैती कहता है अचिद्-विलास है। गोस्वामी जी कहते हैं-

रघुपति भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझे।
तुलसिदास यह चिद् विलास जग बूझत बूझत बूझे।।

यह परमात्मा का चित् विलास है। इसलिये भगवान की दो लीलाएँ हैं-

१. निर्गुण लीला

२. सगुण लीला

निर्गुण-लीला का विलास ये संसार है, जिसमें हम लोग हैं।

सगुण-लीला का विलास भगवान का अवतार हैं। भगवान की जो अवतार लीला हैं वो सगुण लीला हैं।

गोस्वामी जी कहते हैं कि राम-सुयश का जब जल-वर्षण होता है और उस राम-सुयश रूप जल में जो स्वच्छता है, वो सगुण-लीला का व्याख्यान ही है-

लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।।

भगवान की सगुण लीला जल की स्वच्छता है क्योंकि यह सिद्धान्त है कि हमारे भगवान कबीर साहब के जैसे निर्गुण भगवान नहीं है।

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम कर मरम है आना।।

वो ऐसे भगवान नहीं हैं। कबीर साहब तो कहते हैं कि राम तो दशरथ-सुत से अतिरिक्त पदार्थ है। दशरथ सुत राम, ब्रह्म नहीं हो सकता और गोस्वामी जी कहते हैं कि यही तुम गलत बोल रहे हो। भगवान के लिये यदि कोई सबसे भयंकर गाली है तो यही कह दो कि दशरथ सुत राम जी ब्रह्म नहीं हैं। यदि भगवान को कोई बात सबसे अधिक अप्रिय लगती है तो यही बात कि दशरथ नन्दन भगवान राम ब्रह्म नहीं हैं, उसी प्रकार कन्हैया जी को जो बात सबसे अप्रिय लगती है जब कोई यह कह देता है कि यशोदानन्दवर्धन कन्हैय्या जी भगवान नहीं हैं। एक बार बलदाऊ जी ने कह दिया था तो कन्हैय्या ने कहा-

मैय्या मोहे दाऊ बहुत खिझायो।
मो सन कहत मोल को लीन्हों तू जसुमति कब जायो।

दाऊ ने मुझे खिझाया, माने क्रुद्ध कर दिया मैं खीझ गया। मुझसे कहते हैं कि तू मोल का खरीदा हुआ है। तुझे यशोदा जी ने कब जन्म दिया है ?

कहा कहूँ यहि रिसि के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन हैं माता को है तेरो तात।।

मुझे इतना क्रोध आता है कि मैं खेलने भी नहीं जाता क्योंकि मुझसे बार-बार कहते हैं कि तुम्हारी माता कौन ? तुम्हारे पिता कौन ? अन्त में इस खेद को दूर करने के लिये माता जी को गौ माता की सौगन्ध लेनी पड़ी-

सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत हीं को धूत।
सूर श्याम मोहे गोधन की सौं हौं माता तू पूत।।

भगवान यह कहते हैं कि मैं भगवान होकर भी कौसल्या की सन्तान हूँ, यही स्पष्ट है। मैं भगवान होकर भी यशोदा की सन्तान हूँ, यही स्पष्ट है।

व्यापक ब्रह्म निरञ्जन निर्गुन बिगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद।।

यह हमारा श्रौत-सिद्धान्त है। जो वेद वेद्य निरस्त समस्त हेय गुण प्रत्यनीक संकलित सकल कल्याण गुणगणैकनिलय है, वही आनन्दकन्द वही परमेष्ठि के भी परम पूज्य, वही परमव्योम के महातात्पर्य सच्चिदानन्दघन मोचितभक्तभवबन्धन कौसल्यानन्दवर्धन प्रभु निर्गुण निराकार साकार सगुण हित सकल भूमि भार अतिशि कुसुमसुकुमार देह प्रभा विधु कोटि-कोटि मार श्रीमद् कौसल्याकुमार ही साक्षात् वेदवेदान्तवेद्य परब्रह्म हैं, यह सिद्धान्त है। इसलिये जब यह सिद्धान्त है तो सगुण और निर्गुण में तत्वतः कोई भेद नहीं है। सगुण निर्गुण दोनों एक ही वस्तु हैं या यों कह लो कि एक पर्याय है। इसलिये कबीर साहब के मत में सगुण पक्ष दूसरा है और निर्गुण पक्ष दूसरा है। शंकराचार्य कहते हैं कि सगुण ब्रह्म में जो गुण आया है, वो माया का गुण है। सत्व गुण, रजो गुण और तमो गुण माया के हैं और ये गुण जब भगवान में आ जाएँगे, तब तो भगवान मायिक हो जाएँगे।

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।

गीत १४/५

कहते हैं कि प्रकृति माने माया। ये गुण माया से उत्पन्न हुए हैं। सत्व गुण, रजो गुण और तमो गुण माया से उत्पन्न हुए हैं और ये जीवात्मा को बाँधते हैं। शंकराचार्य का पक्ष ये है कि जो जीवात्मा को बाँधते हैं वो भगवान में कैसे आएँगे ? इसलिये भगवान सगुण नहीं हो सकते क्योंकि गुण भगवान में आते हैं तो वे गुण उनके नहीं हैं, माया से उन्होंने उधार ले लिये हैं। माया सबलित ब्रह्म को ही सगुण ब्रह्म कहा जाता है, यह शंकराचार्य का मत है और उन्होंने श्रुति का उदाहरण दिया-

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।

इन्द्रः माने जो परमपिता परमात्मा हैं, वो माया के कारण अनन्त अनन्त रूपों से भासित होते हैं परन्तु गोस्वामी जी के मतानुसार ऐसा नहीं है। वो कहते हैं कि भगवान के लिये कोई बात असम्भव नहीं और वास्तव में असम्भव को सम्भव करना ही तो भगवत्ता है। यदि कोई सीधी भाषा में भगवान की परिभाषा करना चाहें तो यही कहेंगे कि असम्भव को जो सम्भव करके दिखला दे उसी का नाम है भगवान। तुम लोगों को कोई न्याय की, परिष्कार की आवश्यकता नहीं है। वो तो तुम लोग हम पर छोड़ दो! तुमसे कोई सीधी सी बात कहे कि भगवान किसे कहते हैं तो कह देना कि जो हमसे न हो रहा हो, उसे जो करके दिखा दे, उसे भगवान कहते हैं। अर्थात् हम तो एक साथ रात और दिन नहीं दिखा सकते हैं पर भगवान एक साथ रात और दिन दोनों को पकड़ कर दिखा सकते हैं। वहाँ रात भी रह लेती है और दिन भी रह लेता है। जब रात को रहना होता है तो चन्द्रमा बन जाते हैं और जब दिन को रहना होता है तो सूर्य बन जाते हैं। भगवान तो सर्वसमर्थ हैं जो चाहे कर दें। वो तो हमारी जौनपुरी भाषा में 'छूँछी भरैं भरी ढरकावें। जब चाहें तब फेरिमँगावें' कहा जाता है। वो तो समर्थ हैं। वो जो चाहें वो कर सकते हैं, इसीलिये उन्हें भगवान कहते हैं और हमारी तुम्हारी भाषा में '**सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्वं भगवत्वम्**' जो सम्पूर्ण विरुद्ध धर्माश्रयता का अवच्छेदक होता है, वो भगवान होता है। 'स्वावत्छिन्नात्यन्ता भावाप्रतियोगितानवच्छेदकत्व' जिसमें होता है वो भगवान होता है। भगवान वो होता है जिसमें एक संसर्गावच्छेदेन एकाधिकरणतावच्छेदेन एक कालावच्छेदेन सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्वं भगवत्वम्।' जिसमें सारे आश्चर्य ही आश्चर्य होते हैं, वो भगवान होता है तो उसके लिये यह कैसे कहा जाए कि वो गुण उधार मँगवा लेता है ? तब रामानुजाचार्य ने कहा कि ऐसा नहीं है, निर्गुण का अर्थ है 'निरस्ताहेयगुणायेन।' जिन्होंने हेय गुणों को दूर कर दिया है इसलिये उनको निर्गुण कहते हैं अर्थात् भगवान में क्रूरता नहीं है, भगवान में दुष्टता नहीं है, भगवान में काम नहीं है, क्रोध नहीं है, लोभ नहीं है, मात्सर्य नहीं है, मद नहीं है। भगवान तो मदनमोहन हैं। उधर 'मोहम्मद' हैं, मोह भी है और मद भी है और भगवान 'मद न मोह न' हैं, उनमें मद भी नहीं और मोह भी नहीं है। इसलिये भगवान तो भगवान हैं। वहाँ विकार नहीं आ सकता। इसलिये रामानुजाचार्य जी ने कहा कि प्राकृत गुण भगवान में नहीं हैं इसलिये वो निर्गुण हैं और कल्याणगुणगण हैं, इसलिये वो सगुण हैं परन्तु हम यहाँ थोड़ा और कहेंगे कि 'निर्गुण' शब्द में निर् का अर्थ कभी भी 'नहीं

होना' मुझे नहीं समझ में आया। निर्गुण शब्द में 'निर्' का अर्थ निषेध हो, मैं तो यह नहीं समझता और यदि आप समझते हों तो बताएँ। हमने कई बार पक्ष दिया कि जब हम न उचित कहना हो तो 'निरुचित' कहते हैं ? नहीं, हम अनुचित बोलते हैं। न + उचित अनुचित। न योग्य को क्या हम निर्योग्य बोलते हैं, नहीं, अयोग्य बोलते हैं। इसलिये 'न' का अर्थ 'निर्' कभी भी नहीं होता। न आकार को हम अनाकार कहते हैं। इसी प्रकार न आवश्यक को हम अनावश्यक कहते हैं, न उपयोग को अनुपयोग कहते हैं। जब न का अर्थ 'निर्' कभी होता ही नहीं या 'न' के बदले में 'निर्' नहीं कहा जा सकता, या तो 'अ' कहा जाए या 'अन्' कहा जाए। यदि स्वर रहेगा तो 'अन्' कहेंगे और यदि स्वर नहीं रहेगा तो 'अ' कहेंगे, सिद्धान्त तो व्याकरण का यही है । 'तस्मान् नुडचि' जब अच् अर्थात् स्वर आगे रहेगा तो 'नुट' का आगम होकर 'अन्' बन जाएगा और यदि स्वर नहीं रहेगा तो केवल 'अ' रह जाएगा। न शिष्ट को हम अशिष्ट कहते हैं कोई निर्शिष्ट कहता है क्या ? इसलिये 'निर्गुण' में कैसे कह दिया जाए कि जिसके पास गुण नहीं, वह निर्गुण है। यह पक्ष सर्वथा गलत है, असंगत है। हम कहीं न कहीं से असंगत सोच रहे हैं। फिर निर्गुण का क्या अर्थ होगा ? तो हम यह कह सकते हैं कि 'निर्लीनाः गुणाः यस्मिन् स निर्गुणः' अर्थात् सारे गुण जिसमें छिपे हुए हों, वह है निर्गुण। देखिये, एक ही समय में निर्गुणत्व सगुणत्व दोनों बन जाता है जैसे पृथ्वी को ही आप लें, अभी बरसात है, तो बरसात में जो वस्तु पृथ्वी में जम रही है वो कार्तिक में नहीं जमेगी। बरसात में यह पृथ्वी मक्के को प्रकट करती है और गेहूँ यद्यपि पृथ्वी में पड़ा रहता है पर उत्पन्न नहीं होता है। जैसे बरसात आने पर गेहूँ की दृष्टि से पृथ्वी निर्गुण है और मक्के की दृष्टि से पृथ्वी सगुण है, उसी प्रकार से जब भगवान का विवाह-काल है तो वहाँ सौन्दर्य गुण को प्रकट कर दिया, तो सौन्दर्य की दृष्टि से भगवान सगुण हो गए और रौद्र गुण को छिपा दिया तो रौद्र गुण की दृष्टि निर्गुण हो गए। एक साथ सभी गुणों का प्राकट्य सम्भव नहीं है क्योंकि हमारे यहाँ गुणों का प्राकट्य होता है अपनी अपनी ख्याति के लिये और भगवान के यहाँ प्राकट्य होता भक्तों की ख्याति के लिये, अपनी ख्याति के लिये नहीं। वास्तव में गुणों की बहुत आवश्यकता है। गुण का अर्थ होता है रस्सी। जैसे कोई कुआँ में गिरा हुआ हो और उस कुएँ में गिरे हुए व्यक्ति को आप निकालना चाह रहे हों तो आप क्या करेंगे ? आप रस्सी डाल देंगे और उस रस्सी को वह कुआँ में गिरा व्यक्ति पकड़ लेगा और आप उसको खींच लेंगे और वो व्यक्ति निकल आएगा, उसी प्रकार हम जैसे जीव, संसार-सागर में पड़े हुए हैं, तो हमको निकालने के लिये भगवान ने

अपने दिव्य-दिव्य भव्य-भव्य, नव्य-नव्य, नित्य-नित्य, मधुर-मधुर, रुचिर-रुचिर, करुण-करुण, सकलकल्याणगुणगणैक समूह को परमात्मा ने हमारे पास भेज दिया है कि एक भी गुण यदि तुम पकड़ लोगे, तो निश्चित हमारे पास चले आओगे। ये रस्सी तो टूट जाती है पर वो टूटती नहीं क्योंकि वो चेतन रस्सी है। जैसे भगवान चेतन हैं उसी प्रकार भगवान के गुण भी चेतन हैं। जैसे भगवान निर्दोष हैं उसी प्रकार भगवान के गुण भी निर्दोष हैं। जैसे भगवान अनन्त हैं उसी प्रकार भगवान के गुण भी अनन्त हैं:-

राम अनन्त अनन्त गुनानी। जनम करम अनन्त नामानी।।

भगवान अनन्त हैं और उनके गुण भी अनन्त हैं, क्योंकि जल की बूँदें गिनी जा सकती हैं, पृथ्वी की धूलि के कण गिने जा सकते हैं पर रघुनाथजी के गुण-गण नहीं गिने जा सकते हैं।

जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं।।

इसलिये गुणों की बहुत आवश्यकता है। बिना गुण के परमात्मा का परमात्मत्व नहीं रहेगा। इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिये मैं भट्टिकाव्य का एक श्लोक प्रस्तुत कर रहा हूँ। देखिये, भट्टिकाव्य में भट्टि ने एकावली अलंकार का वर्णन किया और जब वे मिथिला का वर्णन करने लगे तो कहा कि देखो, मिथिला कैसी है! उन्होंने कहा:-

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्। न पंकजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगञ्ज यः कलम्। न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः।।

'न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्' मिथिला में वह जल नहीं था जहाँ सुन्दर कमल नहीं खिले थे अर्थात् प्रत्येक जलाशय में कमल खिले थे और 'न पंकजं तद्यदलीनषट्पदम्' वो कमल नहीं था जहाँ भौंरे नहीं थे और 'न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलम्' वो भौंरा नहीं था जो मधुर गुञ्जार नहीं कर रहा हो और 'न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः' वो गुञ्जार नहीं जो मन को नहीं खींच रहा था। उसी प्रकार वो ब्रह्म नहीं जहाँ गुण नहीं, वो गुण नहीं जहाँ सन्त नहीं, वो सन्त नहीं जो गुनगुनाएँ नहीं और वो गुनगुनाना नहीं जो मन को न चुरा ले।

जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्ताम्।

सन्त जहाँ मुखरित हो जाता है वो तो यही कहता है-

राघव राजा तेरी मुसकन ने मिथिला तो दिवानी कर डाली।
हे बर राजा तेरी मटकन ने कैसी मनमानी कर डाली।

इसलिये गुण का रहना बहुत आवश्यक है क्योंकि यदि गुण वहाँ नहीं रहेंगे तो सन्त वहाँ नहीं जाएँगे-

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्। न पंकजं तद्यदलीनषट्पदम्।

वो नीर नहीं जहाँ सरसिज का मनमोहक सरस प्रचार नहीं।

वो सरसिज क्या जहाँ मधुकर का अति श्रवण सुखद गुञ्जार नहीं।

वास्तव में यदि गुण नहीं तो भगवान कैसे ?

तालाब की शोभा कब होती है जब-

फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसे।।

इसलिये, निर्गुण ब्रह्म को कौन पूछता है ? उद्धव ने गोपियों को उपदेश दिया कि ब्रह्म बड़ा सुन्दर है। गोपियों ने कहा कि उसके पास चरण नहीं हैं, हाथ नहीं हैं, उसके पास कुछ भी तो नहीं है। तो इस ब्रह्म को बक्से में बन्द कर किसी सन्यासी को दे दो क्योंकि जब इनके पास हाथ नहीं होगा तो हमारी गाय कौन दुहेगा ? यदि चरण नहीं रहेंगे तो कौन नाचेगा ? हम तो काम लेते हैं ब्रह्म से।

कँर बिनु कैसे गाय दुहिहैं हमारी वह,
पग बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहैं।
कहें 'रतनाकर' वदन बिनु कैसे चाखि
माखन, बजाय बेनु गोधन गँवाइहैं।
देखि सुनि कैसे बिनु श्रवन दृगन हाय,
भोरे ब्रजवासिन की बिपति बराइहैं।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ कहो कौन सो हमारे काम आइहैं।

हम क्या करेंगे तुम्हारा ब्रह्म लेकर। हम तो ब्रह्म से कह देते हैं कि गाय चरा आ। जब हमारे हाथ में मेंहदी लगती है तो हम तो कह देते हैं -

लट उरझी सुरझा जा रे मोहन
हाथ मेरे मेंहदी लगी है।
रास में मेरी बेसर गिर गई।
अपने हाथ पहिरा जा रे मोहन हाथ मेरे मेंहदी लगी है लट ......
रास में मेरो कंकण गिर गयो

अपने हाथ पहिरा जा रे मोहन हाथ मेरे मेंहदी लगी है लट ......

रास में मेरो नूपुर गिर गयो

अपने हाथ पहिरा जा रे मोहन

हाथ मेरे मेंहदी लगी है।

हो लट उरझी ......

रास में मेरी बिंदिया गिर गई

अपने हाथ लगा जा रे मोहन, हाथ

लट उरझी .....

एक बार यही गीत मैने प्रयाग में गाया तो एक बालक पागल हो गया। कैसे मोहन उलझी लटों को सुलझाता होगा।

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे।।

रामावतार में भरत की जटा और कृष्णावतार में गोपियों के केश दोनों को सुलझाने का काम मोहन का ही तो है। मोहक नहीं कर सकता। मोहन कर सकता है जिसमें मोह नहीं (मोह न) वही तो करेगा :-

लट उरझी मुरझा जा रहे मोहन....

थोड़ा सा भी अहंकार रहेगा तो परमात्मा बहुत दूर हो जाएँगे। तब भगवान नहीं मिलेंगे। गोविन्द कहते हैं कि दो में से एक ही रहेगा या तो 'गोविन्द' रहेंगे या तो 'ईगो' रहेगा। यदि ईगो रहेगा तो गोविन्द कह देंगे, तू अपना ईगो रख, आई गो (I. g.o.) अर्थात् मैं जा रहा हूँ। आज मनुष्य इतना अहंकारी हो गया है कि गोविन्द को फेंक देता है पर ईगो को रख लेता है। अपने अहंकार को रख लेता है और अपने संस्कार को छोड़ देता है। कितना भयंकरतम दुर्भाग्य है मनुष्य का। एतावता, गोपियों ने कहा कि हमें निर्गुण ब्रह्म से कुछ लेना देना नहीं-

कर बिनु कैसे गाय दुहिहैं हमारी वह
पग बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहैं।
कहें 'रतनाकर' वदन बिनु कैसे चाखि,
माखन, बजाय बेनु गोधन गँवाइहैं।

इसलिये निर्गुण ब्रह्म की कोई सत्ता नहीं। एकमात्र सगुण ब्रह्म की ही सत्ता है-

मंगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुन्दर सुत जाके।।

यह कहना कि सगुण ब्रह्म में जो गुण आए हैं, वो सब मायिक हैं, ये शंकराचार्य की सरासर गलती है, शरारत है क्योंकि जब तुम यह कह ही रहे हो कि 'स्वजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य ब्रह्म होता है' तो जब ये गुण विजातीय हो जाएँगे तो उनमें ब्रह्मत्व रहेगा कैसे ? जैसे चीनी का बना हुआ घोड़ा। चीनी से बने हुए घोड़े में जो कुछ भी होगा चीनी ही तो होगा-उसका मुँह देखो तो चीनी, नाक देखो तो चीनी, कान देखो तो चीनी, चरण देखो तो चीनी, उसी प्रकार ये परमात्मा भी आनन्द से ही तो बना हुआ है। साक्षात् आनन्द का ही परमात्मा है। आनन्द ही उनका विग्रह है। सत् और चित् उनके विशेषण हैं। भगवान सत् नहीं हैं, भगवान चित् नहीं हैं, ये दोनों आनन्द के विशेषण हैं-

जय सच्चिदानन्द जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन।।

भगवान तो केवल आनन्द हैं और वो आनन्द ही सत् है और वो आनन्द ही चित् है। वो आनन्द असत् नहीं है, अचित् नहीं है अर्थात् वहाँ अज्ञान नहीं है-

सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना। सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना।।

जिसके स्मरण मात्र से सारा अज्ञान नष्ट हो जाता है वे हमारे भगवान राम हैं। इसलिये अब ये निश्चित हो चुका कि निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। गोस्वामी जी कहते हैं-

जो गुन रहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।

प्रश्न करते हैं कि जो गुण से रहित होगा, वो सगुण कैसे हो सकता है ? अरे, जहाँ अभाव होगा, वहाँ भाव कैसे हो सकता है ? एक बार तुम कहो कि भगवान गुण-रहित हैं, तो फिर सगुण कैसे ? इसीलिये उदाहरण दिया कि 'जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ; कितना सुन्दर पक्ष है। अच्छा एक बात बताओ, तुम जल को क्या कहोगे निर्गुण कहोगे या सगुण कहोगे। इसके उत्तर में कहते हैं कि जल निर्गुण है और बर्फ सगुण है। इसका भाव क्या है ? अरे! जल और बर्फ में कोई पदार्थगत अन्तर है क्या ? जी नहीं। जल की शीतलता जब घनीभूत हो जाती है। जब तापमान शून्य डिग्री से नीचे चला जाता है तब वो घनीभूत हो जाता है और जब तापमान बढ़ता है तो वो पिघल जाता है, उसी प्रकार जब भक्त के ताप से परमात्मा पिघल जाता है, तब द्रव बन जाता है और जब भक्त का ताप कम हो जाता है तब वो घन हो जाता है।

सोइ सच्चिदानन्द घन, कर नर चरित उदार।
ज्ञान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।।

इसलिये-

जो गुन रहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।

इसलिये उस गुण लीला के सिद्धान्त में भगवान ने कह दिया 'मैं कछु करब ललित नर लीला।' भगवान कह रहे हैं कि मैं कुछ ललित नरलीला करूँगा। अब प्रश्न है कि उस ललित नरलीला में लक्ष्मण की कोई भूमिका है, या नहीं। भगवान कहते हैं नहीं, अब लक्ष्मण की भूमिका क्यों नहीं ? आइये, दो, तीन चर्चाएँ इस सन्दर्भ में कर रहा हूँ।

१- पहली बात, हम कल ही कह चुके हैं कि जिसको भगवान जनाना चाहते हैं, वही भगवान को जान पाता है-

सोइ जानइ जेहिं देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई।।

जिसे भगवान जनाना चाहेंगे, वही भगवान की लीला को जान पाएगा और यहाँ लक्ष्मण जी को भगवान जनाना नहीं चाह रहे हैं। इसीलिये तो-

लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कन्द।

अब यहाँ पर यह प्रश्न है कि लक्ष्मण जी को भगवान यह बात क्यों नहीं जनाना चाहते ? लक्ष्मण जी का यहाँ यह जानना कई दृष्टियों से उचित नहीं होगा, क्योंकि 'भक्त्या मामभिजानाति यावान्याश्चास्मि तत्वतः।' भगवान भक्त को वहीं तक जनाते हैं जहाँ तक उसका अहित न होने लग जाए। जब अकल्याण होगा तो उसका जानना ठीक नहीं होगा। इसलिये भगवान कहते हैं कि अभी तुम मत जानो क्योंकि इसके दो-तीन कारण हैं। पहला कारण यह है कि लक्ष्मण जी सीता जी को बहुत मानते हैं, बहुत प्रेम करते हैं और बहुत श्रद्धा भी रखते हैं। इतनी बड़ी श्रद्धा वास्तव में भाभी पर कोई रख ही नहीं सकता जितनी अधिक श्रद्धा कुमार लक्ष्मण सीता जी के चरणों में रखते हैं और यही कारण है-

लखन हृदय लालसा विशेषी। जाइ जनकपुर आवउँ देखी।।

लक्ष्मण जी के हृदय में जनकपुर देखने की लालसा है। क्या राम जी से भी सुन्दर कोई होगा, जी! लक्ष्मण जी सोच रहे हैं कि वो भूमि कितनी सुन्दर होगी जहाँ मेरी भाभी माँ ने जन्म लिया है, जरा देखूँ तो! मैंने भगवान की जन्मभूमि अयोध्या तो देख ली, अब भक्ति की जन्मभूमि भी तो मुझे देखनी पड़ेगी, क्योंकि-

भक्त भक्ति भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किये, नाशहिं विघ्न अनेक।।

भक्त, भक्ति, भगवान और गुरु इन चारों में कोई अन्तर नहीं है। एक ही तत्व ने चार रूप बना लिये। इसीलिये तो-

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी।।

अरे! लक्ष्मण आज जनकपुर देखना चाहते हैं तो भगवान ने सोचा कि इसी बहाने मैं भी देख लूँगा। भगवान गदगद हो गए। भगवान बोले-

नाथ लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु सँकोच डर प्रगटि न कहहीं।।

भगवान ने कहा कि लक्ष्मण जी नगर देखना चाहते हैं सरस्वती जी ने कहा कि 'नाथ और लखन पुर देखन चहहीं' सरस्वती जी ने कहा कि केवल लक्ष्मण जी ही नहीं, 'नाथ' अर्थात् रघुनाथ जी भी नगर को देखना चाहते हैं।

ध्यान रखिये, लक्ष्मण जी कितना प्रेम करते हैं सीता जी से। पहली बार पुष्पवाटिका में परिचय कराया राम जी ने तो कहा-

तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहिं कारन होई।।

तात अर्थात् हे लक्ष्मण, स्मरण रक्खो, ये वही जनक तनया हैं जिनके कारण धनुष यज्ञ हो रहा है, ये वही हैं जो साकेत में तुम्हारी भाभी माँ हैं।

पूजन गौरि सखी लै आईं। करत प्रकाश फिरइँ फुलवाईं।।

ये देखो, गौरी की पूजा के लिये सखियाँ लेकर आईं हैं और ये फुलवारी में प्रकाश करती फिर रही हैं।

लक्ष्मण जी ने कहा-भैय्या इनके पास प्रकाश है क्या ?

राम जी ने कहा-पागल, इनके पास प्रकाश नहीं है, ये तो स्वयं प्रकाश हैं-

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छविगृह दीपशिखा जनु बरई।।

ये तो स्वयं दीपक की शिखा हैं।

तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहिं कारन होई।।

हे तात! ये जनक-तनया वही है। जनक की राज पुत्री वही है अथवा 'जनकौ तनयौ यस्या:' 'अनुकम्पितः जनः जनकः' राम जी का कृपापात्र जन ही, संस्कृत में जनक है और राघव जी का कृपापात्र ही जिसका बेटा है वो जनकतनया है। संस्कृत में, अनुकम्पित जन को ही जनक कहते हैं। 'अनुकम्पा' में 'कन्' प्रत्यय हुआ है। भगवत्कृपापात्र ही जिनके बेटे हैं।

तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहिं कारन होई।।

कौन हैं वो ? तो कहते हैं-

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।

अरे, लक्ष्मण! नहीं समझ रहे हो? ऋग्वेद ही जिनका कंकण है, यर्जुवद ही जिनकी किंकिणी है, सामवेद ही जिनका नूपुर है।

अब तक चुप थे, अब भगवान कह रहे हैं-

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहिं कारन होई।।

आज पहली बार राम जी, लक्ष्मण जी से सीताजी का परिचय करवा रहे हैं कि लक्ष्मण ये तुम्हारी भाभी साधारण महिला नहीं हैं।

मन भूल मत जइयो सीता रानी के चरण।

सीता रानी के चरण बहूरानी के चरण।

मन भूल.........

सीता रानी के चरण राजरानी के चरण।

मन भूल.........

ताके जुगपद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ।।

मन भूल मत जइयो महारानी के चरण

मन भूल.........

देखो, सीता रानी के चरणों की बहुत बड़ी महिमा है। सीता रानी के चरणों का जब स्मरण हो जाता है तो बुद्धि निर्मल हो जाती है। लक्ष्मण जी को सीता रानी के चरण का स्मरण हुआ। 'वाल्मीकि रामायण' में एक बड़ा करुण प्रसंग है। जब सुग्रीव जी ने भगवान राम को वस्त्र दिखाए कि एक महिला ने मेरे सामने अपना आँचल फाड़कर उसमें बँधे हुए तीन आभूषण गिराए केयूर, कुण्डल और नूपुर।

राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेंउ पट डारी।।

सीता जी ने पट गिराया। अच्छा मित्रों, बताओ कि सीता जी ने पट क्यों गिराया था ? सीताजी ने पट इसलिये गिराया था, क्योंकि सीताजी जानती हैं कि वानर बहुत कपटी होता है और भगवान को कपट नहीं भाता है-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।।

सीता जी ने सोचा कि यदि इनमें कपट रहेगा, तो ये वानर भगवान को नहीं भाएँगे। उन्होंने सोचा कि फिर इनका कपट कैसे दूर हो? यदि मैं अपना पट गिरा दूँगी तो इनका कपट दूर हो जाएगा, इसलिये 'हमहिं' देखि दीन्हेंउ पट डारी।'

भगवान राम ने लक्ष्मण जी को बुलाया कि तुम अपनी भाभी के वस्त्र पहचानते हो ?

लक्ष्मण जी ने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता।

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

वा०रा० ४/६/२२

लक्ष्मण जी ने कहा कि मैं तो सीताजी के केयूर को भी नहीं जानता, कुण्डल को भी नहीं जानता। बोले जानते क्या हो ? तब लक्ष्मण जी ने कहा 'नूपुरे त्वभिजानामि' केवल उनके नूपुर को जानता हूँ क्योंकि निरन्तर मैं उनके चरणों का वन्दन करता हूँ 'नित्यं पदाभिवन्दनात्।' यहाँ 'नूपुरे त्वः पश्यामि' नहीं कहा। सीता जी के चरणों का वन्दन करने के कारण लक्ष्मण जी की बुद्धि निर्मल हो चुकी है और तबसे लक्ष्मण जी ने सीता जी को माँ मान लिया है और आप बड़ा करुण प्रसंग देखेंगे, आश्चर्य लगता है कि क्या ऐसा भी कभी भारतीय जीवन में घटा होगा ? आप प्रसंग पढ़िये, जनकपुर की राज सभा लगी है। धनुष उठाने का प्रकरण चल रहा है। बड़े-बड़े राजा उसे नहीं उठा पाए और गोस्वामी जी ने एक विनोद किया, व्यंग्य किया, व्यञ्जना में कहा-

भूप सहसदस एकहिं बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।।

सीधा अर्थ हुआ कि दस हजार राजा लोग एक साथ धनुष को उठाने लगे और दूसरा अर्थ हुआ कि सहस माने एक हजार बाहुओं वाला बाणासुर और दस माने दस सिर वाला रावण भी धनुष को उठाने लगे पर वह नहीं उठा। अब जनक जी को क्रोध आया और जनक जी ने कह दिया-

कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न शंकर चाप चढ़ावा।।

किसको यह लाभ नहीं भाया, सबको यह लाभ अच्छा लगता है पर किसी ने शंकर भगवान का धनुष नहीं चढ़ाया-

रहेउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई।।
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।।

जनक जी ने कह दिया-

तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिवाहू।।

लक्ष्मण जी को क्रोध आ गया-

माखे लखन कुटिल भइँ भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें।।

'रदपट' दाँत का वस्त्र है ओंठ। लक्ष्मण के ओंठ फड़क उठे। आ गया क्रोध! लक्ष्मण जी ने 'गीतावली' में बहुत सुन्दर कहा-

मेरो अनुचित ना कहत लरिकाई बस।

पन परिमिति और भाँति सुनी गई है।

लक्ष्मण जी ने कहा आज मैं कुछ कह रहा हूँ-

जौं तुम्हार अनुशासन पावौं। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं।।

मैं पूरे ब्रह्माण्ड को लेकर दौड़ सकता हूँ। इसे कच्चे घड़े की भाँति पटक सकता हूँ। सुमेरु पर्वत को मैं मूली की भाँति तोड़ सकता हूँ। तो कहा कि तोड़ क्यों नहीं देते धनुष को!

लक्ष्मण जी ने कहा, नहीं। प्रतिज्ञा की परिमिति कुछ और है। जनक जी ने प्रतिज्ञा की है कि धनुष तोड़ने वाले के साथ सीता जी का विवाह होगा और मैंने पहली दृष्टि में ही सीता जी को अपनी माँ मान लिया है। यदि जनक जी अपनी प्रतिज्ञा में संशोधन कर लें कि लक्ष्मण के धनुष तोड़ने पर भी सीताजी का विवाह राम जी से ही होगा, तो मैं यह धनुष तोड़कर दिखा रहा हूँ-

नतरु प्रभु प्रताप उतरि चढ़ाइ चाप,

देत्यों पै दिखाइ बल फल पापमयी है।

कितना हमारा लक्ष्मण चारित्रिक है कि 'फल पापमयी हैं' इसका फल पापमय हो जाएगा। धनुष तोड़ूँगा तो सीताजी का विवाह मेरे साथ हो जाएगा और मैं तो उन्हें अपनी माँ मान चुका हूँ।

उसी समय सीता जी ने भी कह दिया कि यदि तुमने मुझे अपनी माँ मान लिया है तो मैं भी बेटे, वह प्रेम तुमको दूँगी, जो लव कुश को भी नहीं मिल पाएगा।

इसलिये गोस्वामी जी ने लिखा-

सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने।।

लक्ष्मण की वाणी सुनकर सब लोग डर गए। किन्तु 'सिय हिय हरष' सीता जी का मन प्रसन्नता से झूम गया कि इतना अच्छा देवर भी हो सकता है क्या ! (आज का देवर तो भाभी से मजाक करता है) जनक जी सकुचा गए तब -'सैनहिं रघुपति लखन निवारे' राम जी ने धीरे से लक्ष्मण जी से कहा चुप, चुप! मत बोल!

लक्ष्मण जी ने कहा कि क्यों नहीं बोलूँ ? क्या हो गया ? आपका अपमान हो गया।

राम जी ने कहा कि मेरा क्या अपमान हो गया ?

लक्ष्मण जी ने कहा कि जनक जी ने कहा कि 'बीर विहीन मही मैं जानी' तो आप वीर नहीं है क्या ?

राम जी ने कहा कि अरे ! तुम तो लड़के ही ठहरे! अरे! उन्होंने 'वीर विहीन मही' कहा था रघुवीर विहीन मही, थोड़े ही कहा था। मैं वीर नहीं मैं तो रघुवीर हूँ। 'कहि न सकत रघुबीर डर' और कह रहे हैं 'वीर विहीन मही मैं जानी।" तो लक्ष्मण मैं वीर नहीं रघुवीर हूँ।

एतावता, राम जी जानते हैं कि लक्ष्मण जी को सीता जी पर इतना प्रेम है! यदि अवस्था का क्रम देखा जाए तो लक्ष्मण जी राम जी की समान अवस्था के हैं। तुलसीकृत मानस जी के आधार पर लक्ष्मण जी, राम जी से केवल दो घण्टे छोटे हैं और वाल्मीकि जी के अनुसार लक्ष्मण जी राम जी से केवल दो दिन छोटे हैं और सीता जी छः वर्ष छोटी हैं। इस दृष्टि से सीता जी लक्ष्मण जी से छः वर्ष छोटी हैं, परन्तु इतनी छोटी होने पर भी सीता जी को लक्ष्मण जी माता कहते हैं। सीता जी लक्ष्मण जी की माता हैं और यह बात स्वयं सुमित्रा जी कहती हैं-

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।।

हे तात, अब तुम्हारी माता सीता जी हैं। तुम मुझसे विदा माँगने क्यों आए (माँगहु बिदा मातु सन जाई), अब मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ। तुम्हारी माता मिथिलाधिराज कीर्ति वैजयन्ती सीता जी हैं। अरे, तुम्हारी माता तो वैदेही हैं, जिसके पास देह ही नहीं है, वह तुम्हारी माता हैं। देही तो मर जाता है-

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।

गीता २/१३

देही की देह में तो कुमारावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था आती है पर तुम्हारी माता निरन्तर किशोरी रहती हैं-

तौ तुम विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेश किशोरी।।

सीता जी मिथिलेश किशोरी हैं। उनमें कौमार्य भी नहीं, यौवन भी नहीं, जरा भी

नहीं, नित्य किशोरी बनी रहेंगी। अब तो तुम्हारी माता सीता जी हैं और यही हुआ राम जी थोड़ी देर आगे बढ़ गए हैं तो धीरे से सीता जी रोकती हैं, राघव, रुक जाइये!

राघव जी कहते हैं क्यों ?

तब सीता जी कहती हैं-

जल को गए लखन हैं लरिका
परिखो पिय छाँह घरीक ह्वै ठाँढ़े

बताइये लक्ष्मण जी जबकि सीता जी से छह वर्ष बड़े हैं पर सीता जी को अभी लड़के ही लग रहे हैं। इतना बड़ा वात्सल्य है! इसीलिये 'मैं शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला' वनवास जाते समय सीता जी के नए-नए बालक बने हैं लक्ष्मण जी! नया जन्म हुआ है गुरुदेव से 'द्वितीयं जन्म कथ्यते' जिस समय व्यक्ति भगवान की शरणागति लेता है, उस समय उसका दूसरा जन्म होता है। एक बार एक सन्त एक महिला के पास भिक्षा लेने आए। वहाँ उसकी सास भी खड़ी थीं, ससुर भी खड़े थे और पति भी खड़े थे। सन्त ने पूछा कि अरे, माई तुम कितने वर्ष की हो गईं ? उस महिला ने कहा कि महाराज मैं तीन वर्ष की हो गई। माने तीन वर्ष पहले ही मैंने दीक्षा ली है। सन्त ने पूछा कि सास कितने वर्ष की हो गईं ? उस महिला ने कहा कि अभी गर्भ में ही नहीं आईं। सन्त ने पूछा कि ससुर कितने वर्ष के हैं ? तब उस महिला ने कहा कि वो तो न जाने किस लोक में हैं! सन्त ने कहा पति, तब उसने कहा कि गर्भ में आना तो चाह रहे हैं पर नहीं आ पा रहे हैं। सास ने कहा कि हमारी बहू होकर ये कह रही है कि अभी मैं गर्भ में नहीं आई! उठाया डण्डा, ऐसा क्यों कहा तुमने ? तब सन्त ने कहा कि तुम नहीं समझोगी! जबसे जीव वैष्णव होता है तबसे उसकी अवस्था गिनी जाती है-

जे दिन गए तुमहि बिनु देखे। ते बिरञ्चि जनि पारहिं लेखे।।

यह रामचरितमानस जी की बड़े क्रोने की चौपाई है। रघुनाथ जी को शयन कराकर माता कौसल्या उन्हें सुला रही हैं और सुलाते-सुलाते कह रही हैं कि राघव, जो दिन तुम्हारे निहारे बिना मेरे चले गए, उन दिनों को ब्रह्मा अपनी डायरी में न लिखे, वे दिन, दिन नहीं हो सकते!

जे दिन गए तुमहिं बिनु देखे। ते बिरञ्चि जनि पारहिं लेखे।।

बालकाण्ड के तीन सौ सत्तावनवें दोहे की आठवीं पंक्ति है। जब तक भगवान के चरणों में भाव नहीं, तब तक सब बेकार है। हम तुमसे बहुत अधिक जानते हैं।

संसार हमने बहुत अधिक देखा है। न जाने कितनी यात्राएँ की हैं, देश की, विदेश की। जिन पदों की तुम्हें अपेक्षा है, सब बेकार है। भगवत्प्रेम के बिना सब निरर्थक है। भगवान के राम-चरण अनुराग रहित जैसे सालन साग अलोने। 'सालन' शब्द का प्रयोग हमारे जौनपुर में होता है, कहीं नहीं होता। सालन माने होता है उड़द की बनी हुई कचौड़ी। उड़द का बना हुआ बड़ा कितना भी सुन्दर हो, यदि नमक न डालो तो सब बेकार! उसी उड़द का जो 'रिकौंछ' बनता है, उसी को सालन कहते हैं। तो नमक के बिना जैसे सालन बेकार वैसे ही भगवत्प्रेम के बिना सब कुछ बेकार। कोई लाभ नहीं।

एतावता, सीता जी ने कहा-

जल को गए लखन हैं लरिका
परिखो पिय छाँह घरीक ह्वै ठाँढ़े

लक्ष्मण जी के बिना राम जी को सीता जी चलने नहीं देना चाहतीं। इसीलिये भगवान राम ने विनोद किया-

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।

सीता जी की ओर देखकर शूर्पणखा से राम जी ने कहा कि मेरे छोटे भाई कुमार हैं। उन्होंने इसलिये कहा कि जबसे सीता जी के बेटे बने हैं तबसे इनका विवाह तो हुआ नहीं है। सीता जी की दृष्टि से लक्ष्मण जी अभी अविवाहित हैं, इसलिये 'सीतहिं चितइ' सीता जी की ओर देखकर राम जी ने कहा 'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता', राम जी झूठ थोड़े ही बोलते हैं। राम जी कभी असत्य नहीं बोलते। एतावता, राम जी को यह निश्चित हो चुका है कि इतना प्रेम सीता जी से लक्ष्मण जी का है। तो जब लक्ष्मण जी के सामने मैं सीता जी से अग्नि में जाने के लिये कहूँगा तो लक्ष्मण कहेंगे कि आप कौन होते हैं मेरी माँ को आग में झोंकने वाले! तुरन्त लक्ष्मण मेरा विरोध करेंगे। मैं कहूँगा कि सीता जी के रहते राक्षसों का नाश नहीं होगा, तो लक्ष्मण यही कहेंगे कि सीता जी तो अग्नि में नहीं जाएँगी। आपको यदि राक्षसों का नाश ही करना है तो मेरे पास शक्ति है।

जग महँ सखा निशाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महँ तेते।।

संसार के सभी राक्षसों को लक्ष्मण एक क्षण में मार सकते हैं। लक्ष्मण तो यही कहेंगे कि मैं अपनी माँ को आग में झोंकने के पक्ष में नहीं हूँ, राक्षसों को मैं एक क्षण में ही नष्ट किये देता हूँ। राम जी कहते हैं कि जब लक्ष्मण जी अपने ऐश्वर्य का प्रयोग

करेंगे तब ललित-नर-लीला नहीं हो सकेगी और मेरा मन है 'ललित-नर-लीला' का अतः 'मैं कछु करब ललित-नर-लीला।'

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।।

दूसरी बात, लक्ष्मण जी वास्तव में श्रीराम जी के इतने अनन्य सेवक हैं कि वो और कुछ सोचना ही नहीं चाहते। यहाँ तक कि जो भी उपकरण होते हैं, लक्ष्मण जी स्वयं बन जाते हैं। जब राम जी को निवास करना होता है तो लक्ष्मण जी कुटिया बनाते नहीं हैं, वे स्वयं कुटिया का रूप धारण कर लेते हैं। जब राम जी को शयन करना होता है तब लक्ष्मण जी पलँग का रूप धारण कर लेते हैं। जब राम जी को बैठने का मन होता है तो लक्ष्मण जी स्वयं आसन बन जाते हैं। जब पादुका की आवश्यकता होती है स्वयं लक्ष्मण जी पादुका बन जाते हैं। जब राघव जी को वल्कल वस्त्र पहनना होता है तब लक्ष्मण जी वल्कल वस्त्र बन जाते हैं। जब राघव जी को तकिया लगाने का मन होता हैं तब लक्ष्मण जी स्वयं तकिया बन जाते हैं। जब राघव जी को छाता की आवश्यकता होती है तो लक्ष्मण जी छाता बन जाते हैं। अर्थात् जो, जो उपकरण भगवान के आवश्यक होते हैं, वो लक्ष्मण स्वयं बन जाते हैं। शेष का यही अर्थ है 'शिष्यते उपयुज्यते इति शेषः' जो भगवान की सेवा में अपने शरीर का उपयोग कर देता है, उसे शेष कहते हैं।

निवासशय्यासनपादुकांशकोपधान वर्षातपवारणादिभिः।
शरीरभेदैस्तव शेषताङ्गतो यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः।।

यहाँ तक कि रावण के लिये जब बाण छोड़ा तो वो भी लक्ष्मण जी बन गए-

रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फणीस।।

मानों काल के सर्प हैं और लक्ष्मण जी हैं कौन ? 'जो सहस शीश अहीश महिधर' तो सब कुछ लक्ष्मण जी बन जाते हैं तो लक्ष्मण जी कहते हैं कि हम जब सब कुछ बन जाते हैं तो आप सीता जी को क्यों कष्ट देना चाहते हैं ? इसलिये लक्ष्मण जी के रहते सीता जी को अग्नि में प्रवेश नहीं दिया जा सकेगा और वास्तव में लक्ष्मण जी के रहते सीता जी अग्नि में जाएँगी भी नहीं। सिद्धान्त यह है कि नारी पति को छोड़कर कहीं जा सकती है पर दुधमुँहे बच्चे को छोड़कर वह कहीं नहीं जा सकती और लक्ष्मण जी सीता जी के बच्चे हैं, इसलिये सीता जी, लक्ष्मण जी को छोड़कर, अग्नि में नहीं जाएँगी। बिलख पड़ेंगी। जैसे बछड़ा सामने रहे तो गाय उसे छोड़कर नहीं जा सकती उसी प्रकार, न तो लक्ष्मण जी सीता जी को छोड़ेंगे और न

सीता जी लक्ष्मण जी को छोड़ेंगी। इसलिये ये निश्चित किया गया कि किसी प्रकार से लक्ष्मण जी को यहाँ से दूर कर दिया जाए।

तीसरी बात यह है कि राम जी ने सोचा कि यदि लक्ष्मण जी यह जान लेंगे कि ये नकली भाभी हैं या ये भाभी माँ का प्रतिरूप हैं तो लीला में आनन्द नहीं करेंगे। तब लक्ष्मण जी को क्रोध भी नहीं आएगा और तब लक्ष्मण जी मेघनाद आदि को नहीं मार सकेंगे, इसलिये-

लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख वृन्द।।

शेष चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र की जय।।

।।पवनसुत हनुमान की जय।।

तृतीय वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ चतुर्थ वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १५-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।
कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।
कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।
श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान, अशरण शरण, परिकलित-राजीव-चरण भक्तभयसंकटशोकहरण कारण-कारण, तारण-तरण, मैथिली हृदयाभरण जगन्नियन्ता जगदैकवीर, जगन्मोहन, जगन्निवास, जगदुद्धार परायण जगन्नियमनशील, जगन्मोहन मोहन, जगदुत्पत्तिपालनसंहारकर्ता सर्वसर्वेश्वर सर्वाधार श्रीमद् रामभद्र की भुवन पावनी कृपा से आज हम उनके चरणों में चतुर्थ पुष्प चढ़ाने जा रहे हैं।

आप स्पष्ट सुन चुके हैं कि नरलीला चिकीर्षा का प्रभु प्राकट्य कर रहे हैं अर्थात् जब वो इच्छा कर रहे हैं कि 'मैं कछु करब ललित नरलीला', तो उस परिस्थिति में वे वहाँ लक्ष्मण कुमार को उपस्थित नहीं रखना चाहते और भगवती सीता जी से अपना मनोभाव तब प्रकट करते हैं जब कुमार लक्ष्मण कन्द-मूल लेने के लिये वन को चले गए-

लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कन्द।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख वृन्द।।

गोस्वामीपाद आज्ञा करते हैं कि लक्ष्मण जी की अनुपस्थिति में भगवान श्री राघवेन्द्र सरकार जनकसुता से हँसकर बोले। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि यह चरित्र जीवाचार्य को भी बताना उचित नहीं लग रहा था। अतः वो यह चरित्र जीवाचार्य लक्ष्मण जी को भी नहीं बताना चाहते थे। उनके समक्ष कठिनाई यह थी कि लक्ष्मण जी को यह पता चल जाता कि राक्षसों के विनाश के लिये मेरी माँ को अग्नि में प्रवेश कराया जा रहा है तो लक्ष्मण जी कह देते कि हे सरकार आप यह कृत्य न करें। राक्षसों के विनाश में यदि आप मेरी माँ को बाधक मान रहे हैं तो आप रख दीजिये धनुष-बाण, एक क्षण में मैं सारे राक्षसों का संहार कर दूँगा, क्योंकि-

जग महँ सखा निशाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महँ तेते।।

संसार में जितने राक्षस हैं उन्हें लक्ष्मण जी एक क्षण में मार सकते हैं तो वे इतने छोटे से कार्य के लिये भगवती जी को अग्नि में जाते हुए कैसे देखेंगे और दूसरी बात मैंने यह निवेदन की कि लक्ष्मण कहें या न कहें सीताजी ही लक्ष्मण जी को छोड़कर नहीं जा सकतीं, इतनी करुण हैं वो! कोई भी स्त्री अपने पति को तो छोड़कर दो, चार दिन के लिये कहीं जा सकती है पर छोटे बच्चे को नहीं छोड़ सकती, इसलिये सीताजी भी इस बात को नहीं स्वीकारेंगी, इन दोनों धर्मसंकटों को देखकर यह बात भगवान राम ने सीताजी से तब कही जब लक्ष्मण जी वहाँ अनुपस्थित थे, यहाँ तक आप विषय को स्पष्ट समझ चुके हैं।

अब आगे देखिये कि सीताजी को अग्नि में प्रवेश करने की बात भगवान कर रहे हैं। बड़ी कठिन परिस्थिति है और क्या आप इस बात को समझेंगे या आपके मन में इस बात की गम्भीरता का थोड़ा सा भी बोध हो तो आपको यह स्पष्ट हो जाएगा कि पत्नी को पति के लिये कितना समर्पित होना चाहिये। पति के कार्य को सिद्ध करने के लिये यदि उसे आग में भी कूदना पड़े तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। आज भगवती जी आग में कूदना स्वीकार रही हैं। जो सीता जी श्रीराम के वियोग में अयोध्या नहीं रह सकीं और हठ करके चली आईं, आज वो राम जी के बिना अग्नि में रहेंगी ? क्या ये सीता बदली हुई हैं या उनका चिन्तन बदला हुआ है ? ऐसा क्यों हो रहा है, यह चर्चा हम अगले प्रकरण में करेंगे। आज अभी हम ये चर्चा करना चाहेंगे कि 'नरलीला' में राम जी सीता जी को बाधक क्यों मान रहे हैं और यह भी कह रहे हैं कि आप तब तक मेरे पास न रहें जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ! इसका अर्थ है कि ललित नरलीला में राम जी, सीताजी की उपस्थिति को बाधक मान रहे हैं। इसलिये कहते हैं-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

आइये, इन कारणों पर हम कुछ देर विचार करते हैं कि भगवती जी को प्रभु अग्नि में रखना चाह रहे हैं क्योंकि उनको यह निश्चय हो गया है कि सीता जी की उपस्थिति में मैं ललित नरलीला नहीं कर सकूँगा। पहली बात ललित नर लीला में भगवान राम का साधारणीकरण होगा और सीता जी साधारणीकरण को स्वीकारेंगी नहीं। ललित नरलीला में भगवान इतने साधारण बनेंगे कि कनक मृग के पीछे दौड़ेंगे, सीता जी उन्हें थोड़े ही दौड़ने देंगी। ललित नरलीलामें उन्हें क्या-क्या नहीं करना होगा, ललित नरलीला में वानर ऊपर बैठेंगे और अध्यक्ष श्रीराम को नीचे बैठना पड़ेगा। वानर ऊपर डाल पर तो बैठेंगे ही और अपनी पूँछ राम जी के सिर पर

लटकाकर बैठेंगे। इस अशिष्टता को सीता जी तो कभी भी नहीं स्वीकारेंगी। ललित नरलीला में भगवान राम सुग्रीव की गोद में अपना सिर रक्खेंगे जबकि सीता जी की ही गोद में प्रभु का सिर रहा करता है, तो क्या इस अशिष्टता को वे स्वीकारेंगी ? ललित नरलीला में आगे चलकर स्वयंप्रभा उनसे विवाह का प्रस्ताव भी करेंगी पर सीताजी तो उसे फटकने भी नहीं देंगी। भगवान राम एक नारी व्रत की बात कहकर उनसे यही कहेंगे कि आप 'वैष्णव देवी' बनकर कलियुग पर्यन्त तपस्या कीजिये, कल्कि अवतार में मैं आपको पति रूप में प्राप्त हो जाऊँगा, तो क्या ये सब बातें वहाँ घट सकेंगी ? ललित नरलीला में भगवान राम जटायु का दाह-संस्कार अपने कर-कमल पर करेंगे, सीता जी कहेंगी नहीं। इतने प्यारे-प्यारे कर-कमल पर मैं जटायु की चिता नहीं बनाने दूँगी! ललित नरलीला में आगे चलकर प्रभु, शबरी के जूठे बेर खाएँगे, सीता जी खाने देंगी क्या, वो तो यही कहेंगी कि अधिक मत खाओ, खाँसी आने लगेगी! ललित नरलीला में भगवान को कुछ अपने मन की करनी पड़ेगी और वो सीताजी नहीं करने देंगी। ललित नरलीला में हनुमान जी की पीठ पर भगवान राम को चढ़ना पड़ेगा, सीता जी कहेंगी नहीं, वानर की पीठ पर बैठकर चलने से कहीं नसों में कुछ परिवर्तन हो गया तो नसों में मोच आ जाएगी। ललित नरलीला में भगवान राघवेन्द्र सरकार तीन दिन पर्यन्त समुद्र के सामने अनशन करेंगे, सीता जी एक भी दिन प्रभु को खाए बिना रहने देंगी क्या ? ललित नरलीला में लक्ष्मण जी को गोद में लेकर भगवान विलाप भी करेंगे, ये सभी कृत्य जो भगवान के साधारणीकरण के परिप्रेक्ष्य में होने हैं, उन्हें सीता जी अनुमति नहीं दे सकेंगी। प्रभु कह रहे हैं कि मैं ललित नर लीला करूँगा और इसमें मैं ललित बनूँगा और आपको ललिता बनना पड़ेगा। सीता जी ने कहा कि आप ललित बन सकते हैं पर मैं ललिता नहीं बनूँगी, इसलिये फिर वही बात, जो भगवान राम कहते हैं-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

यहाँ ललित नरलीला करने की क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता है! ललित नरलीला के दो अर्थ कहे जा सकेंगे, एक तो ललित शब्द को लीला का ही विशेषण मान लिया जाए 'ललिता चासौ नरलीला' नरलीला ही ललित होगी, लालित्यपूर्ण होगी, जिसे देखकर, सुनकर सबको आनन्द आएगा। आदर्शवादियों को भी इसमें आनन्द आएगा और यथार्थवादियों को भी इसमें आनन्द आएगा। उदात्तलीला में आदर्शवादियों को आनन्द आता है पर यथार्थवादियों को तो आनन्द नहीं आएगा। एकपत्नीव्रत को सीताजी के साथ राम जी को देखकर आनन्द आएगा पर मनचले

लोगों को तो आनन्द नहीं आएगा। इसलिये बहुत लोग कहा करते हैं कि हमको तो कन्हैय्या जी बहुत भाते हैं, तो हम तो यही कहते हैं कि अवश्य भाएँगे क्योंकि कन्हैय्या जैसा नाक-नक्शा राम जी नहीं कर सकते। मनचले लोगों को कन्हैय्या जी इसीलिये तो भाते हैं कि राम जी के आदर्शों को वे पचा नहीं पाते हैं, वो तो कहते हैं-

मोहन तेरी मुरली की कसम, हम तो तुमपे दीवाने बन बैठे।
मानो या न मानो मेरे मन का मरम, हम तो जग से बेगाने बन बैठे।।
जबसे देखी श्यामल मूरत, आँखों में बसी मोहन सूरत।
भूले हम तो जग के लाज शरम, अब तो खुद परवाने बन बैठे।।

तो मैं ये कह रहा था कि ललित नरलीला सबको आनन्द देगी-

कामिन कै दीनता दिखाई। धीरन के मन बिरति दृढ़ाई।।

यह ललित नरलीला दोनों को आनन्द देगी। कामी भी आनन्दित होगा कि राम जी जब अपनी पत्नी से इतना प्रेम करते हैं तो हमको भी करना चाहिये और धीर में वैराग्य होगा कि जब राम जी पत्नी के लिये रोए, तो हम कौन होते हैं, हमको भी रोना पड़ेगा। इसलिये, भैय्या हटाओ ब्याह-व्याह, नमो राघवाय। इसलिये यह ललित नरलीला आदर्शवादियों को भी आनन्द देगी और यथार्थवादियों को भी आनन्द देगी। इसलिये-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।
तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

इस तथ्य को मैं एक रोचक आख्यान प्रस्तुत करके, स्पष्ट करना चाहूँगा। विन्ध्यारण्य के साधुओं ने भगवान राम की गृहस्थी देखी। इतनी सुन्दर गृहस्थी भगवान राम की! लक्ष्मण जी सेवा करते हैं और भगवती सीता जी सुन्दर-सुन्दर कन्द-मूल-फल बनाकर उनकी सेवा में उपस्थित करती हैं और समय-समय पर राम जी भी बाबाओं का भण्डारा करते हैं और चकाचक आनन्द आता है। चित्रकूट में रहते राम जी को बारह वर्ष हो गए और यहाँ दण्डकारण्य में आए तो मनचले साधु सब यहीं चले आए। प्रतिदिन भण्डारा होता है, सुन्दर वल्कल की सेवा होती है, साधुओं ने सोचा कि राम जी वन में रहकर क्या आनन्द ले रहे हैं और हम लोग मर रहे हैं। बाबा होकर अपने हाथ से चूल्हा चेताना पड़ता है, अपने हाथ से कन्द-मूल-फल बनाना पड़ता है, अपने हाथ से फल अमनियाँ करना पड़ता है और चेला-चाँटी रहते नहीं हैं तो अपने हाथ से कुटिया बहारना पड़ता है, तो जैसे राम जी की घरवाली

वन में रक्खी जा सकती है तो हम लोगों को भी घरवाली मिल जाती तो कितना अच्छा होता! बाबाओं का मन डोला कि हमको भी घरवाली मिल जाती। सीताहरण के एक दिन पूर्व हजारों साधू लँगोटी लगाकर राम जी के पास पहुँचे और कहा कि 'राजाधिराज महाराज की जय हो। सीताजी ने कहा कि इतने बड़े समूह में लोग आ रहे हैं, बात क्या है ? कोई भण्डारा तो हमने किया नहीं है, फिर ये लोग आ क्यों रहे हैं ? लक्ष्मण जी ने कहा कि कुछ गड़बड़ है, कोई विशेष कारण है। तब राम जी ने कहा कि चुप, चुप और भगवान ने अपने ओंठ पर उँगली रखकर चुप रहने का इशारा किया। यह शिष्टता है, किसी को चुप कराने के लिये चुप थोड़े ही कहना पड़ता है। इधर, साधु लोग आए तो भगवान ने कहा कि क्या बात है ? साधुओं ने कहा कि राजाधिराज महाराज भूपाल चक्रवर्तीचक्रचूड़ामणि दशरथनन्दन सरकार की घनीखम्मा। भगवान ने कहा कि क्या बात है भाई, इतनी विरुदावली क्यों ? साधुओं ने कहा कि कहने में लज्जा लग रही है! भगवान ने कहा कि कहो तो! साधुओं ने कहा कि सरकार, आपकी गृहस्थी देखी, बहुत चकाचक है। इतनी सुन्दर गृहस्थी है। सीता जी इतनी आज्ञाकारिणी हैं। आप मृगया करके थके-माँदे आते हैं, उसी समय सीता जी मुस्कुराकर जब जल पिला देती हैं तो पूरी थकावट आपकी दूर हो जाती है सरकार! हम लोग तो कीर्तन करके आते हैं तो कोई पूछने वाला नहीं होता, तो वैसे ही सो जाते हैं सरकार! भगवान ने कहा कि तब क्या करें ? साधुओं ने कहा कि सरकार, हमको भी घरवालियाँ दे दी जाएँ! भगवान ने कहा कि तुम्हें भवानी खाएँ। कहाँ से आ गया ये प्रपञ्च! भगवान ने कहा कि बेटा, गृहस्थी की चकाचक तो तुमने देखी, अब जरा कल गृहस्थी की कचाकच भी देखना!

आप लोग भी चकाचक तो देखते ही हैं पर जब बच्चों की फीस जमा करनी पड़ती है तो कचाकच भी देखनी पड़ती है और उनकी जब माँग पूरी नहीं होती तो घर में जो महाभारत मचता है तो बस नमो राघवाय हो जाता है और वह महाभारत भोजन के समय ही मचता है, वो भी उनकी विवशता है। भोजन के समय ही समय मिलता है और कोई समय मिलता ही नहीं। गृहस्थी की कचाकच दिखाने के लिये भगवान राम ने भगवती जी से कह दिया-'मैं कछु करब ललित नरलीला-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

भगवान राम ने कहा कि मुझे नरलीला करनी है सीते क्योंकि तुम तो हमको चकाचक में रखती हो और ललित-नरलीला में घरवाली कचाकच में रखती है और वो तुम नहीं कर सकोगी! उदात्त नरलीला में कोई पत्नी अपने पतिसे ऐसी माँग नहीं

करती, जिससे वह धर्मसंकट में पड़ जाए और मुझे तो दो क्षण के लिये ऐसी घरवाली चाहिये, जो ऐसी माँग करे कि मेरी भी खटिया खड़ी हो जाए! राघव जी ने सीता जी से माँग कर दी कि तुम अग्नि में रह लो, मैं ऐसी घरवाली ला रहा हूँ जो फिर आनन्द करवा देगी। वो तो माँगेगी कनक मृग, पर कनक-मृग क्या किसी ने संसार में देखा है ?

न निर्मितः केन न दृष्टपूर्वो,
न श्रूयते हेममयः कुरङ्गः
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य ?
विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।।

'न निर्मितः केन' क्या किसी ने कभी स्वर्णमृग बनाया है या क्या स्वर्णमृग किसी ने देखा है ? किसी ने सोने का हरिण सुना है क्या ? क्या यह रघुनन्दन की तृष्णा है ? प्रश्नवाचक है यह! 'तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य' क्या तुम रघुनन्दन की तृष्णा समझ रहे हो ? ये राम जी की तृष्णा नहीं है, वास्तव में यह तृष्णा दूसरे की है। प्रकरण दूसरा है। 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' तुमने राम जी में तृष्णा देखी तो तुम्हारा सर्वनाश होगा। अर्थ इसका दूसरा है और हमने इसका अर्थ कर दिया दूसरा, कि जब व्यक्ति का विनाशकाल निकट होता है तो उसकी बुद्धि में विपरीत भाव आ जाते हैं। वो राम जी को भी लालची समझने लगता है, राम जी को भी कामी समझने लगता है, राम जी को भी क्रोधी समझने लगता है। राम जी में क्या कभी तृष्णा होगी? वो इन सबसे परे हैं। इसीलिये, राम जी ने कहा-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

और कर दिया ललित नरलीला। जब ललित नरलीला की तो सीताजी का हरण रावण ने कर लिया और 'हा सीते! हा सीते!' कहकर भगवान राम उन्हें ढूँढ रहे हैं सबने देखा! बाबाओं से भगवान ने कह दिया था कि आप लोगों के लिये इतनी घरवालियाँ हम कहाँ से लाएँ? यह बताइये, और तुम लोग इतने कुरूप हो कि तुम लोगों को कौन लड़की वरण करेगी। दस-दस फिट की तुम्हारी दाढ़ी है, आँखों में कीचड़ भरा हुआ है, कभी साफ तो रहते नहीं हो, दूर से गन्धा रहे हो, तो तुमको कौन लड़की स्वीकार करेगी, पहले यह बताओ!

उन साधुओं ने कहा कि हम आपको एक उपाय बताते हैं, जिससे सरलता हो जाएगी! आपको कहीं से कोई विदेश से थोड़े ही लाना है। आपके चरण में यह गुण

है कि आप जिस शिला को छू दें वो नारी बन जाए। तो हे सरकार, हमारे लिये भी शिलाओं को छूकर नारी बना दीजिये, हमको भी घरवालियाँ मिल जाएँ!

भगवान ने कहा कि ठीक है, तो ऐसा करो कि तुम्हीं लोग अपने-अपने अनुकूल अर्थात् जो मोटा है, मोटी शिला लाए, जो पतला साधु है वो हल्की शिला लाए, जो गोरा साधु है, वो गोरी शिला लाए, जो काला साधु है वो काली शिला लाए। आप लोग चुन चुनकर शिलाएँ अपने आश्रम में रख लें औरआज से जरा कीर्तन करना प्रारम्भ कर दें, भगवान का नाम लें, जप-तप करें क्योंकि आप लोग तो हो चुके हैं बुड्ढे और घरवाली आएगी युवती, तो कहीं आप लोग मर-वर गए तो अनर्थ हो जाएगा, इसलिये आप लोग विवाह की तैय्यारी में पूर्वकृत्य कर लें और कल मैं आपके आश्रमों में आकर के उन शिलाओं को छूकर नारी बना दूँगा।

इधर साधु तो इसमें लग गए और तब तक यहाँ 'तुम पावक महँ करहु निवासा' की लीला भगवान ने कर दी और माया की सीता भगवान ले आए। माया की सीता ने कनक-मृग माँगा।

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर छाला।।
सत्यसन्ध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही।।

भगवान राम से कनक-मृग जब माया की सीता ने माँगा तो भगवान राम दौड़े कनक मृग के पीछे, उसके बाद जो हुआ, वो आप जान ही रहे हैं। अब सब साधुओं के पास जाकर ढूँढने लगे 'हा सीते, हा सीते।' साधुओं ने कहा कि आपकी सीता जी क्यों चली गईं ? भगवान राम ने कहा कि उन्होंने कनक-मृग माँगा, मैं लेने गया तो इधर रावण ने हरण कर लिया। राम जी इतना करुण विलाप कर रहे हैं कि उसके लिये भवभूति बहुत अच्छा कहते हैं और भवभूति क्या, सीताजी ही कह रही हैं कि प्रतिबिम्ब की सीता जी के सम्बन्ध में जब राघव जी रो रहे थे तो अग्नि में पड़ी-पड़ी मैं देख रही थी पर मेरी विवशता थी कि मैं बोल भी नहीं पा रही थी। कहते हैं-

अथेदं रक्षोभिः कनक हरिणच्छद्म विधिना,
यथा वृतं पापैर्व्यथयति तथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकल करणैरार्य चरितै-
रपिग्रावारोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।

सीता जी स्वयं कहती है कि 'जनस्थाने शून्ये' जब शून्य जनस्थान में प्रभु रोते थे तो 'अपिग्रावा रोदिति' अपि दलति वज्रस्य हृदयम्' अपि प्रश्नवाचक है। 'अपि

ग्रावा रोदिति' क्या राम जी के वियोग को सुनकरके, उनके विलाप को सुनकरके पत्थर नहीं रोया ? क्या वज्र का हृदय नहीं फटा ? इतना करुण भगवान राम रो रहे थे कि सुनकर व्यक्ति का हृदय फूट-फूटकर रो पड़ा। अरे! प्रभु इतना रो रहे हैं! रोते-राते भगवान आए और साधुओं से कहा कि चलो, अब हम आपकी शिला को छू देते हैं, आपकी घरवाली बन जाएगी।

साधुओं के मन में आया-

कामिन कै दीनता दिखाई। धीरन के मन बिरति दृढ़ाई।।

कामियों की दीनता दिखाई कि कामी कितना दीन हो सकता है। दीनबन्धु भी कामी का अभिनय करते करते आज कितना दीन है 'भयउ बिकल जस प्राकृत दीना' दीनबन्धु दीन बन गया! 'अदीनात्मा विचक्षणः' 'हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी' पूछ रहा है! अब साधुओं को हो गया वैराग्य! उन्होंने कहा-हे राम! जब साक्षात् राघव सरकार इतने कष्ट में पड़े हैं तो हम तो मर जाएँगे। हमारी तो कचूमर निकल जाएगी सरकार! हम ऐसी घरवाली नहीं चाहते। उठा-उठा कर पत्थर फेंकने लगे।

भगवान ने कहा-नहीं, नहीं हम तो रो ही रहे हैं।

साधुओं ने कहा-नहीं-नहीं, आप रो रहे हैं तो भैय्या हमको मत रोने दीजिये! जाने दीजिये प्रभु! हम नहीं चाहते ऐसी घरवाली! हम तो आपका आनन्द देखकर रीझे थे। हमको क्या पता था कि इसमें कष्ट भी होता है। ये तो हमें नहीं पता था कि इसमें यह भी होता होगा! नमो राघवाय कहकर पत्थर फेंक दिया।

भगवान कहते हैं-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

भगवान राम सीता जी से कहते हैं कि इस ललित नरलीला में आपकी भूमिका नहीं हो सकती क्योंकि आपने कभी मुझसे कुछ माँगा नहीं। आपने तो मुझसे यही कहा था कि मैं आपसे कुछ नहीं मानूँगी-

सबहिं भाँति प्रभु सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।

आपकी सब प्रकार से मैं सेवा करूँगी, आपसे कुछ भी नहीं माँगूँगी। मैं तो इतना माँगूँगी कि-

सास ससुर सम मुनितिय मुनिवर। असन अमिय समकन्द मूल फर।।

सोचिये, प्रतिज्ञा की है सीताजी ने कि ये तो सब हमारे परिवार होंगे।

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहैं सास ससुर सम सारा।।

जो हरिणों को, मृगों को परिवार, मानती है, वो क्या मृग का वध करने के लिये कहेंगी ? वो मृग का वध करने के लिये कह ही नहीं सकती हैं। वो तो यही कहती हैं-

छाँड़ि कहाँ जइबे होऽ चरन गहिबे, छाँड़ि....

तुम्हें देखि देखि सुरपुर के सुख लहिबे।

छाँड़ि...

कन्द मूल खाइ खाइ भुखिया निवरिबे

हो ऽऽऽ नाथ भुखिया पियसिया कछू न कहिबे। छाँड़ि कहाँ जइबे।

सीता जी प्रभु से यह थोड़े ही कहेंगी कि मेरे लिये कनक-मृग लाकर दो! जो सीता जी प्रभु के लिये इतनी मर्यादा में रहती हैं कि जब उन्होंने देखा कि हमारे प्रभु ने वल्कल वस्त्र धारण किया है तो उनको अँगूठी भार लगने लगी। उतारा क्या जाता है जो बोझा होता है और सीताजी ने कह दिया-

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।

हे नाथ, आपके बिना भोग मेरे लिये रोग हो गए हैं, भूषण भार बन जाएगा। कुछ तो पहना नहीं था, केवल मुद्रिका पहनी थी पर जब प्रभु को थोड़ा सा संकोच में बहूरानी जी ने देखा तो कहा कि अरे! आग लगे इस आभूषण को! इसके रहते मेरे प्रभु को संकोच हो, अरे! प्रभु को दीप्सा है और वस्तु नहीं मिल रही है। अँगूठी निकालकर रख दिया और इसीलिये कहा-'मनि मुदरी मन मुदित उतारीं' भार लग रही मुद्रिका को उतार दिया। सौभाग्य का चिन्ह केवल चूड़ामणि रक्खा था, 'त्वत्कः प्रसाद इति' बालरामायण में लिखा है कि सब कुछ तो बहूरानी जी ने उतार दिया था, केवल चूड़ामणि इसलिये रक्खा था कि यह तो पिता जी का प्रसाद है और वह भी जब हनुमान जी ने चिन्ह देने की बात की तो चूड़ामणि उतार कर दे दिया-

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।

चूड़ामणि भी उनको भार लगने लगा था, 'तब हरष समेत चूड़ामनि उतारि दयऊ', तब सीता जी ने प्रसन्न होकर चूड़ामणि उतार कर दिया जैसे जब कोई बोझ उतारता है तो उसे प्रसन्नता होती है। बोझा उतारते समय व्यक्ति प्रसन्न होता है कि चलो, ये भार मेरा उतर गया, अब मैं स्वतन्त्र रह लूँगा, उसी प्रकार सीता जी ने हर्ष के साथ चूड़ामणि उतार दिया। वास्तव में 'हरष समेत' विशेषण हनुमान जी के लिये

नहीं लगेगा। हनुमान जी तो दुखी होंगे कि आज चिन्ह के हठ में अपनी माँ का सौभाग्य का चिन्ह भी मैं उतरवा लेता हूँ। हनुमान जी को दुःख होरहा है कि आज अपनी माँ का यह चिन्ह भी मैं ले जा रहा हूँ वह भी इसलिये कि रघुनाथ जी विश्वास कर लें। इसीलिये तो वास्तव में हनुमान जी को थोड़ा सा क्रोध आ गया। क्रोध क्या थोड़ी सी उनके मन पर उत्तेजना हो गई जब राम जी ने यह कहा-

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रक्षा स्वप्रान की।।

राम जी के, यहाँ दो भाव छिपे थे, एक तो भगवान राम संशय में कह रहे थे कि सीता जी अपने प्राणों की रक्षा कैसे कर रही हैं ? क्या कोई अवलम्ब है उनका? और दूसरा इसमें व्यंग्य भी था कि अयोध्या में उन्होंने कह दिया था कि मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं जी सकती, तो अब वो मेरे बिना कैसे जी रही हैं?

इसका उत्तर हनुमान जी ने दे दिया कि अब तक तो मैं आपको दीनदयाल जान रहा था पर माता जी को दीन देखकर भी आप शास्त्रार्थ कर रहे हैं ? मुझे तो यही लगता है कि आपको दीनदयाल न ही कहा जाए तो अच्छी बात होगी! मैं नहीं कहूँगा आपको दीनदयाल!

सीता कै अति बिपति बिशाला। बिनहिं कहे भलि दीनदयाला।।

आपको दीनदयाल बिना कहे ही भली होगी, अच्छा रहेगा। दीनदयाल शब्द आपका लञ्छित हो रहा है। मैंने तो केवल आपको विश्वास में लेने के लिये अपनी माँ का सौभाग्य का चिन्ह ही उतरवा लिया और आप मुझसे शास्त्रार्थ करते हैं कि वो अपने प्राणों की रक्षा कैसे कर रही हैं! इतना कहने का साहस आपने कैसे कर लिया, पहले आप यह बताइये। आपको करुणा आ तो रही नहीं है और आपको करुणानिधि कहा जाए!

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।

हमारे पाठ में है-

निमिष निमिष करुनाजतन जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय भुजबल खल-दल जीति।।

इतना जब कहा तब-

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना।।

इसलिये मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि आपसे ललित नरलीला नहीं हो सकती।

जो इतनी सम्वेदनशील हैं कि अपने प्रभु को संकोच में नहीं डालतीं। चूड़ामणि और मुद्रिका जिसे भार लग रही होगी वो क्या कनक-मृग माँगेगी अपने प्रभु से ? आग लगे ऐसे सोने में। वो नहीं माँग सकतीं और यदि वह नहीं माँग सकतीं तो रावण कभी हरण करेगा ही नहीं और जब रावण हरण नहीं करेगा तो ललित नरलीला होगी ही नहीं, इसलिये-

सुनहु प्रियाव्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

गम्भीर रहिये, देखिये कि ललित नरलीला के कितने पक्ष हो सकते हैं। राम जी कहते हैं कि ललित नरलीला में एक बात और होगी सीते, आपका स्वभाव इतना मधुर है कि आप किसी का वध नहीं करने देंगी। कनक-मृग का वध आप करवाएँगी? यह लोगों का भ्रम है और यह परम्परा भी सरासर गलत है। कोई भी माँ अपने बच्चे का खून थोड़े ही पीना चाहती है। दुर्गा माँ यदि माँ हैं तो बकरे का खून वो क्यों पियेंगी ? यदि वो ऐसी माँ हैं कि बकरे का खून पीना चाहती हैं तो हम उसको प्रणाम तो करेंगे पर उसका दर्शन नहीं करना चाहेंगे क्योंकि ऐसी निठुर माँ का दर्शन हमें तो नहीं स्वीकार्य है। इसलिये वहाँ जो वर्णन आया है-

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः।।

इस प्रकरण का तात्पर्य हम नहीं समझते! भगवती कह रही हैं कि तब तक तू गर्जन कर, जब तक मैं मधु पी रही हूँ। मधु का क्या अर्थ है ? क्या वो शराब पीती हैं ? मधु का अर्थ शराब नहीं हैं, मधु का अर्थ है वात्सल्य-रस। पुत्र का वत्सल रस पी रही हूँ मैं। इसलिये भगवती सीता जी कनक-मृग का वध बिल्कुल नहीं चाहेंगी और कनक-मृग का वध करना अनिवार्य है। ये तो मृगनयनी हैं। मृग के नेत्रों के समान उनके नेत्र हैं तो क्या कोई अपने नेत्र का वध कराएगा ? जब कनक-मृग का वध नहीं होगा तो हरण कैसे होगा ?

तीसरी बात, अन्य ग्रन्थों में यह वर्णन है कि मारीच को यह वरदान है कि जब तक सीता जी नहीं कहेंगी, मारीच का वध नहीं हो सकेगा। यही तो कारण है कि भगवान राम को, बाल्यकाल में मारीच को फेंकना पड़ा था, क्योंकि वहाँ सीताजी ने नहीं कहा था और ये माँ तो अपने बालक को मारने के लिये कभी कहेंगी ही नहीं। मैं मम्मियों की बात नहीं कहता पर माँ जब एक चाँटा मारती है तो चार घण्टे रोती है कि आज मैंने लाला को मार दिया। ऐसा क्यों हो गया ? मेरा चाँटा लाला के

कोमल-कोमल कपोल पर क्यों चला गया। इसलिये ललित नरलीला में कनक-मृग मारीच का वध नहीं होगा, तब तक बहुत अनर्थ होता रहेगा और मारीच का वध बिना सीता जी की आज्ञा के होना नहीं है, यही तो समस्या है। रामावतार और कृष्णावतार में एक-एक समस्या है। रामावतार में जब तक सीताजी नहीं कहेंगी, मारीच का वध नहीं होगा और कृष्णावतार में जब तक पृथ्वी नहीं कहेगी, तब तक 'भौमासुर' का वध नहीं होगा क्योंकि भौमासुर पृथ्वी का बेटा है। भले वह राक्षस है पर बेटा है वह पृथ्वी का। अब दोनों के लिये क्या किया जाए, इसलिये रामावतार में भगवान राम को माया की सीता लाना पड़ा और कृष्णावतार में उन्होंने सोचा कि भौमासुर का कैसे वध करें, पृथ्वी तो कहेगी नहीं, तब उन्होंने विचार किया कि पृथ्वी की अंशभूत सत्यभामा को ले चलता हूँ और सत्यभामा को ले आए। मूर्ख तो था ही वह, अपनी माँ को ही मारने लगा, उस पर बाणों की वर्षा कर दी, तब सत्यभामा के मुँह से निकल पड़ा कि मारो इस राक्षस को! तब तक तो सुदर्शन चक्र से भगवान ने उसको मार डाला। इसी प्रकार यहाँ भी-

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा।।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुन्दर छाला।।
सत्यसन्ध प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही।।

माया की सीता तो यह कहेगी ही! वो तो अपना बदला लेगी ही लेगी क्योंकि उसमें वेदवती का आवेश है और वेदवती का रावण ने केश पकड़ा है, इसलिये वेदवती कहती है कि जब तक तुम्हारा सर्वनाश नहीं कर लूँगी, तब तक चैन से नहीं बैठूँगी। महाकाली बनकर आ रही हैं वो और अपना बदला निश्चित ही लेंगी।

कालराति निशिचर कुल केरी। तेहिं सीता पर प्रीति घनेरी।।

ये महाकाली हैं और महाकाली तो खून पीकर रहेंगी पर महालक्ष्मी ऐसा कभी नहीं कर सकतीं। यह एक समस्या है।

तीसरी एक बहुत अच्छी और विचित्र समस्या यह है कि सीता जी को कनक-मृग पर लोभित होना पड़ेगा, लोभायमान होना पड़ेगा, आकर्षित होना पड़ेगा। क्या सीता जी कनक-मृग पर कभी आकर्षित होंगी ? उनके लिये क्या कोई ये कल्पना कर सकता है ? अयोध्याकाण्ड में स्वयं गोस्वामी जी ने उनकी बनवास की सात्विकता का वर्णन किया तो कहने लगे-

राम संग सिय रहहिं सुखारी। पुरजन परिजन सुरति बिसारी।।

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवार कुरंग बिहंगा।।

प्रियतम के साथ उन्हें पर्णकुटी प्रिय लग रही है। कुरंग और विहंग अर्थात् मृग और पक्षी उनके परिवार हैं। अवध का वो स्मरण ही नहीं करतीं!

सिय मन राम चरन अनुरागा। घर न सुगम बन बिषम न लागा।।

वो अयोध्या की कनक कोटि का स्मरण नहीं करतीं तो छोटे से, दो चार किलो जिसमें सोना होगा, उस कनक-मृग पर आसक्त होंगी? गोस्वामी जी स्पष्ट कहते हैं-

लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहिं कि मोहि सक बिषय बिलासू।।

जिनके दर्शन मात्र से लोग लोकपाल बन जाते हैं। 'लोके बृहस्पति वनस्पति तारतम्यं यस्यानुराग यस्याकटाक्षपरिणामुदाहरन्ति' जिनकी कृपाकटाक्ष मात्र से वनस्पति भी बृहस्पति बन सकता है, वे जगज्जननी जनकनन्दिनी जी क्या साधारण से स्वर्ण-मृग पर लोभित होंगी और ललित नरलीला में लोभित होना पड़ेगा। सीताजी कहती हैं कि तुम ललित नरलीला करो या न करो मैं लोभ का अभिनय भी नहीं करना चाहती। कितना विचित्र व्यक्तित्व है हमारी बहूरानी जी का! वाचिक पाप भी सीताजी नहीं करना चाहतीं। बहने किसी से मजाक कर कह सकती हैं कि मैं तुम्हारे साथ चलूँगी और फिर कहती हैं कि कह दिया पर क्या उसके साथ चली गई? पर मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, यह कहना भी तो पाप हो ही गया। जैसे कोई पुरुष किसी महिला से कह दे कि हमारे साथ ब्याह कर लो तो यद्यपि वह कर थोड़े ही रहा है पर कहने में वाचिक पाप तो हुआ। सीता जी कहती हैं कि मैं लोभ का अभिनय भी नहीं करूँगी और जब तक सीता जी लोभ का अभिनय नहीं करेंगी तब तक कनक-मृग का वध हो ही नहीं सकता। इसलिये-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

ये तीनों विशेषण हैं। प्रिया हैं आप, इसलिये नरलीला में आप नहीं रह सकेंगी, क्योंकि नरलीला में कोई भी प्रिया अपने पति को कष्ट नहीं दे सकती।

एक बार एक भारतीय नारी जो नवविवाहिता थी अपने पति के साथ एक झोंपड़ी में बैठी थी। संयोग से झोपड़ी में आग लग गई। जब आग लगी तो पानी डालने का प्रकरण आया। पानी डालने के लिये पति घड़ा भरकर लाकर देता था और हल्का सा मुस्कुरा देता था और वो उसकी मुस्कुराहट को देखते-देखते ही वहीं पर घड़ा उँडेल देती थी, घर तक पहुँच ही नहीं पाती थी कि घर में पानी डाले। पूरा घर

जलता रहा। वो घड़ा भर-भरकर देता रहा और वो वहीं पानी डालती रही और घर जलकर खाक हो गया। लोगों ने कहा कि तू पागल हो गई है क्या ? पूरा घर तुम्हारा जल गया और तुम पानी नहीं डाल सकीं। उस युवती ने कहा कि घर जला तो क्या हुआ, बड़ा अच्छा हुआ, अरे! क्या नुकसान हुआ, झोंपड़ी तो फिर बन जाएगी। घर जला तो कम से कम प्रियतम के हाथ से हँस-हँसकर घड़ा लेने का सौभाग्य तो मिल गया-

आग लागि घर जरिगा विधि भल कीन्ह।
पिय के हाथ घड़िलवा हँसि हँसि लीन्ह।।

कितना उदात्त चरित्र है भारतीय नारी का!

सीता जी, आप प्रिया हैं और आप मुझे कष्ट में नहीं डालेंगी। आप तो यही कहेंगी कि मैं कनक-मृग का क्या करूँगी ? मेरे सरकार कनक-मृग के लिये दौड़ेंगे तो उनके चरणों में काँटे नहीं चुभेंगे क्या ? जो इन चरणों से इतना प्रेम करती हैं 'जानकी कर सरोज लालितौ' जो जानकी के कर-सरोज से लालित हैं। वाल्मीकि जी ने एक वाक्य लिखा है कि सब लोग सब वत्सल हो सकते हैं पर आपने क्या कोई नारी भर्तृ-वत्सला देखी है ? मन्दोदरी रावण से कहती है कि तुम कई जन्मों में भी सीता जी को नहीं समझ सकोगे। पत्नी कभी पति पर वात्सल्य नहीं करती पर सीताजी का वात्सल्य-महासागर इतना व्यापक है जिसने श्रीराम को भी समाहित कर लिया। जैसे कोई महिला अपने बालक को प्रेम करती है, उसी भाँति श्रीराम जी के चरणों से सीता जी प्रेम करती हैं। 'भर्तृ-वत्सलाम्' भर्तरि वत्सला इति भर्तृवत्सला। 'जानकी करसरोजलालितौ' कौसल्या जी राघव जी के मुख को दुलारती हैं और सीताजी राघव जी के चरण को दुलारती हैं।

सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पायँ पलोटिहि सब निशि दासी।।

सीता जी हमारी राधा जी थोड़े ही हैं जो कन्हैय्या जी से चरण दबवाती हैं। न ये आदर्श है और न ये अनुकरणीय है। आनन्द आ जाए, खूब हँस लो। 'बैठे पलोटत राधिका पायँ' खूब करो जो कुछ करना हो। 'राधा मेरी सागर तरंग हैं बिहारी' खूब नाचो, गाओ, पर इससे क्या तुम कोई सामाजिक समरसता का प्रणयन कर सकोगे? क्या सम्भव है ये ? बिल्कुल सम्भव नहीं है। इसलिये 'पायँ पलोटिहि सब निशि दासी' कहने वाली सीता जी कभी नहीं कहेंगी कि 'आनहु चर्म कहति वैदेही।' नरलीला का तीसरा सबसे विलक्षण पक्ष है कि माया की सीता ने दौड़ने के लिये कह

दिया क्योंकि माया की सीता को दया नहीं आ रही है पर हमारी सीता जी जितना कोमल भला कौन होगा! धनुष तोड़ने का प्रसंग आया और सीता जी राम जी को देखकर डरीं कि अरे राम, ये कैसे धनुष तोड़ेंगे, जिनके पुष्पवाटिका में भ्रमण करने पर भाल पर पसीना आ गया 'भाल तिलक श्रम बिन्दु सुहाए' ये धनुष कैसे तोड़ पाएँगे ? सारे देवी देवताओं को सीता जी मनाने लगीं। हे गणपति, धनुष को हल्का कर दो, इसमें बहुत वजन है।

गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हेउ तुअ सेवा।।

बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी।।

सीता जी, शंकर भगवान के धनुष को हल्का करने के लिये सभी देवी-देवताओं को मना रही हैं।

देखि देखि रघुवीर छवि सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली शरीर।।

शिव जी से कहा-

करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई।।

कोई नहीं जब सुन रहा है।

बिधि केहि भाँति धरउँ मन धीरा। सिरिस सुमन कत बेधिय हीरा।।

अरे! सिरिस के पुष्प को हीरे से बेधा जा रहा है, ये क्या है ? क्या कर रहे हो तुम लोग ?

कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा। कहँ श्यामल मृदु गात किशोरा।।

जो इतनी कोमलता की पक्षपातिनी हैं, वो अपने राघव को मृग के लिये क्या दौड़ाएँगी! यह सम्भव है क्या! यहाँ तक कह दिया-

सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहि शंभु चाप गति तोरी।।

शंकर के धनुष ने कह दिया कि मैं तो जड़ हूँ तो सीता जी ने कहा-

निज जड़ता लोगन पर डारी। होउ हरुअ रघुपतिहिं निहारी।।

अपनी जड़ता इन लोगों पर फेंक दो। जो चेतन ब्रह्म को नहीं पहचान सके, आग लगे इनकी चेतना को! हल्के बन जाओ धनुष ने कहा कि कितना हल्का बन जाऊँ, एक किलोग्राम कि ढाई सौ ग्राम, कि सौ ग्राम, तब सीता जी ने कहा कि नहीं, नहीं। तुम राम जी को निहार लो, जितना वो उठा सकें उतने ही हल्के बन जाओ! जो

प्रभु के प्रति इतना कोमल भाव रखती हैं वो दण्डक की पगडण्डियों में अपनी छोटी सी इच्छा पालन के लिये अपने प्रभु को दौड़ाएँगी ? ये सम्भव ही नहीं है। ये उनका स्वभाव ही नहीं है।

दूसरी जटिलता यह है कि जब तक लक्ष्मण जी रहेंगे, तब तक सीताजी का हरण नहीं हो सकेगा। लक्ष्मण जी के रहते सीता जी का हरण नहीं हो सकता, रावण चाहे रावण का बाप आ जाए!

जग महँ सखा निशाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महँ तेते।।

लक्ष्मण जाएँगे जभी जब उनको कटु वचन बोला जाए। तो क्या हमारी सीताजी अपने लाला को कटु वचन कहेंगी ? 'जल को गए लखन हैं लरिका', कितना वो उन्हें दुलारती हैं। राम जी थोड़ी दूर आगे बढ़ गए तो कहती हैं नहीं, रुकिये लक्ष्मण जी लड़के हैं। जल लेने गए हैं। उनको परखना पड़ेगा-

जल को गए लखन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाँढ़े।

एक घड़ी तक कम से कम खड़े रहिये। एक घड़ी माने चौबीस मिनट खड़े रहिये! तो लक्ष्मण जी को कटु वचन कौन कहेगा ? और जब तक लक्ष्मण जी को कटु वचन नहीं कहा जाएगा तब तक लक्ष्मण जी का मन नहीं डोलेगा और वो साथ छोड़कर जाएँगे नहीं, जब लक्ष्मण जी साथ छोड़कर जाएँगे नहीं, तो रावण कैसे सीताजी का हरण करेगा और फिर ललित नरलीला नहीं हो सकेगी। इसलिये-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

तीसरी एक और जटिलता है कि राम जी जानते हैं कि लक्ष्मण जी जाएँगे भी तो बिना रेखा खींचे नहीं जाएँगे और सीताजी अनुशासनप्रिय महिला हैं, वो कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकतीं क्योंकि 'पति देवता सुतीय महँ मातु प्रथम तब रेख' कह दिया। जिस रेखा की वो चर्चा करती हैं, उस रेखा का उल्लंघन वो नहीं करेंगी। जब प्रतिज्ञा कर चुकी हैं 'प्राणनाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा।। तो देवर की कही हुई बात का वो उल्लंघन नहीं करेंगी। कुटिया छोड़कर नहीं आएँगी। सीता जी के द्वारा रेखा का उल्लंघन नहीं होगा और जब तक रेखा का उल्लंघन नहीं होगा, रावण उनका हरण कर ही नहीं सकता। तो ये सब कार्य केवल माया की सीता से ही कराए जा सकेंगे। माया की सीता के बिना ये कार्य नहीं हो सकता क्योंकि सीताजी का कोई स्पर्श नहीं कर सकता। रावण भी सीता जी का स्पर्श नहीं कर सकता। इसलिये भी भगवान ने कहा कि ललित नरलीला के जो पक्ष हैं, ये आपसे नहीं होंगे-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

१- तीन आपत्तियाँ हैं- आप 'प्रिया' हैं और नरलीला में आप अपने प्रिय का कष्ट नहीं देख सकेंगी। अपने प्रिय पर कष्ट नहीं डालेंगी।

२- आप 'व्रत-रुचिर' हैं। व्रत से रुचिर हैं। यदि वह अपने पति से कुछ माँगेगी तो पतिव्रता का व्रत भंग हो जाएगा। उसको अपनी सीमा में रहकर अपने पति से कुछ माँगना पड़ेगा। पति कमाकर लाता है एक हजार रुपया और माँग लो दस हजार की साड़ी तो उसे घूस तो लेना ही पड़ेगा। पतिव्रता वो है जो अपने पति की परिस्थिति को देखकर इच्छा का प्राकट्य करे।

३- आप 'सुशीला' हैं। आपका शील बहुत सुन्दर है। शोभन स्वभाव है। आपका क्रूर स्वभाव नहीं हो सकता कि आप कहें कि 'आनहु चरम'।

सीता जी तो यही कहती हैं कि सूर्यनारायण की प्रभा सूर्य को छोड़कर नहीं जा सकती और 'कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई', चन्द्रमा को छोड़कर चाँदनी नहीं जा सकती, इसलिये मैं आपको छोड़कर नहीं जा सकती।

राम जी ने कहा कि यदि आप मुझको छोड़कर नहीं जा सकतीं तो मैं भी आपको छोड़कर नहीं जा सकता। इसलिये आपसे यह नरलीला नहीं हो सकेगी।

'लालन जोग लखन लघु लोने' लक्ष्मण जी जो दुलारने योग्य हैं उनको कटु वचन कैसे कहेंगी सीताजी। न तो लक्ष्मण जी सीता जी को छोड़ेंगे, न राम जी ही सीताजी को छोड़ेंगे तो नरलीला कैसे हो सकेगी ? इसलिये ऐसा करो-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।

शेष चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र की जय।।

।।पवनसुत हनुमान की जय।।

चतुर्थ वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।

❖❖❖❖

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ पञ्चम वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १६-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।

श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान् राघवेन्द्र सरकार की जब अकारण करुण कृपा, हमको अनन्त जन्मों का फल देने का मन बना लेती है, तभी भगवान की कृपा से अहैतुक सत्संग प्राप्त होता है। वास्तव में इसी को सत्संग कहते हैं। जहाँ आयोजन किये जाते हैं वहाँ सत्संग थोड़े ही होता है। ठीक है, आयोजन किया जाए पर बिना किसी आयोजन के, बिना किसी योजना के सत्संग प्राप्त हो तो जान लो कि ये परमात्मा की अहैतुकी कृपा है और गोस्वामीपाद तो ये कहते हैं कि-

जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।
जेहिं दरस परस समागमादिक पाप राशि नसाइये।।

जब रघुनाथ जी व्यक्ति पर द्रवित हो जाते हैं, पिघल जाते हैं, तब सन्तों की संगति मिलती है!

बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

जब अनन्तकाल के, जन्म-जन्मान्तर के, कल्प कल्पान्तर, युग-युगान्तरों के पुण्य एकत्रित होते हैं तब भगवान की कथा का आनन्द लेने का अवसर आता है। वेदव्यास जी ने तो यही कहा-

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य च,
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो,
यदुत्तमश्लोक गुणानुवर्णनम्।।

वेदव्यास जी कहते हैं कि हमारी तपस्या का हमारे शास्त्रज्ञान का, हमारे सुन्दर किये हुए यज्ञ का, हमारे जीवन में किये हुए मधुर भाषणों का, भगवत् परक भाषण का, हमारे ज्ञान का, हमारे दान का एक ही अखण्ड फल है कि भगवान आनन्दकन्द

कोसलेन्द्र सरकार के मंगलमय गुण जहाँ अनुकूलता से गाए जा रहे हों और कोई फल नहीं है। हमारे पुण्यों का फल, मकान बनाना नहीं, दुकान लेना नहीं है, पैसे वाला बन जाना फल नहीं है, कुछ फल नहीं है केवल एक फल है कि हम रघुनाथ जी के चरित्रों का आनन्द लेते रहें। अन्तिम समय में गोस्वामी जी से भक्तों ने पूछा कि सरकार, आप एक प्रश्न का उत्तर दें, उस समय गोस्वामी जी की अवस्था बहुत हो चुकी थी। सोचिये सम्वत् १५५४ में उनका आविर्भाव हुआ और यह प्रकरण है सम्वत् १६८० का। गोस्वामी जी का अन्तिम ग्रन्थ है विनयपत्रिका, जो उनके बिस्तर पर प्राप्त हुआ था। गोस्वामी जी से पूछा गया कि आपका लगभग एक सौ छब्बीस (१२६) वर्षों का अनुभव है आप यह बताइये कि हमको रामजी का प्रेम कैसे प्राप्त हो ? वो कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं जिसे हम बाजार से खरीद लाएँ या किसी से लूटकर ले आएँ। तो गोस्वामी जी ने 'विनयपत्रिका' के सौवें (१००) पद के अन्तिम अन्तरा में कहा कि इसका एक ही उपाय है-

सुमिरि सुमिरि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनायास राम पद पाइहै प्रेम पसाउ।।

परस्पर जब बैठो तो राम जी के गुणगणों को गाओ! परस्पर बैठो तो व्यर्थ का 'हा हा हू हू' मत करो। ये तुम बहुत गलती करते हो! परस्पर बैठो तो केवल रघुनाथ जी के गुणगण गाओ, ये सबसे बड़ा जीवन का फल है। जब रघुनाथ जी के गुणगण अपने लोग गाते रहेंगे तो धीरे-धीरे बिना किसी प्रयास के अनायास राम जी के चरणों का प्रेम-प्रसाद हमको मिल जाएगा। पसाउ माने प्रसाद। पर इतना ध्यान रखो कि जब दो जने बैठो, कोई काम न हो, तो व्यर्थ की कोई चर्चा न करो।

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परस्पर इहइ सिखावहिं।।
भजहु प्रनतप्रतिपालक रामहिं। शोभाशील रूप गुन धामहिं।।
जलज विलोचन श्यामल गातहिं। मनसिज करि हरि जनसुखदातहिं।।

जहाँ-जहाँ जब अयोध्या के लोग बैठते हैं तो केवल भगवान का गुणगान करते हैं। आप लोगों को हमारा वह पद स्मरण होगा-

बिसरे न छन भर मोहे,
अवध की गलियाँ हे रघुनन्दन बबुआ।
सरजू के तीर मोहे सुहाए हे रघुनन्दन बबुआ।

क्यों अवध नहीं भूलता, तो कहते हैं-

ऊँची ऊँची अटा चढ़ि भामिनि सुहागिनि हे रघुनन्दन बबुआ

रउरे गुण गाएँ न अघाएँ हे रघुनन्दन बबुआ।

यही तो विशेषता है। अवध की नारियाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं पर चढ़ जाती हैं और केवल भगवान के गुणगान गाती हैं। क्या विशेषता है-

दूध भात खात खात, अँगना से भागैं हे रघुनन्दन बबुआ।

मुखवा से जूठन गिराए हे रघुनन्दन बबुआ।

इसीलिये सरजू के तीर....

अन्तिम बात क्या है-

गिरिधर माँगें बर जौनि जोनि जन्मउँ हे रघुनन्दन बबुआ

रामभद्राचारज ही कहाऊँ हे रघुनन्दन बबुआ।

सरजू के....

हमारी चित्तवृत्ति इसी प्रकार होनी चाहिये कि हम केवल भगवद्गुण गाएँ। 'गोविन्द दामोदर' स्तोत्र में 'बिल्वमंगल' कहते हैं-

विक्रेतु कामा किल गोपकन्या,
मुरारि पादार्पित चित्तवृतिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचत्।
गोविन्द दामोदर माधवेति।।

कितनी अन्तरंग वृत्ति रही होगी! दही बेचने की कामना से श्री वजांगना जब बाहर पधारती है और वह बोलना चाहती है 'ले लो दही' पर बोलती है 'गोविन्द दामोदर माधवे? वो तो यही बोलती है-

कोई ले लो दही, कोई ले लो दही
गोविन्द दामोदर माधवे
दाऊ के भैय्या ओ बाँके बिहारी
मोहन कन्हैय्या ओ मदन मुरारी
कोई ले.... गोविन्द.....
वृन्दावन कानन में धेनु के चरैय्या
मोहन मुरारी ओ गिरिधर मितैया
कोई ले लो..... गोविन्द

हमारी वृत्ति इतनी भगवद्धन्मुख होनी चाहिये जहाँ संसार का प्रवेश भी न हो सके। व्यक्ति बोलते-बोलते भगवद् प्रेम में इतना गद्गद हो जाए कि-

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तम्
रोदित्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज्य उद्गायति नृत्यते च,
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।।

भगवान कहते हैं कि जिसकी वाणी मेरे गुणगान में गद्गद हो जाती है और चित्त द्रवित हो जाता है, जो बार-बार रोता है और कभी हँसता है, जो लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वर में गाता है और नाचता है, वही मेरी भक्ति से युक्त भागवत, सारे संसार को पवित्र कर देता है।

एतावता, इस उपबृंहण का एक ही फल है कि हमारे जीवन का सबसे अद्भुत फल इस कलियुग में केवल भगवान की कथा है। ये बहुत बड़ी नाव है।

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा।।

भवसागर पार करने के लिये ये बहुत बढ़िया नाव है चाहे जितने जने चाहो बैठ जाओ। किसी पाठ में 'बड़ि नावा' पाठ भी है। पुराना पाठ यही है-'रामकथा ता कहँ बड़ि नावा।' और नाव चलाने वाले गुरुदेव होंगे-

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

और सद्गुरु की भूमिका केवट की है-

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना।।

आज केवट की कक्षा कितनी ऊँची है कि भगवान नाव माँगने आए, उसी प्रकार कथावाचक इतना अन्तर्मुख हो जाए कि उसकी कथा रूप नाव पर चढ़ने के लिये भगवान को आ जाना पड़े और वो कहे कि हम आपको तब बैठाएँगे जब आपके चरण धो लेंगे। भाव यह है कि जब कथावाचक अपनी आँखों के आँसू से भगवान के चरणों को धो ले, तब जानो अब कथा सफल हुई। ये भूमिका बहुत कठिन भूमिका है।

एतावता, इस उपबृंहण से आप प्रसंग का विरोध मत समझियेगा। यही तो प्रसंग की सही व्याख्या है और उपबृंहण ये है कि हमारे जीवन का सबसे बड़ा फल है अनायास मिलने वाली भगवान की कथा और वह कथा जहाँ आज भगवान प्रिया जी से तीन विशेषण दे रहे हैं-

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

यहाँ भगवान राम ने भगवती जी को तीन विशेषण दिये-प्रिया, व्रत रुचिर और सुशीला। अब मेरी कथा को आप समझिये कि तीन विशेषण क्यों दिये गए ? बालकाण्ड में सीताजी के लिये तीन ही विशेषण दिये गए। यद्यपि वो पाँच हैं पर सामासिक दृष्टि से तीन हैं-

१. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीम्

२. क्लेशहारिणीम्

३. सर्वश्रेयस्करीम्

सीता जी उत्पत्ति, स्थिति और संहार कराने वाली हैं। ब्रह्मा से उत्पत्ति कराती हैं, विष्णु से पालन कराती हैं और शिव जी से संहार कराती हैं।

राम जी को क्या करती हैं, क्या उनको कचौड़ी खिलाती रहती हैं ? राम जी से भी 'क्लेशहरण' कराती हैं।

पर एक काम वो किसी को नहीं देतीं, स्वयं ही करती हैं 'सर्वश्रेयस्करीम्'। जब सबका श्रेय करना होता है तब वो यह कार्य किसी को नहीं देतीं, अपने से करती हैं 'श्रेयस्' क्या है ? श्रेयस् है भक्ति प्रदान करना। एक इसमें किसी को साथ नहीं लेतीं। वो जानती हैं कि जीव के हृदय में भक्ति का सञ्चार कोई नहीं कर सकता, ब्रह्मा जी नहीं कर सकते, विष्णु जी नहीं कर सकते, शिव जी भी नहीं कर सकते, यहाँ तक कि राजा रामचन्द्र जी भी नहीं कर सकते। वो तो केवल हमारी बहूरानी सीताजी ही यह कार्य कर सकती हैं। 'सर्वश्रेयस्करीम्' 'श्रेयस्' का काम केवल सीताजी ही करती हैं और कोई यह कार्य कर ही नहीं सकता ! इसलिये यहाँ 'श्रेयस्करीम्' लिखा 'कारिणीं, हारिणीम्' नहीं लिखा, जिससे कोई 'ण्यन्त' की कल्पना न कर ले। उद्भवस्थितिसंहारान् कारयति तच्छीला करोति नहीं। 'णिनि' दोनों में बन जाता है 'करोति' में भी बनता है और 'कारयति' में भी बनता है परन्तु 'कारयति' में जब 'णिनि' प्रत्यय करेंगे तो पहले 'णिनि' का लोप हो जाएगा 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये।३/२/७८/णेर निटि, इस सूत्र से परन्तु करोति में सीधे वहाँ 'णिनि प्रत्यय होगा और 'अचो णिच्' से वृद्धि हो जाएगी। इसलिये 'सर्वश्रेयस्करीम्' ये कार्य किसी से नहीं करवातीं, स्वयं करती हैं। इसलिये ये तीन विशेषण दिये-

१. 'सुनहु प्रिया' आप उत्पत्ति, पालन, संहार करवाने वाली प्रिया जी हैं।

२. 'व्रत रुचिर' 'क्लेशहारिणीम्' हैं।

३. 'सुशीला' 'सर्वश्रेयस्करीम्' हैं। इसलिये, 'मैं कछु करब ललित नरलीला।'

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

राम जी ने कहा कि सब तो आप करती हैं पर मुझे भी कुछ करने का मन है। मैं नरलीला करना चाहता हूँ। थोड़ी सी नरलीला करूँगा पर उसमें आप नहीं रह पाएँगी क्योंकि ललित नरलीला में आपको मुझसे माँगना पड़ेगा और आप मुझसे कभी कुछ नहीं माँग सकतीं। 'ललित नरलीला' में कनक-मृग के पीछे दौड़ने के लिये मुझसे कहना पड़ेगा, आप नहीं कह सकतीं। ललित नरलीला में रूठना पड़ेगा, आप नहीं रूठ सकतीं। ललित नरलीला में लक्ष्मण जी को कठोर वचन कहना पड़ेगा, आप नहीं कह सकतीं। ललित नरलीला में मेरे अतिरिक्त भी किसी को देखना पड़ेगा 'सीता परम रुचिर मृग देखा' आप तो यही कहेंगी कि-

बावरी वे अँखियाँ जरि जाएँ जो श्याम विहाय विलोकति औरै।

अरे! वे अँखियाँ जल जाएँ जो श्यामसुन्दर को छोड़कर दूसरे को देखें। ये तो-

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टम्
यैर्वानिपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ।।

श्रीभद्भा० १०/२१/७

श्री व्रजांगना कहती हैं कि 'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः' आँख वालों की आँखों का यही तो फल है 'परं न विदामः' इससे कोई अच्छा फल है, यह हम नहीं जानते। हम तो इतना ही जानते हैं कि आँख वालों की आँखों का यही फल हे कि 'सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः' वयस्यैः सखियों और सखाओं के साथ, हम जैसे पशुओं को रासलीला में प्रवेश कराते हैं। 'व्रजेशसुतयोः' व्रजेश सुता राधारानी और व्रजेश सुत कृष्णचन्द्र के सम्मिलत मुखारविन्द को जिन्होंने अपनी आँखों से पिया है 'अनुरक्तकटाक्ष मोक्षम्' किस मुखारविन्द को निहारा है, पिया है, जिस मुखारविन्द में अनुरक्तकटाक्षमोक्षम्' अनुरक्तों पर टेढ़ी-टेढ़ी चितवन हो रही है। अनुरक्तों को तिरछी चितवन से जहाँ निहारा जा रहा हो और 'अनुरक्त कटाक्षमोक्ष' जहाँ मोक्ष को भी अनुरक्त कटाक्ष किया जाया करे कि तू तो मोक्ष देकर दूसरों का जीवन सत्यानाश कर रहा है। मोक्ष में क्या रक्खा है ? यदि जीवित रहेंगे तो राधारानी और कृष्णचन्द्र के मुखारविन्द को तो निहारेंगे। मोक्ष लेकर क्या करेंगे ? ले जाओ! एतावता, किसी

ने कहा कि गीता जी का अट्ठारहवाँ अध्याय तो सन्यासियों का है। हमने कहा कि कहाँ लिखा है ? तो कहा 'मोक्षसन्यासयोगोनामष्टादशोऽध्याय:' हमने कहा कि मोक्ष और सन्यास का अर्थ तुम लोग जानते हो या नहीं जानते! आज भी समाचार पत्रों में और आकाशवाणी में आप पढ़ते और सुनते होंगे कि अमुक व्यक्ति ने राजनीति से सन्यास ले लिया, अमुक व्यक्ति ने क्रिकेट से सन्यास ले लिया, अमुक व्यक्ति ने हॉकी से सन्यास ले लिया तो इस प्रकार सन्यास का अर्थ हुआ छोड़ देना। हमने कहा 'मोक्षसन्यासयोग' में बहुब्रीहि है। 'मोक्षस्यापि सन्यासो यस्मिन्' जिसको सुनते-सुनते मोक्ष भी सन्यास ले लेता है कि भैय्या अब हम किसी को मुक्त नहीं करेंगे। 'आग लगे मड़ए बजर परे बियाहे' अब हम नहीं जानते।

एतावता, भगवान राम कह रहे हैं कि प्रिया जी ललित नरलीला में आप उपयोगी नहीं बन सकतीं क्योंकि तीन कार्य मुझे करने हैं जो आपकी अनुकूलता में नहीं बन पाएँगे।

पहला कार्य यह है कि मैं खग-मृगों से आपको पूछूँगा। आपके समक्ष विलाप करूँगा, तो आप 'प्रिया' हैं, यह बात नहीं स्वीकारेंगी।

दूसरी बात, जटायु के समक्ष भी मैं विलाप करूँगा और आप 'व्रत रुचिर' हैं, अतः नहीं स्वीकारेंगी।

तीसरी बात लक्ष्मण के समक्ष भी उनको शक्ति लगने पर मैं विलाप करूँगा- 'जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू' तो आप सुशीला हैं, नहीं स्वीकार करेंगी।

इसलिये आप थोड़े दिन तक अग्नि में विराजिये!

लगता है कि इसी लक्षण पर सीताजी का विवाह राम जी से हुआ है। भगवान राम के लिये पार्वती जी ने सीता जी से कहा कि आपको वही वर मिलेगा जो आपके स्नेह को समझता हो-

मन जाहिं राचेउ मिलहिं सो बर सहज सुन्दर साँवरो।
करुना निधान सुजान शील सनेह जानत रावरो।।

बहुत गम्भीर वाक्य है कि जिस पर आपका मन रम गया है वह करुणानिधान सुजान हो और आपके शील और स्नेह को जानता हो। यह बहुत कठिन बात है। आज पति पत्नी के जो झगड़े हो रहे हैं उनका एक ही कारण है कि पति, पत्नी के शील से नहीं परिचित हो पाता और उसके स्नेह से भी परिचित नहीं हो पाता और पत्नी भी पति के शील और स्नेह से परिचित नहीं हो पाती और यहाँ तो 'शील सनेह जानत रावरो' और सीता जी भी-

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।

सीता जी राम जी के चित्त को जानती हैं और राम जी सीता जी के हृदय को जानते हैं। दोनों एक दूसरे को जानते हैं। इसलिये 'मनस्वी तद्गत मनः तस्या हृदि समर्पितः' क्या बात करते हैं! इतना प्रेम! 'अलौकिकं तु दाम्पत्यं दृश्यते राम सीतयोः।' आजकल कहाँ दाम्पत्य है? आजकल तो कोई दम्पति नहीं है, सब 'कपल' बने बैठे हैं। कपल या कपाल अर्थात् मरी हुई खोपड़ी। एतावता, राम जी, सीताजी के स्वभाव को भली-भाँति जानते हैं कि कुछ भी हो जाए, ये राक्षसों का वध तो स्वीकार करेंगी ही नहीं क्योंकि इनकी दो घटनाएँ वो देख चुके हैं और तबसे चिन्तित रहने लगे हैं। देखिये, पहली घटना तो आप सब जानते होंगे पर बड़ी रोचक घटना है।

पहली घटना 'अरण्यकाण्ड' की है जिसे वाल्मीकि जी ने तो 'सुन्दरकाण्ड' में लिखा है। जयन्त का प्रसंग है, जहाँ भगवान राम भगवती जी को सजा रहे हैं-

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।

आज प्रभु, श्री चित्रकूट की स्फटिक शिला पर विराज कर सुन्दर-सुन्दर पुष्पों को चुन रहे हैं और अपने हाथ से राघवेन्द्र जी ने आभूषण बनाए।

और दूसरा तात्पर्य 'निज कर भूषन राम बनाए' का यह है कि 'निज कर' अपने को ही सीता जी का आभूषण बना लिया। कितना बढ़िया आनन्द किया भगवान ने। सीता जी ने कहा कि मैं किसी दूसरे का स्पर्श नहीं सह सकूँगी, समझ लीजियेगा! तो जो भी आभूषण होंगे वो आप ही बनेंगे।

राम जी ने कहा कि बिल्कुल सरकार, वही होगा जैसा आप कहेंगी।

सीता जी के कुण्डल भी राम जी बने, सीता जी के कंकण भी राम जी बने, सीताजी की माथबेंदी और चूड़ामणि भी राम जी बने, सब कुछ पुष्प के राम जी ही बने 'कुलिशहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि' आज कोमल कुसुमहु चाहि' हो गया। भगवान राम ने सोचा कि सीताजी के श्रीअंग बहुत कोमल हैं। सामान्य आभूषण इनको पीड़ा देंगे और मैं भी बहुत कोमल हूँ। वास्तव में राम जी जैसा कोई कोमल भी नहीं हो सकता और राम जी जैसा कोई कठोर भी नहीं हो सकता। राक्षसों के लिये कठोरता की पराकाष्ठा भी राम जी हैं और प्रिया जी के लिये कोमलता की पराकाष्ठा भी राम जी ही हैं। इतने कोमल हैं रामजी पर नजर न लगाना! सबसे कोमल कमल, कमल से भी कोमल कमला क्योंकि कमला कमल पर बैठती है, कमला से भी कोमल कमला के कमल-चरण और कमला के चरण-कमल से भी

कोमल कमला के कर-कमल और कमला के कर-कमल से भी करोड़ों गुना कोमल मैथिली जी के चरण कमल और मैथिली जी के चरणकमल से भी करोड़ों गुना कोमल मैथिली जी के करकमल और इतने कोमल करों से राम जी को छूती हैं तो राम जी कहते हैं प्रियाजी, पीड़ा हो रही है। जरा और धीरे धीरे! देखो तो, इतने कोमल कि प्रियाजी के करकमल का भी स्पर्श राघव जी सह नहीं पाते!

प्रियाया: पाणिस्पर्शा क्षमाभ्याम्।

तो अंग्रेजी की सुपरलेटिव डिग्री की ऐसी की तैसी कर डाली! तो, इतने कोमल राम जी हैं। आज राम जी कहते हैं नहीं, नही। मैं आज एक तो स्वयं फूल के गहने बन रहा हूँ और फूल भी राघव जी स्वयं बन रहे हैं। इसलिये-

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला परमाधर।।

'परमां धारयति' आज परा शोभा को धारण करने वाले परमात्मा स्फटिक शिला पर बैठे हैं। जयन्त ने देखा तो कहा 'नेदं ब्रह्म' यह ब्रह्म नहीं हो सकता! इतना प्रेमी! इतना रसिक! रसिकता के साथ वीरता कैसी ? ये जो फूल के गहने बनाने में व्यस्त है वो रावणादि पर बाण कैसे चलाएगा ? ये ब्रह्म हो ही नहीं सकता! ये भगवान नहीं है! इसलिये उसने सीता जी के चरण पर चोंच का प्रहार कर दिया 'सीता चरन चोंच हति भागा' भगवान ने कहा कि बेटे, मेरे दोनों लक्षण हैं 'कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि' 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' फूल से मृदुल तो तभी हो गए और अब लो, वज्र से कठोर देखो, सींक के धनुष पर ब्रह्मास्त्र का सन्धान कर दिया 'प्रेरित मन्त्र ब्रह्मशर धावा' वज्र से भी कठोर हो गए। अब कुलिश पाणि इन्द्र भी जयन्त को नहीं बचा पा रहे हैं। सारे लोकों में जयन्त ने भ्रमण कर लिया। अब यहीं देखिये-

नारद देखा बिकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित सन्ता।।

इस चौपाई को बहुत ध्यान से देखिये। साधारण अर्थ आपने क्या देखा ? साधारण अर्थ आपकी समझ में यही आया कि नारद ने जयन्त को विकल देखा। परन्तु यहाँ दोनों अर्थ हैं कि नारद ने जयन्त को विकल देखा और कहा कि क्यों रे जयन्ता क्या हालचाल है ? और दूसरा अर्थ है 'नारद देखा विकल जयन्ता' जयन्त ने भी नारद को 'विकल' देखा। 'विकल' माने 'विगत कल' आनन्द में, कलाओं से रहित, मस्ती में झूमते हुए नारद जी को जयन्त ने भी देखा। जयन्त ने नारद जी को

'विगत कला' देखा और नारद जी ने जयन्त को कलह से युक्त देखा। जयन्त रो रहा है और नारद जी गा रहे हैं-

नारद देखा बिकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित सन्ता।।

जयन्त को रोते हुए भगवान नारद ने देखा तो उन्हें दया आ गई क्योंकि 'कोमल चित सन्ता' सन्त को विकल पर दया आती है। अरे भाई, नारद जी को विकल पर दया आई और मुझे विकलांग पर दया आती है, यही तो स्वभाव है। और लोग अपने लिये रोटी माँगते हैं, और मैं दूसरों के लिये रोटी माँगता हूँ। 'लागि दया' दया लगती है और 'कोमल चित सन्ता' सूक्ति है। सन्त कोमल चित होता है। उसको तो दया लगती ही लगती है, क्योंकि-

प्रिय प्रायावृतिर्विनय मधुरो वाचि नियमः।
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।।
पुरा वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासित रसम्।
रहस्यं साधूनामनवधिविशुद्धं विजयते।।

साधुओं का रहस्य अनवधि होता है, इसकी कोई अवधि नहीं होती! विशुद्ध होता है। उनका व्यवहार प्रिय होता है। वो बोलते कम हैं पर विनय से बहुत मधुर होते हैं। 'प्रकृत्या कल्याणी' उनकी वाणी निरन्तर कल्याण ही करती है और 'अनवगीतः परिचयः' साधु का परिचय निन्दित नहीं होता! साधु के साथ लगे तो चकाचक हो जाता है।

एक बार एक स्थान पर भण्डारा हो रहा था। एक मूर्ख साधु से किसी ने कहा कि 'तस्मै श्रीगुरवे नमः' का क्या अर्थ होता है ?

साधु ने कहा अरे! इसमें क्या बात है। इसका अर्थ है कि खीर मिले तो गुरु जी को प्रणाम कर लो। 'तस्मै कस्मै न रोचते।' 'तस्मै' किसको अच्छी नहीं लगती।

तो भैय्या, सन्तों का परिचय भी अनवगीत होता है, निन्दित नहीं होता।

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होय न कारज हानी।।

साधु से कभी कार्य की हानि नहीं होती! 'साधु ते होय न कारज हानी' यह सूक्ति है। इसलिये, नारद ने जयन्त को विकल देखा-

नारद देखा बिकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित सन्ता।।

सन्त कोमल चित्त होता ही है। वो सन्त कैसा जिसका चित्त कोमल नहीं हुआ।

जब विकलांग बच्चों को मैं देखता हूँ तो मुझे रुलाई आ जाती है। मैं तो कहता हूँ सारे दुःख मुझे दे दे भगवान। मैंने अपने 'अरुन्धती महाकाव्य' में लिखा है-

शम्भु बनकर गरल मैं तो पी लूँ,
लोग जो मृत्यु से त्राण पाएँ।

मैं तो विष पीने को तैयार हूँ कोई मृत्यु से त्राण पा जाए तो कितनी अच्छी बात है! सन्त का चित्त तो कोमल होता है। जयन्त को देखा-

नारद देखा विकल जयन्ता। लागि दया कोमलचित सन्ता।।
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही।।

सन्त का यही लक्षण है जो जीव को राम जी के पास भेज दे। यहाँ कहाँ बैठा है, राम जी के पास चला जा!

जयन्त ने कहा कि राम जी के पास जाऊँगा तो मुझे मारेंगे।

नारद जी ने कहा-नहीं, नहीं। राम जी का ही बाण है, राम जी के पास जाने में क्यों मारेगा ?

जयन्त ने कहा कि जाने में बहुत डर लग रहा है!

नारद जी ने कहा कि डर क्यों लग रहा है ? प्रभु के पास जाने में डर लगना चाहिये ?

जयन्त ने कहा कि मेरी गलती भी बहुत बड़ी है। मैंने उनकी पत्नी के चरण में चोंच मारा है। मेरी नीचता की तो पराकाष्ठा हो गई है। कई प्रकार से नीचता की है मैने। जिनके चरणों में लोग मत्था टेकते हैं उन्हीं के चरणों का मैने खून पिया। इतना नीच हूँ मैं! मेरे समान कोई नीच होगा ?

गोस्वामी जी कह चुके हैं-

ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ।।

सीता जी के चरण कमल साधारण नहीं हैं। कालिदास तो कहते हैं कि सीताजी के चरणकमल की तो कोई तुलना ही नहीं है। राम जी के चरणों की तुलना तुम कदाचित् किसी से कर भी लो पर सीता जी के चरण की तुलना किसी से नहीं हो सकती। ये तो बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि सीताजी के चरण ने तो लंका के राजमुकुट को ठुकराया है और भरत जी के सिर की भी किसी से तुलना नहीं है जिसने अयोध्या

का राजमुकुट ठुकुराया। और दोनों बेजोड़-बेजोड़ एक दूसरे से मिले होंगे तो देखते ही बन रहा होगा!

लंकेश्वर प्रणति भंगदृढ़व्रतं तद,
वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्ति जटिलञ्च शिरोऽस्य साधो,
रन्योन्य पावनमभूदुभयं समेत्य।।

इन चरणों पर मैंने चोंच मारा है इन चरणों का मैंने खून पिया है नारद जी! मेरे पाप का प्रायश्चित नहीं होगा। जयन्त के इन वचनों को सुनकर नारद जी ने कहा कि ऐसा नहीं है।

नारद जी ने कहा कि जयन्त, यह बताओ कि तुमने राम जी का नाम सुना है?

जयन्त ने कहा कि मैंने सुना है कि ये कृपासिन्धु हैं।

नारद जी ने फिर समझाया कि सिन्धु की कोई थाह होती है क्या? नहीं होती तो प्रभु श्रीराम तो कृपा के सिन्धु हैं और इनकी कृपा की तो कोई थाह ही नहीं है। ये तो इतनी कृपा करेंगे कि इनके सिन्धु में तुम्हारी गल्ती डूब जाएगी!

जयन्त ने कहा कि क्यों?

नारद जी ने कहा कि हाँ जयन्त, मैं भी तो भुक्तभोगी हूँ। अरे! तुमने तो उनकी पत्नी के चरण में ही चोंच मारी और मैंने तो उन्हींका रूप लेकर, उन्हींकी पत्नी से विवाह करना चाहा। अरे, माया तो भगवान की पत्नी हैं और मैंने तो उनकी पत्नी से ही विवाह की बात की-

आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही।।

हे प्रभु, आप मुझे अपना रूप दे दीजिये!

भगवान ने कहा कि दादा का रूप लेकर क्या करोगे?

दादा तो देता ही रहता है। दादा माने जो दे ले। जो देता है उसे कहते हैं 'दादा' और जो दूसरों से ले ले उसको कहते हैं 'लाला'। हमारे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बनियों को 'लाला' कहते हैं। लाला माने ले आ, ले आ।

नारद जी ने कहा कि यदि आप अपना रूप नहीं देंगे तो फिर मैं उसको नहीं पाऊँगा।

भगवान ने विनोद किया किसको नहीं पाओगे?

नारद जी ने कहा मेरा ब्याह होने जा रहा है तो नाम कैसे बताऊँ ?

मनु के अनुसार पत्नी का नाम नहीं लेना चाहिये ये तो आजकल लोग पत्नी का नाम लेने लगे हैं। आजकल तो कहते हैं कि नाम न लेने से प्रीति कम हो जाती है। अब तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि यदि तुम, आप कहोगी तो प्रीति कम हो जाएगी, 'तू' कहाकर। हमारे वाराणसी में 'तू तू' कुत्तों को कहते है। धूमकेतु ! बड़े प्रीति के घोड़े बने बैठे हैं।

मैं ये निवेदन कर रहा था कि नारद जी ने कहा कि 'ओही' उसको नहीं पाउँगा।

भगवान ने कहा कि भवानी खाएँ तुम्हें! अभी ब्याह हुआ नहीं और तुमने पत्नी भी उसे बना लिया बच्चू, यह विवाह निरस्त यदि नहीं कर दिया तो मेरा नाम बदल देना।

तो भगवान नारद ने जयन्त को समझाया कि मैने तो इतना बड़ा पाप किया, फिर भी भगवान ने मुझे क्षमा कर दिया। तुम जब भगवान के पास जाना तो राम जी जब कुछ कहें तो उनसे तुम एक बड़ा सुन्दर परिचय बताना कि मैं आपका साला हूँ।

साला शब्द सुनते ही जरा मुँह फैल जाता है। इतना मधुर सम्बन्धी कोई हो ही नहीं सकता।

जयन्त ने कहा कि 'साला' कैसे कहूँगा ?

नारद जी ने कहा कि अरे जयन्त, अब तुम सम्बन्ध बदल दो! दशरथ जी के सम्बन्धों के अनुसार तो तुमने वास्तव में बहुत पाप किया है क्योंकि दशरथ जी तुम्हारे चाचा हुए और उनके पुत्र होने से राम जी तुम्हारे छोटे चचेरे भ्राता हो गए। न्यायतः सीताजी तुम्हारी अनुज वधू लगीं और अनुज-वधू को छूना भी हमारे यहाँ निषिद्ध माना गया है। हमारे शास्त्रों के अनुसार छोटे भाई की बहू का स्पर्श नहीं किया जाता। तो जिसको स्पर्श नहीं किया जाता उसके चरण में तुमने चोंच मारी, तो नीचता की तो सीमा है ही। इसलिये अब उचित यही है कि उन्हें अनुज वधू मत बना। अब उनको बहन मान ले।

जयन्त ने कहा कि बहन कैसे मान लूँ ? ये तो गड़बड़ हो जाएगा।

नारद जी ने कहा कि गड़बड़ कुछ नहीं होगा। तुम ये कह देना कि मैं आपका साला हूँ तो राम जी कहेंगे कि तुम मेरी पत्नी के भाई कैसे हुए ? तो ये कह देना कि आपकी पत्नी हैं नारद जी की शिष्या और मैं भी नारद जी का चेला हूँ। इसलिये सीताजी मेरी गुरुबहन हुईं। तो जब सीताजी मेरी बहन हुईं तो उस दृष्टि से मैं आपका

साला हो गया, आप मुझे क्षमा कर दीजिये। ज्यों ही तुम यह कहोगे कि मैं नारद जी का शिष्य हूँ त्यों ही जनकनन्दिनी तुम्हें छुड़ा लेंगी। देखिये, रामावतार और कृष्णावतार दोनों की आप जब समीक्षा करेंगे तो ये देखेंगे कि सीता जी को भाई पर बहुत प्रेम है। प्रायशः प्रत्येक भारतीय नारी को अपने भाई पर प्रेम होता ही है, इसमें कोई दो मत नहीं होना चाहिये। बहुत प्रेम होता है और भाई की प्रतिष्ठा बचाने के लिये भारतीय नारी कुछ भी कर लेती है। हमारे यहाँ एक कहावत है कि एक महिला का पीहर बहुत साधारण था। उसके पास कुछ भी नहीं था। पीहर से जब बहू लौटती है तो कुछ न कुछ देना पड़ता है। उसके भाई की खाने पीने की भी स्थिति नहीं थी तो देता क्या ? और इधर ननदें तो पूछतीं कि भाभी तुम पीहर से क्या लाई हो ? जाते समय ही उस महिला ने अपने पति से कह दिया था कि मुझे तुम कम से कम बीस साड़ी लाकर दो और उन्हें मैं आज रात को ही अपनी पेटी में रख लूँगी और जब वहाँ से लौटकर आऊँगी तो कह दूँगी कि मेरे भाई ने दिया है। उसका पति साड़ियाँ ले आया और वो उन साड़ियों को पेटी में धीरे से रखने लगी पर उसकी ननद बड़ी चालाक थी उसने देख लिया पर उस समय कुछ बोली नहीं। जब वो अपने पीहर से लौटी तो उसने बड़े गर्व से दिखाना प्रारम्भ किया कि ये साड़ी मेरे भैय्या ने दिया, ये साड़ी मेरे भैय्या ने दिया! ननद बोली कि अच्छा भाभी, मैंने देख लिया था 'सैयाँ का दीहल भैय्या का नाम' दिया सैयाँ ने नाम हुआ भैय्या का।

वास्तव में भारतीय नारी की दृष्टि में भाई का अपना बहुत महत्व है और तुम जब सीताजी के सामने कहोगे कि नारद जी मेरे गुरुदेव हैं और सीता जी मेरी गुरुबहन हैं, इतना जब तुम कह दोगे तो राम जी का साहस नहीं कि तुम पर वो कुछ कर सकें और उनका बाण कुछ कर सके। इसलिये–

पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही।।

आप कृष्णावतार का प्रकरण देखिये! रुक्मिणी के विवाह में यदि खलनायक कोई बना तो रुक्मिणी का भाई रुक्मी ही था। रुक्मी बिल्कुल नहीं चाहता था कि रुक्मिणी का विवाह कृष्णचन्द्र से हो। वो तो शिशुपाल से रुक्मिणी जी का विवाह करना चाहता था और अन्त में नारद जी की भूमिका बनीं। नारद जी रुक्मिणी जी का पत्र लेकर द्वारिकाधीश के पास आए। रुक्मिणी जी ने पूरी बात पत्र में लिख दी। तब रुक्मिणी जी से विवाह के लिये द्वारिकाधीश स्वयं रथ लेकर आए। रुक्मिणी जी ने कह दिया–

श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतिनापतिभिः परीतः।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्।।

श्रीमद्भा० १०/५२/४१

स्वयं रुक्मिणी जी ने पत्र में यही लिखा कि आप कल ही सेना के सहित मेरे विदर्भ में आ जाइये और जैसे आपने समुद्र मन्थन करके मुझे स्वीकारा था, उसी प्रकार 'निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं' शिशुपाल और जरासन्ध की सेनारूप समुद्र का मन्थन करके मुझे राक्षस विधि से 'राक्षसेन विधिना' ले जाइये। राक्षस विधि से क्यों कहा ? वहाँ 'राक्षसेन' भगवान का सम्बोधन है, हे राक्षसेन, 'राक्षसानां ईं लक्ष्मीं नाशयति इति राक्षसेनः तत् सम्बुद्धौ हे राक्षसेन, राक्षसों की लक्ष्मी को नष्ट करने वाले प्रभु आप विधिवत मेरा विवाह करके ले जाइये और वही हुआ जो रुक्मिणी जी ने चाहा और अन्त में भगवान रुक्मिणी जी का हरण करके लेकर चले। उधर रुक्मिणी का भाई रुक्मी आया शिशुपाल से बोला, जीजा क्या हालचाल है ? शिशुपाल ने कहा मैं तेरा जीजा कैसे ? तेरी जीजी को तो कृष्ण ले गए! अब रुक्मी को क्रोध आ गया-

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम्।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः।।

श्रीमद्भा० १०/५४/२०

जब तक कृष्ण को मार नहीं डालूँगा और रुक्मिणी को नहीं लौटा लाउँगा मैं कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं करूँगा। रुक्मी ने आक्रमण किया और कहा कि मेरी बहन को चुराकर कहाँ लिये जा रहे हो-

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः।

भगवान कृष्ण का युद्ध प्रारम्भ हुआ और रुक्मिणी जी कह दिया कि आप इससे युद्ध कीजिये, आज मैं रथ चलाउँगी। अन्ततोगत्वा भगवान ने उसकी सारी सेना समाप्त कर डाली, उसके सभी शस्त्र काट डाले, उसके छत्र, मुकुट सब काट डाले, सारथी और घोड़ों को मार डाला और रथ को तोड़ डाला। विरथ होकर रुक्मी नीचे आ गया। तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी तलवार लेकर उसे मारने के लिये दौड़े और तभी रुक्मिणी जी का भाई का मोह जग गया और 'गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत' दौड़कर रुक्मिणी जी ने कृष्णचन्द्र जी का चरण पकड़ लिया कि मेरे भैय्या को मत

मारिये! देखिये, कृष्णावतार में भैय्या को मरने से बचाया, वहाँ भी चरण पकड़ा और यहाँ भी राघव जी के चरण पकड़ेंगी। भगवान आनन्दकन्द प्रभु यह तय कर चुके हैं कि जयन्त का वध होना चाहिये-

कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।

किन्तु-

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई।।

दौड़कर के जयन्त ने चरण पकड़ लिये। गिर पड़ा जयन्त। गिरा, पड़ा नहीं जयन्त अर्थात् सिर के बल गिरा मुँह के बल नहीं गिरा। भगवान के सामने उसका चरण आ गया। भगवती जी ने कहा अरे, जिससे जनमते नहीं बनता उससे मरते भी नहीं बनता! पद्मपुराण में यह श्लोक आया है-

तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी।
त्राहि त्राहीतिभर्तारं जगाद् करुणं सती।।

भगवती जी ने जयन्त के सिर को राम जी के चरणों से जोड़ दिया और कह दिया कि अब इसकी मृत्यु बिल्कुल नहीं होगी।

राम जी ने कहा कि क्यों नहीं होगी ?

सीताजी ने कहा कि क्यों होगी ? आपने अवतार क्यों लिया है पहले यह बताइये! अयोध्या में कचौड़ी खाने के लिये अवतार लिया है क्या ? अवतार का रहस्य तो बतलाइये!

राम जी ने कहा-

विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार।।

मैने 'विप्र' के लिये अवतार लिया है।

१. सीता जी ने कहा कि ब्राह्मण ने ही इसे भेजा है। नारद जी ब्राह्मण हैं या नहीं। अब आप बताइये कि क्या आप इसको मारेंगे ?

२. नारद जी का स्वभाव भी 'धेनु' के समान है।

नारद देखा बिकल जयन्ता। लागि दया कोमलचित सन्ता।।

३. ये 'सुर' है या नहीं ! असुर नहीं है यह महाराज! है तो यह 'सुर' ही। क्योंकि-

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। शठ चाहत रघुपति बल देखा।।

सुरपति का सुत है तो क्या सुर नहीं हुआ ? तो ये आप क्या 'सुर' का हित कर रहे हैं ?

'सन्त' का हित आपको करना है और इसको भेजा है नारद जी ने और नारद जी सन्त हैं। 'लागि दया कोमलचित सन्ता।'

और सुनिये राघव, आप निज इच्छा का अर्थ जानते हैं ? निज इच्छा, अपनी इच्छा, बड़े आए अपनी इच्छा वाले! अरे 'निज इच्छा' माने निजों की इच्छा अर्थात् अपनों की इच्छा। तो मैं क्या आपकी अपनी नहीं हूँ। ये मेरी इच्छा है। मेरी इच्छा से इस तनु का निर्माण हुआ है। मैं नहीं चाहती कि इस पर बाण चलाया जाए! नमो राघवाय!

कितना भी कोई क्रोध कर ले पर गृह मन्त्रालय के सामने तो सब चुप हो जाते हैं। बाहर कितना भी गरज लें पर यहाँ सब चुप! ये प्रसंग ही ऐसा है, क्या करेंगे आप।

राम जी ने तो ब्रह्मास्त्र छोड़ा था। सीता जी कहती हैं कि आप एक बात बताइये कि आप इसको क्यों मारना चाहते हैं ? इसका आधार क्या है ?

राम जी ने कहा कि यह पापी है।

सीता जी ने कहा कि ये कैसे पापी हैं ? किसी भी प्रकार इसमें पाप नहीं घटेंगे। पहली बात इसको नारद ने देखा है 'नारद देखा', तो-

शरदातप निशि शशि अपहरई। सन्त दरस जिमि पातक टरई।।

और यहाँ 'लागि दया कोमलचित सन्ता।'

अब आप बताइये कि नारद जी आपकी दृष्टि में सन्त हैं या नहीं।

राम जी ने कहा कि हाँ, नारद जी तो सन्त हैं।

तब भगवती जी ने कहा कि जब सन्त हैं और नारद जी ने देखा तो क्या इसका पाप नहीं नष्ट हो गया ? आप निष्पाप को मारेंगे ? वाह ब्रह्मास्त्र! यही आपके गुरु बाबा ने सिखाया है कि निष्पाप पर बाण चलाओ!

हमारी बहूरानी ने राघव की ऐसी की तैसी कर डाली। हमारे राघव को जब बहूरानी बोर करती हैं तो मुझे बहुत आनन्द आता है।

लक्ष्मण भैय्या, तुम भी देखते जाओ अपने भैय्या को! कितने बढ़िया धनुर्धर हैं! क्या बात है! अब तक पापियों पर बाण चलते थे अब तो इनके बाण, निष्पाप पर भी चलने लगे!

सीता जी ने कहा, राघव, दूसरा पक्ष अब यह बताइये कि क्या सूर्यनारायण के समक्ष भी रात रह जाती है ? नहीं। तो फिर ये आपके पास आया या नहीं आया ?

राघव ने कहा आया। सीता जी ने कहा कि जो आपके पास चला आया तो आपके पास आने पर भी इसके पाप नष्ट नहीं होंगे ? यदि नष्ट नहीं होंगे तो हे राघव, सुन्दरकाण्ड में फिर आपने विभीषण से यदि यह बात कही तो ठीक नहीं होगा क्योंकि मैं तो भविष्यत् जानती हूँ।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

विषय तो आप लोग समझ रहे हैं, ऐसा नहीं कि कोई न समझ रहा हो। आप बड़े आए यह कहने वाले कि मेरे सामने जो जीव आ जाए उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। तो हे ठाकुर साहब, ये आपके सामने आया या नहीं ? बाण चलाने चले हैं!

आज तो हमारी बहूरानी बड़े मूड में है। कहती हैं कि जब ये आपके सामने आ गया तो क्या इसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट नहीं हो गए ? किसी भी मूल्य पर इसका वध अनुपपन्न है कि नहीं ?

चौथी बात, आप एक बात और सुन्दरकाण्ड में कहने वाले हैं कि-

जौ पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई।।

यदि वह दुष्ट-हृदय होता तो मेरे सामने नहीं आता। तो जयन्त तो आपके सामने आ गया है, तो ये दुष्टहृदय तो है ही नहीं। क्यों मारेंगे इसको आप ? ठाकुर जी, जरा समझकर रहिये!

आज किसी व्युत्पन्न व्यक्तित्व से पाला पड़ा है! अब यह तो निश्चित हो चुका है कि ये पापी नहीं है, दुष्ट नहीं है और एक बात मैं और कहना चाहूँगी राघव, कि क्या आपका चरण पकड़ने पर भी मरण का भय रह जाता है ? यदि रह जाता हो तो मैं यमराज को लिखकर दे दूँ तो हमारी आपकी ये किलकिल समाप्त हो ! यदि आपका चरण पकड़ने पर मरण-भय नहीं रह जाता तो इसने तो आपका चरण पकड़ा है तो फिर इसे आप कैसे मार सकेंगे।

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई।।

राघव, मैं साधारण महिला नहीं हूँ और न ऐसे तैसे आपके पास आई हूँ। स्वयंवर में आप धनुष तोड़कर मुझको लाए हैं। गलत करेंगे तो मैं अवश्य विरोध

करूँगी और आपको प्रतिरोध नहीं करने दूँगी। फिर मैं लिखित दे रही हूँ धर्मशास्त्रियों को कि इस पंक्ति को मिटा दो-

अकालमृत्युहरणं सर्वबाधा विनाशनम्।

अरे, जिसके चरण का जल भी अकालमृत्यु को हर लेता है, उसी के चरण को जब जयन्त ने पकड़ा तो उसकी मृत्यु कैसे हो जाएगी? इसीलिये तो अम्बरीष ने भगवान का चरणोदक लिया था। यद्यपि पुरोहित जानता था कि दुर्वासा इन्हें जला सकते हैं पर जब दुर्वासा जी को काफी देर हो गई तो कहा कि पिला दो भगवान का चरणोदक, तब दुर्वासा क्या दुर्वासा के बाप भी इन्हें नहीं मार सकते। जब चरणोदक की महिमा है कि-

अकालमृत्युहरणं सर्वबाधाविनाशनम्।
श्रीराम पादोदकं पीत्वा श्रीरामभक्तिः प्रकल्पते।।

उन्हीं चरणों को इसने भयभीत होकर पकड़ा है, यहाँ मृत्यु नहीं आ सकती-

नमाम ते देवपदारविन्दं
प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु
संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति।।

वे भगवान के चरण, जो

ध्येयं सदा परिभवध्नमभीष्ट दोहं
तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।।

श्रीमद्भा० ११/५/३३

इसलिये-

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयालु रघुराई।।

सीताजी ने कहा कि प्रभु, जयन्त बहुत चतुर हो गया है। इसने पाप किया है। मेरे चरण में चोंच मारकर निश्चित रूप से इसने पाप किया है परन्तु नारद जी के दर्शन से इसके पाप नष्ट हो गए और नारद जी ने इसको भेजा है। जयन्त ने सोचा कि मैं अपने को कैसे बचाऊँगा तब नारद जी ने कहा कि बस तुम जाकर उनके चरण पकड़

लेना। चरण पकड़ने पर मरण नहीं आता। जो भगवान के चरण पकड़ लेता है, उसके पास मरण नहीं आ सकता। मरण से बचने के लिये गुरु गोविन्द के चरण पकड़ ले। सब चकाचक हो जाएगा!

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु,
सब जग माहिं अँधेरो। भरोसो.....
साधन और नाहिं या कलि में
नाहिन और निबेरो।
सूर कहा केहि द्विविध आँधरो
बिना मोल को चेरो।
भरोसो.....

सीता जी ने कहा कि राघव, एक बात और है कि आप इसको आज मार भी तो नहीं सकते, इसलिये प्रतिष्ठा बचाकर रख लीजिये, इसको मारिये मत! इससे आपको दया का प्रमाण पत्र भी मिल जाएगा। आप इसको मारना भी चाहेंगे तो इसको मार नहीं पाएँगे क्योंकि इसने आपके चरण पकड़ लिये हैं और आपके चरण में अमृत का कुण्ड चिन्ह बना हुआ है और जयन्त ने अमृत तो उससे ले लिया है, तो अब तो आप उसे मार ही नहीं सकते हैं। हे भगवान! चुपचाप रहिये! सस्ते में यह विरुद मिल रहा है, इसको ले लीजिये! ठाकुर साहब बहुत ठकुराई मत दिखलाइये!

राघव जी यह सब बड़े प्रेम से सुन रहे हैं और बहूरानी पक्ष पर पक्ष दिये जा रही हैं। क्या कहना! वैदुष्य तो ईश्वर ने हमारी बहूरानी को ही दिया है। ऐसा वैदुष्य भला किसको मिला होगा!

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताःसकला जगत्सु।

सारी विद्याएँ उन्हीं की देन हैं।

सीता जी ने फिर कहा कि राघव, आप मेरी माँ को जानते हैं। क्या नाम है उनका?

राम जी ने कहा 'पृथिवी।'

पर्यायवाची बताइये!

राम जी ने कहा 'क्षमा'।

सीता जी ने कहा कि जब मैं क्षमा की बेटी हूँ तो मुझे तो क्षमा करना ही पड़ेगा। मैं क्षमा करूँगी और मैं माँ भी तो हूँ, माँ तो क्षमा ही करती है। जब बालक गर्भ में रहता है, तभी से तो मारना प्रारम्भ कर देता है। पाँचवे महीने से मारना प्रारम्भ कर देता है, क्या माँ उसे फेंक देती है ? और जयन्त ने मारा तो मुझे है न कि आपको मारा है। मैंने गलती की थी, यदि मैं उसे कुछ खिला देती तो मुझे नहीं मारता। मैंने उसे कुछ नहीं खिलाया तो उसने काट लिया। उसने सोचा होगा कि ये चरण में कुछ लगा होगा बढ़िया-बढ़िया, चित्रकूट की कोई वस्तु लगी होगी लाल-लाल फल सा लगा होगा उसने खाना चाहा होगा फल, पर कट गया चरण। हमने तो इसको क्षमा कर दिया। इसलिये अब आप भी इसको बिल्कुल क्षमा कीजिये।

सुनि कृपालु अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी।।

हे भवानी, उन्होंने एक नयन कर तजा। एक आँख हरकर उसको काना बना ही दिया तो कौन सा बड़ा उपकार कर दिया राम जी ने ? शास्त्रों का मानना है कि दृष्टिहीन अशुभ नहीं होता, अशुभ होता है एक नेत्र का होना।

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिशेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि।।

यदि उसको एक आँख का भगवान राम ने बना ही दिया तो कौन सी बड़ी बात कर दी! तब उन्होंने सीताजी की क्या बात मानी। इसलिये लगता है हम लोग यहाँ ठीक अर्थ नहीं कर रहे हैं। यहाँ 'एकनयन' में 'बहुब्रीहि' है। भगवान राम ने कहा कि अब तो बाण मेरा व्यर्थ नहीं जाएगा। ऐसा करते हैं, व्यक्ति आँखों से दो वस्तुएँ देख सकता है, वो संसार को देखता है और भगवान को देखता है। तो जो संसार का दर्शन है, उसी को समाप्त कर देता हूँ। 'एक नयन करि तजा भवानी', 'एकः रामचन्द्रः नयने यस्य' अब इसकी आँखों में मैं ही रहा करूँगा।

सुनि कृपालु अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी।।

रावण के वध के पश्चात् सीता जी से मन्दोदरी जी मिलीं! मन्दोदरी ने कहा कि सीते, मैं आपसे कुछ प्रश्न करना चाहती हूँ, आप आज्ञा करें तो मैं प्रश्न करूँ!

सीता जी ने कहा बिल्कुल कीजिये और मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दूँगी।

मन्दोदरी ने कहा कि मुझे यह प्रश्न करना है कि शास्त्र तो यह कहते हैं कि जो राम जी के गुणगान गाता है वो बिल्कुल सौभाग्य से सम्पन्न हो जाता है और मैंने

निरन्तर राम जी का गुण गाया। तीन-तीन बार मैंने रावण को समझाया और राम जी के ही गुण गाए। तो इतने गुणों को गाने के पश्चात् भी मैं विधवा क्यों बनी ? मैं पुत्रहीन बनी। मैं दुर्भगा बनी, ऐसा क्यों हुआ ?

सीता जी ने कहा कि बात ऐसी है कि आप गुण गातीं तो आप निश्चित सौभाग्यवती रहतीं पर आपने गुण नहीं गाया। सँभाला नहीं अपने आपको। एक बार आपने मेरे पति श्रीराम का बहुत बड़ा अपमान किया। आप जब रावण को समझा रही थीं तो आपने जयन्त के प्रकरण को ठीक से न समझकर यह कहा-

सुरपति सुत जानइ बल थोरा! राखा जियत आँखि गहि फोरा।।

आपने यही तो कहा था कि जयन्त भगवान राम का थोड़ा बल जानता है, इसलिये उसे जीवित रख दिया और उसकी आँख फोड़ डाली जबकि मेरे प्रभु ने जयन्त की आँख फोड़ी नहीं, आपने गलत व्याख्या की। इसीका दण्ड मिला है कि आप विधवा बन गईं।

इसलिये जो कुछ कहा जाए, भगवान के चरित्र को सँभालकर कहा जाए-

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ येहि ताल चतुर रखवारे।।

इसीलिये, सीता जी के इस व्यक्तित्व को देखते हुए कि ये जब जयन्त को छुड़वा सकती हैं तो आगे चलकर राक्षसों को कैसे मारने देंगी, भगवान राम ने सीता जी को अग्नि में रहने के लिये कहा। भगवान राम ने प्रतिज्ञा की 'निशिचर हीन करहुँ तो वाल्मीकि रामायण में सीताजी ने यह कह दिया कि किस अपराध से आप इनको मारेंगे ? मैं निरपराध राक्षसों को नहीं मारने दूँगी। भगवान ने कहा कि ठीक है जब आप पर आक्रमण होगा, तब मारूँगा। जब शूर्पणखा ने सीता जी पर ही आक्रमण किया तो राम जी ने कहा कि अच्छा, अब इसके नाक, कान काटो। अब तो मारने का अवसर मिल गया और जब खर दूषण का वध होने लगा तो 'लै जानकिहिं जाहु गिरि कन्दर' राम जी ने कहा कि ये वध नहीं देख सकतीं, इसलिये लक्ष्मण जल्दी अपनी भाभी को पर्वत की गुफा में ले जाओ। तो भगवान राम ने कहा कि आपका इतना कोमल स्वभाव है और आप तो कृपा-शक्ति हैं। आप कभी राक्षसों का वध नहीं देख सकेंगी। इसलिये राक्षस-विनाश पर्यन्त आपका रहना मेरे यहाँ उचित नहीं होगा। भगवान राम कहते हैं कि राक्षसों का वध करने के लिये मुझको रुद्र बनना पड़ेगा और आप हैं महालक्ष्मी। तो महालक्ष्मी रुद्र के साथ थोड़े ही रहती हैं। रुद्र के साथ तो महाकाली रहती है। इसलिये-

कालराति निशिचर कुल केरी। तेहिं सीता पर प्रीति घनेरी।।

इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

स्थिति यह है कि ये तो खर-दूषण का वध भी नहीं देख सकतीं क्योंकि ये तो कृपा-शक्ति हैं। 'ब्रह्म' जीव बिच माया जैसी' और इस समय कृपा शक्ति की आवश्यकता नहीं, क्रोधशक्ति की आवश्यकता है। ये कृपा शक्ति हैं और काली क्रोधशक्ति हैं अतः 'तुम पावक महँ करहु निवासा।'

शेष चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र की जय।।

।।पवनसुत हनुमान की जय।।

पञ्चम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।

❖❖❖❖

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ षष्ठ वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १७-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।

श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान आनन्द कन्द प्रभु श्रीरामचन्द्र जी अब सीता जी से कह रहे हैं।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

यहाँ तीन-तीन विशेषण बहुत साभिप्राय उन्होंने दिये हैं। प्रभु कहना यह चाहते हैं कि आप प्रिया हैं, आप व्रत रुचिर हैं, आप सुशीला हैं और अब मैं ललित नरलीला करूँगा। नरलीला में मुझे तीन दुर्दान्त लोगों का वध करना होगा-

१. बालि का
२. कुम्भकर्ण का, और
३. रावण का।

'प्रिया' होने से आप 'बालि वध' की अनुमति देंगी? 'व्रत-रुचिर' होने से आप 'कुम्भकर्ण वध' की अनुमति देंगी? और 'सुशील' होने से आप 'रावण-वध' की भी अनुमति देंगी? इसलिये अब आप अग्नि में प्रवेश करिये क्योंकि आप 'कृपा शक्ति' हैं।

उभय बीच श्री सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।

श्रीराम और श्रीलक्ष्मण के बीच सीता जी कितनी सुन्दर लग रही हैं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया होती है। कौन सी माया ? क्या अविद्या माया ? ब्रह्म और जीव के मध्य में रह सकेगी ? अरे, जब अविद्या माया आती है तो ब्रह्म दिखाई ही नहीं पड़ता-

मायाच्छन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म।

मायाच्छन्न ब्रह्म तो दिखाई ही नहीं देता और यहाँ कहते हैं कि 'उभय बीच श्री सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी' इसलिये निश्चित रूप से यहाँ माया का वह

अर्थ नहीं है 'माया कृपायां लीलायां मूलाज्ञाने छले तथा।' माया के चार अर्थ होंगे- कृपा, लीला, मूलाज्ञान और छल। यहाँ पहला अर्थ ही लिया जाएगा 'ब्रह्म जीव बिच माया जैसी' जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में भगवान की कृपा विराजमान रहती है। पाराशर भट्टार्य ने तो यहाँ तक कह डाला कि सीताजी की इतनी बड़ी कृपा है कि उसने तो भगवान राम की कृपा को भी पीछे छोड़ दिया-

मातरमैथिलिराक्षसीस्त्वयि, तदैवार्द्रापराधास्त्वया।
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।।
काकं चैव विभीषणं शरणमित्युक्तक्षमौ रक्षतः।
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु शान्तिस्तवाकस्मिति।।

हे मैथिली माँ, 'त्वयि तदैव' आर्द्रापराधाः' आपके सम्बन्ध में ताजा ताजा अपराध करने वाली, ऐसी राक्षसियों को 'पवनात्मजातरक्षन्त्या' हनुमान जी से रक्षा करती हुई, बचाती हुई आपके द्वारा वो 'त्वया रामस्य गोष्ठी लघुतरा कृता' आपके द्वारा राम जी की गोष्ठी बिल्कुल छोटी कर दी गई। क्योंकि 'काकं चैव विभीषणं' जयन्त और विभीषण को राम जी ने तब शरण दी जब वो शरण बोले। अर्थात् जब वो शरण में आकर चिल्लाए कि मुझे बचा लीजिये, तब राम जी ने बचाया और राक्षसियाँ तो आपकी शरण में नहीं आईं, वो निरन्तर आपको सताती रहीं, फिर भी आपने हनुमान जी से उनकी रक्षा कर ली। इतनी बड़ी कृपा किसकी होगी!

रावण वध हो चुका ! श्रीराम जी ने अञ्जनानन्दवर्धन प्रभु हनुमान जी महाराज को सीता जी के पास भेजा कि जाओ अपनी माँ को रावण-वध का समाचार सुनाओ। हनुमान जी ने समाचार सुनाया तो सीताजी ने कहा कि मैं तुमको क्या दूँ ?

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि तिहुँ लोक महँ कपि किमपि नहिं बानी समा।।

'किमपि' क्या संस्कृत प्रयोग है ! हनुमान जी ने कहा कि यदि आप देना चाहती हैं तो जो माँगूँ वो दे दीजिये।

सीताजी ने कहा बोलो !

हनुमान जी ने कहा कि राक्षसियों ने आपको बहुत सताया है और मैंने अपनी पहली यात्रा में देखा कि कोई कह रही थी कि 'इसे मसल दूँ' कोई कह रही थी कि 'इसे खा जाऊँ'।

भवन गयउ दशकन्धर इहाँ निशाचरि वृन्द।
सीतहिं त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मन्द।

निशाचरियाँ सीता जी को त्रास दिखा रही थीं और सीता जी ने कह दिया-

न मानुषी राक्षसस्य पत्नी भवितुमर्हति।
कामं खादथ मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः।।

कभी मनु संस्कृति में ढली हुई भारतीय नारी राक्षस की पत्नी नहीं बन सकती! मुझे तुम सब लोग खा जाओ पर मैं अपने पतिव्रत को नहीं तोडूँगी। विदेश में यदि अपने शील की रक्षा करना सीखा है तो वो हैं हमारी जनकनन्दिनी जी। वो विदेश में हैं। वहाँ भाषा की भी समस्या है। रावण तमिलभाषी है, संस्कृत कभी-कभी बोलता है। चार सौ कोस का विशाल समुद्र व्यवधान है, वो स्थान आज आस्ट्रेलिया में है, ये श्रीलंका नहीं। श्रीलंका तो 'सिंहलद्वीप' है। आस्ट्रेलिया और भारत की संस्कृति में कितना अन्तर है, आप अनुमान लगाकर देखिये, कल्पना कीजिये। सीताजी यहाँ तक कह रही हैं कि-

चन्द्रहास हरु मम परितापा। रघुपति बिरह अनल सन्तापा।।
शीतल निशि तव असि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।

सीताजी ने चन्द्रहास से कह दिया कि मेरे परिताप को दूर कर दो! 'शीतल निशि तव असि बर धारा' अरे, तुम्हारे तलवार की जो धारा है वो शीतल चन्द्रमा की रात्रि के समान है। 'शीतल निशित बहसि बर धारा' यह गलत है। सही पंक्ति है- 'शीतल निशि तव असि बर धारा। इतनी यातना के पश्चात् हनुमान जी ने कहा कि आप आज्ञा करें तो इन राक्षसियों को मसल डालूँ! उस समय वाल्मीकि रामायण में सीता जी ने कहा-

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम्।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।।

हमारी बहूरानी जी, पारमार्थिक दृष्टि से इतना उदार हैं कि वो कहती हैं नहीं, हनुमान जी, चाहे ये राक्षसियाँ पापिनी हों, चाहे अशुभ हों, चाहे ये वध के योग्य हों फिर भी तुम्हारे द्वारा इन पर करुणा करनी ही होगी। एक भी राक्षसी का बाल-बाँका हुआ तो समझ लेना फिर कि तुम्हारी भली नहीं क्योंकि 'न कश्चित् न अपराध्यति' ऐसा संसार में कोई भी नहीं है जो गलती न करता हो! इतनी बड़ी करुणा जिसने राक्षसियों को बचा लिया और उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। मुझे भगवान ने यह

अवसर दिया है। इन्होंने मुझे सताया, ये मेरे ही कर्म का फल रहा होगा। इनको कोई, कुछ भी दण्ड नहीं दे सकता। त्रिजटा ने जब सीता जी का चरित्र बताया कि अरे, पगली राक्षसियों, धूमकेतु-

सबहिं बोलाइ सुनाएसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना।।

जब पूरा स्वप्न बताया तब-

तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरननि परीं।।

तब त्रिजटा ने कहा-

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्।।

वा०रा० ५/२७/४६

ये तो प्रणाम से प्रसन्न हो जाएँगी। कुछ मत बोलो, केवल प्रणाम कर लो, तो ये आपको बचा लेंगी। इतना सुनते ही सीताजी मुस्कुराईं और थोड़ा सा सकुचाईं-

ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद् यदि तत् तथ्यं भवेयं शरणं हि वः।।

वा०रा० ५/२७/५४

प्रसन्न हो गईं और कहा हे राक्षसियों, यदि मेरे आर्य पुत्र जीत जाएँगे, तो मैं तुम्हारी रक्षा कर लूँगी।

हमको यही चिन्तन करना है-

सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी, फिकर हमें काहे की
जाके ससुर नृपति श्री दशरथ
सासु कौसल्या महतारी, फिकर हमे काहे की
सिया ... फिकर मोहे...
देवर लखन भरत रिपुसूदन
(जाके) स्वामी हैं राम धनुधारी फिकर हमें
सिया.... फिकर
ऋद्धि सिद्धि चरणन की दासी
हनुमत हैं प्रेम के भण्डारी, फिकर हमें

सिया... फिकर

तुलसिदास कलिजुग का करिहै

राखि लेहैं जनकदुलारी

सिया..... फिकर हमें

"बोलो जनकनन्दिनी जी की जय।"

जब हमारी मलकिन सिया स्वामिनी जी हों, जनकनन्दिनी जी हों, तो हम क्यों किसी बात की चिन्ता करेंगे ? इतनी अगाध करुणा है।

श्रीयुत श्रीनिवासाचार्य दाक्षिणात्य ने तो जब 'जानकी चरणचामर' की रचना की तो सीता तत्व की व्याख्या करते हुए कहा-

अंकोन्मुक्तमृगांक मण्डलगलत्पीयूषपानव्रतम्।
हित्वा यस्य रसं रसज्ञ तिलकाः स्वैरं धिया गृह्णते।
कौसल्या सुकृतेच्छु पाक सचिवः सर्वं सहास्वर्गवी।
पुण्यक्षीरविपाक एष भजते जीवस्य जीवातुताम्।।

सीता तत्व में इतना रस है कि 'अंकोन्मुक्त मृगांकमण्डलगलत्पीयूषपानव्रतम्' ऐसे-ऐसे योगी जन हैं, निष्कलंक चन्द्रमण्डल से पिघलता हुआ अमृत रस ही जिनको पीने को मिलता है और कुछ नहीं, इतनी बड़ी उनको सिद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं किन्तु ऐसे होने पर भी, सीतातत्व-रस में इतना सार है कि वो कहते हैं कि जब दोनों रस सामने होते हैं-एक तो चन्द्रमण्डल का अमृत-रस और सीता चरित्र का रस, तो उनसे जब पूछा जाता है कि इन दोनों रसों में से एक रस मिलेगा, या तो सीता कथा सुनो और या तो चन्द्रमण्डल का रस पियो तो योगीजन कहते हैं ब्रह्मा तुम्हारी ऐसी की तैसी। हम चन्द्रमण्डल का रस नहीं पियेंगे, हम तो सीता चरित्र सुनेंगे। अंकोन्मुक्तमृगांकमण्डलगलत्पीयूषपानव्रतम्', 'हित्वा' माने उसको छोड़कर 'यस्य रसं रसज्ञ तिलकाः स्वैरं धिया गृह्णते', इस रस को छोड़ देते हैं, उल्टी कर देते हैं। क्या! इतना सुन्दर है वह रस! क्या समझते हो तुम! कैसा है वह रस ? तो कहते हैं कि 'कौसल्या सुकृतेच्छुपाक सचिवः' जैसे शक्कर में खोआ मिल जाए तो आनन्द हो जाता है, उसी प्रकार कौसल्या जी का पुण्य ही ईख अर्थात् गन्ना है और उसका परिपाक रामरस है और उसको स्वादिष्ट बनाने के लिये 'सर्वं सहास्वर्गवी' पुण्यक्षीर विपाकः' पृथ्वी रूप कामधेनु के दूध का खोआ है सीता जी का यह रस और वह जब रामरस रूप शक्कर से मिला तो पेड़ा बन गया। वह 'जीवस्य जीवातुतां भजते'

महौषधि की भूमिका का अवलम्बन कर रहा है अर्थात् रामरस से मिला हुआ सीतारस ही जीव के जीवन की बहुत बड़ी औषधि है। इतना उत्कृष्ट रस है यह।

आज भगवान नरलीला करने के लिये जनकनन्दिनी जी से कह रहे हैं कि आप अग्नि में निवास करिये क्योंकि 'मैं कछु करब ललित नरलीला' मुझे नरलीला करनी है क्योंकि ललित नरलीला में मुझे क्रोध करना पड़ेगा। अब तक तो आप मेरे साथ महालक्ष्मी की भूमिका में हैं–

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य,
भिन्ना चतुर्धा व्यवहारकाले।
भवे भवानी पुरुषे च विष्णुः
क्रोधे च काली समरे च दुर्गा।।

परमेश्वर की एक ही शक्ति व्यवहार काल में चार भागों में विभक्त होती है, वही शंकर भगवान के यहाँ भवानी बनती है। पुरुषे माने विष्णु, वही विष्णु के समक्ष वैष्णवी बन जाती है, वही क्रोध में काली बनती है, वही समर में दुर्गा बनती है। भगवान कहते हैं कि अभी मुझे रुद्र बनना है और रुद्र की शक्ति काली होती है। अभी तक आप महालक्ष्मी हैं पर अब इस समय महालक्ष्मी की नहीं, काली की आवश्यकता है और काली माया की ही सीता हो सकती है, आप नहीं हो सकतीं।

कालराति निशिचर कुल केरी। तेहिं सीता पर प्रीति घनेरी।।

इसलिये–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

आप ये देखिये कि भगवान राम कितनी बार क्रोध कर रहे हैं। तीन विशेषण उन्होंने सीता जी को दिये, यह बात मैं बार-बार कह चुका हूँ–

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नरलीला।।

आप ध्यान रखिये कि इस नरलीला प्रकरण में भगवान राम कब क्रोध करेंगे ? अभी क्रुद्ध नहीं है कनक-मृग मारने चले तो कैसे चले हैं, मुस्कुराकर।

तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुरकाज सँवारन।।

प्रेम से पीछे तिरीछे प्रिया हि,
चितै चित दै चित लै चले चोरे।

प्रिया जी को निहारकर जब दौड़े कनक मृग मारने के लिये, तब क्रोध नहीं किया। बालि वध के प्रकरण में भी क्रोध नहीं किया था–

सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिशाला।।

परन्तु जब सुग्रीव ने समाचार नहीं लिया, तब लक्ष्मण को लगा कि भगवान क्रोध कर रहे हैं और कहा-

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं शर हतौं मूढ़ कहँ काली।।

परन्तु 'लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना' उनको भ्रम है, यहाँ भी राघव जी को क्रोध नहीं है। राघव जी ने तीन बार क्रोध किया है इसीलिये सीता जी को तीन विशेषण दे रहे हैं- प्रिया, व्रत रुचिर और सुशीला। युद्ध में तीन बार क्रोध करेंगे। कब कब ? तब कहा 'बोले राम सकोप तब' क्रोध आया अवश्य पर उसको समुद्र-मन्थन में भी स्वीकारा नहीं! क्रोध ने कहा मुझे स्वीकार लो तो भगवान ने कहा कि चुप, चुप! गड़बड़ हो जाएगी। क्रोध ने कहा कि क्यों नहीं मुझे स्वीकारेंगे ? तब भगवान ने कहा कि समुद्र मेरा चाचा है, काका है, काका पर क्रोध थोड़े ही करते हैं ! क्रोध ने कहा कि कब-कब क्रोध होगा, तब भगवान ने कहा कि तीन बार क्रोध होगा।

१. कुम्भकर्ण के वध के प्रसंग में
२. राक्षसों के वध के प्रसंग में।
३. रावण के वध के प्रसंग में।

क्रोध का पहला प्रकरण-कुम्भकरण के वध के प्रसंग में-

राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोपि महाबलशाली।।

वहाँ भी क्रोध आया पर उसको भी नहीं स्वीकारा परन्तु जब बाणों से कुम्भकर्ण का मुख भर दिया तब कदाचित् मान जाता 'बिशिख निकर निशिचर मुख भरेऊ' उसने कहा कि ये आप क्या कर रहे हैं ? भगवान ने कहा कि तुम्हारा मुख बाणों से भर रहा हूँ। उसने कहा क्यों ? भगवान ने कहा कि पहले बाण दे दूँ, तब तो निर्वाण दूँगा।

सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजन्त शरासन तान्यो।।

वो भगवान को खाना चाहता था। भगवान ने कहा कि मुझे मत खाओ। लो, बाण खाओ! उसका मुख बाणों से भर दिया किन्तु-

तब प्रभु कोपि तीब्र शर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा।।

एक तीव्र बाण के द्वारा कुम्भकर्ण के सिर को धड़ से भिन्न कर दिया। पहली बार क्रोध आया। 'कोपि' अब क्रोध का आविर्भाव हो गया। भगवान ने स्वयं

स्वीकारा और इसीलिये सीताजी से कहा कि 'सुनहु प्रिया' जब मैं क्रोध करूँगा तो आप मुझको देख नहीं पाएँगी। आपको देखकर मैं मुस्कुराने लगूँगा और मुझे क्रोध आएगा ही नहीं। सब गड़बड़ हो जाएगा। प्रिया जी को निहारने के बाद थोड़े ही क्रोध आता है और बिना क्रोध के मुझे नरलीला में आनन्द नहीं आएगा। नरलीला में क्रोध तो चाहिये ही। इसलिए 'सुनहु प्रिया' क्रोध की अनुमति लेने के लिये यह पहला विशेषण है।

२- दूसरा कोप प्रकरण-दूसरी बात बोले कि 'व्रत रुचिर', आप व्रत रुचिर हैं और मैं क्रोध करूँगा-

रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भे निशिचर समुदाई।।

३. क्रोध का तीसरा प्रकरण-जब रावण ने सारथी के लिये बाण का प्रयोग किया-

तब शत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि।।

जब रावण ने सारथी 'मातलि' को मार दिया तब

राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा।।

भे क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति तून सायक कसमसे।
कोदण्ड धुनि अति चण्ड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे।।
मन्दोदरी उर कम्प कम्पित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दशन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे।।

क्रोध के तीन प्रकरण ऐसे होंगे जो आप नहीं देख सकेंगी इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

तब तक आप अग्नि में रह लीजिये जब तक मैं राक्षसों का नाश न कर लूँ।

अब प्रश्न यह है कि प्रभु सीता जी को किस अग्नि में रहने के लिये कह रहे हैं, अब आज इस पर दो, चार सुन्दर-सुन्दर विचार करते हैं।

जहाँ-जहाँ भी पावक है, भगवान राम उन्हें वहाँ-वहाँ रखना चाहेंगे क्योंकि यह एक समस्या है कि सीताजी, राम जी से अलग नहीं हो सकतीं, इसकी चर्चा हम कल के प्रकरण में करेंगे! अयोध्या में राम जी ने उनसे अलग होने के लिये कहा था तो सीता जी ने कितने पक्ष दिये थे, यह चर्चा हम आज नहीं, कल करेंगे।

सीधी सी बात है कि जो सीताजी राम जी का एक क्षण का भी वियोग नहीं सह सकतीं, वो उनसे दस महीने तक अलग होकर कैसे रहेंगी ? इसलिये निश्चित यह है कि यहाँ पर भगवान राम जानकर 'पावक' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं अर्थात् आप वहीं रह लीजिये, जहाँ से आपका और मेरा अलगाव न हो पर नरलीला में आप मेरे साथ मत रहिये।

१- देखिये, पहला प्रयोग और पहली उत्प्रेक्षा। सीताजी से भगवान राम ने 'पावक' में रहने के लिये कहा। पावक और कोई नहीं, भगवान की ही विभूति है- 'वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरणामहम्।' भगवान कहते हैं कि वसुओं में पावक मैं हूँ अर्थात् वो मेरी विभूति है, इसलिये कहा-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

२- अब दूसरी बात। सीता जी ने कहा कि वसुओं में आप पावक हैं तो मुझे क्यों रख रहे हैं ?

राम जी ने कहा कि आप जल्दी से अपनी माँ का नाम बताइये!

सीताजी ने कहा कि मेरी माता का नाम पृथ्वी है।

राम जी ने कहा कि पर्यायवाची भी तो बताइये।

सीताजी ने कहा क्षमा, वसुमति, वसुधा,

राम जी ने कहा कि जब आपकी माँ का नाम वसुमति, वसुधा, वसुन्धरा है और वसुओं में मैं अग्नि हूँ तो वसु को वो धारण करती हैं और आप भी वसुधा से उत्पन्न हुई हैं, इसलिये अग्नि से आपका पूर्ण साजात्य है। आप परिचित हो गई हैं। अतएव-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अब दूसरी उत्प्रेक्षा देखिये। भगवान राम कहते हैं कि आप वसुधा में रह लीजिये क्योंकि अग्नि मेरे मुख से उत्पन्न हुआ 'मुखादग्निरजायत।' आप सभी माताएँ जानती हैं कि जब पति कहीं दूर होता है तो भारतीय नारी अपने बेटे के साथ रहती है, सीधी सी बात है। भगवान राम ने कहा कि सीते, अब मैं राक्षसों का नाश करूँगा तो थोड़ी देर के लिये 'तुम पावक महँ करहु निवासा', क्योंकि ये मेरे मुख से निकला है, इसलिये मेरा बेटा है और आप मेरी पत्नी हैं तो पत्नी बेटे के साथ रह लेगी। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

नारी का यही तो जीवन होता है और पुत्र पर उसे गर्व होता है इसीलिये भगवान राम ने कहा कि जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक आप अग्नि में रह लीजिये।

अग्नि में क्या रहूँ, वो जलाएगा नहीं मुझको, सीता जी के यह कहने पर भगवान ने कहा वो आपको नहीं जलाएगा क्योंकि आप उसकी माँ हैं। अपनी माँ को थोड़े ही जलाएगा। अरे, सिंह का बच्चा सबको मार सकता है, अपनी माँ को थोड़े ही मारेगा। इसलिये–'तुम पावक महँ करहु निवासा।'

अब तीसरी बात, सीते, प्रत्येक प्राणी के हृदय में मैं वैश्वानर रूप में रहता हूँ और वैश्वानर भी अग्नि को कहते हैं।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

गीता १५/१४

भगवान गीता जी के पन्द्रहवें अध्याय के चौदहवें मन्त्र में कहते हैं कि मैं वैश्वानर बनकर प्रत्येक प्राणी के देह में विराजता हूँ तो आप तो 'वैदेही' हैं ही, तो आप वैदेही होकर भी देहियों के शरीर में आज विराज जाइये क्योंकि रावण से मेरा युद्ध होगा। रावण दुष्ट तो है ही। हो सकता है रावण ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करे और यदि रावण ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करेगा तो सारा संसार नष्ट हो जाएगा और आप पावक माने वैश्वानर में रहेंगी तो आपके रहने से जीव जीवित रहेगा। इसलिये–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा, सीता जी ने कहा कि आप मुझे अग्नि में क्यों भेज रहे हैं ?

राम जी ने कहा कि हाँ, इसमें मेरा एक स्वार्थ है क्योंकि आगे चलकर हनुमान जी को लंका जलानी है और लंका जलाते समय दो समस्याएँ आ सकती हैं पहली बात तो रावण लंका को जलने ही नहीं देगा, क्योंकि–

तब बल नाथ डोल अति धरनी। तेजहीन पावक शशि तरनी।।

रावण ने अग्नि को, चन्द्र को और सूर्य को तेजोहीन कर दिया है। इनमें तेज नहीं रह गया है और जब तेज ही नहीं है तो हनुमान जी लंका को जला ही कैसे पाएँगे? और लंका जलानी आवश्यक है। इसलिये–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा, दूसरी समस्या है कि पाँचों महाभूत जड़ हैं 'आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनके कृत्य जड़ों के हैं-

गगन समीर अनल जल धरनी। इन कै नाथ सहज जड़ करनी।।

ये सब जड़ हैं तो अग्नि भी जड़ है और जब अग्नि जड़ है तो आप जानते तो हैं ही कि अग्नि क्या करता है ? एक झोंपड़ी में आग लगे तो हजारों झोपड़ियाँ जला देता है। जब ये जड़ है तो इसको यह ज्ञान नहीं रहेगा कि लंका तो जलानी है पर हनुमान जी को नहीं जलाना है। अरे, लंका जलेगी तो हमार हनुमनऊ भी तो जलेंगे और जब उनकी माँ अग्नि में रहेगी तो वो नियन्त्रण करेगी कि अग्नि सावधान! लंका को जलाना पर हमारे लाला को मत जलाना! इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

और देखो, वास्तव में वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु में और रामचरितमानस जी की कथावस्तु में आपको जहाँ-जहाँ अन्तर दिखे वहाँ मेरा केवल एक ही उत्तर होगा कि 'वाल्मीकि रामायण' केवल एक रामकथा कहती है और रामचरितमानस जी भगवान एक साथ सौ करोड़ रामायणों की व्याख्या करते हैं। इसलिये यह बुद्धि तो लोगों को आनी चाहिये पर नहीं आती तो हम क्या करें ? कल के छोकरे, जिन्हें पढ़ने लिखने का कुछ ज्ञान नहीं और सन्तों में भी जब मेहरारू मारती है तो सन्त बनते हैं। मैं निन्यानबे प्रतिशत सन्तों के उदाहरण दे सकता हूँ जो पत्नियों के मारने पर सन्त बन गए। जब कोई पढ़े लिखे और शुद्ध वैराग्य से सन्त बने तो सिद्धान्त समझ में आए।

कलियुग में एक बार भक्तों ने महर्षि वाल्मीकि जी से प्रार्थना की कि महाराज आपने त्रेता में सौ करोड़ रामायणों की रचना की-

चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्।

तब भक्तों ने कहा कि महाराज हम तो सौ करोड़ दिन भी नहीं जी सकते तो आपकी सौ करोड़ रामायणें हम कैसे पढ़ेंगे या कैसे सुनेंगे ? ऐसी कुछ लीला कर दीजिये कि जिससे हम थोड़े ही समय में सौ करोड़ रामायणों का सार समझ सकें।

वाल्मीकि जी ने कहा कि यह काम मैं तो नहीं कर सकता, आप लोग हनुमान जी से कहिये!

हनुमान जी से कहा गया कि महाराज, आप तो सर्वसमर्थ हैं। आप चाहें तो गागर में सागर भर सकते हैं।

हनुमान जी ने कहा कि मैं भर तो दूँगा पर करवाउँगा वाल्मीकि जी से ही। मैं इनसे ही कहूँगा कि तुलसीदास बनो और लिखो रामचरितमानस। यह बात नाभा जी कह रहे हैं। हम जैसे साधारण अकिञ्चन पापी लोगों की यह बात नहीं हैं। नाभा जी जैसा तत्वदर्शी व्यक्ति, जिसकी इतनी बड़ी साधना! जन्म से ही उनके पास नेत्र नहीं थे। पाँच वर्ष तक बिना नेत्र के रहे। उनके पास पुतली भी नहीं थी। माँ दुष्काल के कारण उन्हें जंगल में छोड़कर चली गईं। वहीं पर ये बिलख रहे थे। तब तक दो सन्त वहाँ पधारे-कीलदेव जी महाराज और अग्रदेव जी महाराज। उन्होंने इस बालक को देखा तो दया आ गई। कीलदेव जी महाराज ने अपने कमण्डल का जल छिड़का तो तुरन्त उनकी आँख में पुतली आ गई और फिर अग्रदेव जी से उन्होंने कहा कि चलो, इसको मन्त्र दो। उन्होंने दीक्षा दी और उनका नाम 'नारायण दास' रक्खा। उन्होंने कहा कि तुम और कुछ मत करो, केवल सन्त सेवा किया करो और सन्तों के चरण धोकर चरणोदक लिया करो। 'गालता गद्दी' में उन्होंने सन्त-सेवा प्रारम्भ की। एक दिन वो अग्रदेव जी महाराज की सेवा मं थे, उन्हें वो पंखा डुला रहे थे और उधर अग्रदेव जी महाराज भगवान की मानसी सेवा कर रहे थे और मानसी सेवा में उनका यह चिन्तन चल रहा था कि माला व्यवस्थित नहीं हो पा रही थी। माला पहनाना चाहते थे पर वो छोटी पड़ रही थी। पहले मुकुट पहना दिया था और माला छोटी होने के कारण व्यवस्थित नहीं हो पा रही थी। तब तक नाभा जी बोले अरे गुरुदेव, पहले मुकुटुवा उतार दीजिये, तब माला पहनाइये और बाद में मुकुटुवा पहनाइये, तो अपने आप ठीक हो जाएगा। अग्रदेव जी ने कहा कि अरे, तुमने तो मेरी नाभ की बात जान ली। लो, आज से तुम्हारा नाम 'नाभादास जी महाराज' पड़ गया।

तो जो व्यक्ति इतना दूरदर्शी हो कि गुरुदेव के चिन्तन में आई हुई मानसी पूजा की कठिनता को समझ सकता है, वो असत्य तो नहीं बोलेगा। हम, आप असत्य बोल सकते हैं पर वो असत्य नहीं बोलेगा!

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्ता नित्यज्ञानबलेन ये
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा।
आप्ता शिष्टाविबुद्धास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः।।

चरक संहिता

ज्ञान बल से जिन्होंने रजोगुण और तमोगुण को समाप्त कर दिया है, जिनका ज्ञान तीनों कालों में अव्याहत है जिनके मन में रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण नहीं है, वे असत्य क्यों बोलेंगे, वो निरन्तर सत्य ही तो बोलेंगे। ऐसे नाभाजी जी महाराज अपने 'भक्तमाल' में तुलसीदास जी महाराज की प्रशस्ति लिखते हैं। उन्हें 'भक्तमाल' का सुमेरु नहीं मिल रहा था। सुमेरु माने फुँदना। पूरी 'भक्तमाल' लिख डाली पर उनकी जटिलता यह थी कि सुमेरु अर्थात् फुँदना नहीं मिल पा रहा था। कैसे करें, क्या करें ? सब कुछ मिल गया था पर यही नहीं मिल पा रहा था। जब 'भक्तमाल' की रचना तो ही गई पर सुमेरु नहीं मिल पाया उतना स्थान उन्होंने छोड़ रखा था। इधर 'भक्तमाल' की रचना के उपलक्ष्य में 'नाभा जी महाराज' ने भण्डारा किया। वृन्दावन में झारा भण्डारा किया और उस भण्डारे में जिनका धन लगा था वो 'खेमालरतन राठौर' की धर्मपत्नी थीं। उनके यहाँ कुछ नहीं रह गया था, तब उन्होंने अपना कँगना बेचकर भण्डारा किया था। 'खेमालरतन राठौर' की दो अभिलाषाएँ थीं जिन्हें उनके पौत्र ने पूरा किया था–

अभिलाषरतन खेमाल की तैं किशोर पूरा किया।

एतावता, तुलसीदास जी महाराज उस भण्डारे में नहीं जाना चाह रहे थे, क्योंकि वो भण्डारे में कभी जाते नहीं थे। तब शंकर भगवान ने कहा कि इस भण्डारे में आप अवश्य पधारें। ये साधारण व्यक्ति का भण्डारा नहीं है, इसमें आप अवश्य पधारिये। तो शंकर भगवान के कहने से तुलसीदास जी महाराज कुछ विलम्ब से पहुँचे, तब तक भण्डारा चल चुका था। पारस हो चुकी थी। स्थान नहीं बचा था। वहाँ पर सब वृन्दावन के सन्त पधारे थे तो तुलसीदास जी महाराज जी बिल्कुल जहाँ सन्तों की पनहियाँ पड़ी थीं वहीं जाकर विराज गए। खीर परसी जा रही थी। तुलसीदास जी के पास कोई पात्र नहीं था। परसने वाले ने कहा कि अरे, खड़िया कहाँ से आया है, पात्र नहीं है तेरे पास तो खीर कहाँ से दी जाए? तो तुलसीदास जी ने एक सन्त की पनही उठा ली, और कहा कि इसी में मुझे दे दीजिये! क्योंकि–

तुलसी जाके मुखन ते धोखेहु निकसत राम।
तिनके पग की पगतरी मेरे तन की चाम।।

तब परसने वाला दौड़कर नाभाजी के पास गया और कहा कि ऐसा सन्त मैंने आज तक नहीं देखा! तब नाभा जी ऊपर से कूद पड़े कि अरे, जो मैं ढूँढ रहा था, वो आज मिल गया। मैं 'भक्तमाल' का सुमेरु ढूँढ रहा था और मिल गए तुलसीदास

जी महाराज। नाभा जी दौड़कर तुलसीदास जी के चरणों में पड़ गए और कहा कि अब मैं सुमेरु लिखूँगा और तब कहा-

त्रेता काव्य निबन्ध करी शत कोटि रामायन।
एक अक्षर उद्धरइ ब्रह्महत्यादि परायन।।
अब भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम चरण रस मत्त रहत अहनिशि व्रत धारी।।
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नौका लए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीकि तुलसी भए।।

भक्तमाल छ०सं० १२९

यही उदाहरण मैने न्यायालय में भी दिया और न्यायाधीशों को दिखा दिया कि 'भक्तमाल' का छप्पय संख्या एक सौ उन्तिस देखिये!

भक्तमालकार कहते हैं कि जिस महापुरुष ने त्रेता में शत कोटि अर्थात् सौ करोड़ रामायणों की रचना की थी और इसके एक-एक अक्षर का पारायण ब्रह्म हत्यादि को नष्ट करता है वही 'अब भक्तन सुख देन' भक्तों को सुख देने के लिये 'बहुरि लीला विस्तारी' फिर उन्होंने लीला का विस्तार किया। तात्पर्य यह है कि सौ करोड़ रामायण गाने पर भी तो तृप्त नहीं हुए, सौ करोड़ रामायण गाकर भी वो नहीं अघाए और जब रामचरितमानस लिख लिया तो स्वयं कहा-

जाकी कृपा लवलेश ते मतिमन्द तुलसीदासहू।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

आज उन्हें परम विश्राम मिला क्योंकि सौ करोड़ रामायण को तुलसीदास जी महाराज ने संक्षिप्त किया श्रीरामचरितमानस लिखकर। मैं आपसे यह कह रहा था कि वाल्मीकि रामायण केवल एक राम की कथा है और रामचरितमानस जी तो सौ करोड़ राम चन्द्र जी के चरित्रों की कथा है। इसलिये, जहाँ-जहाँ आपको अन्तर लगे तो आप जान लीजिये कि किसी न किसी रामायण में यह लिखा है, भले ही हमको नहीं पता है! यह मुझे कहना था, इसीलिये मैंने इतना उपबृंहण किया। दोनों के सुन्दरकाण्डों को आप देखेंगे तो थोड़ा सा आपको अन्तर दिखेगा। 'वाल्मीकि रामायण' में जब राक्षसों ने हनुमान जी की पूँछ में आग लगाई, तब सीता जी के यहाँ एक सखी ने संवाद किया-

यस्त्वयाकृत सम्वादः सीते ताम्रमुखः कपिः।

जो लाल मुख वाला वानर तुमसे बातचीत कर रहा था उसकी पूँछ में आग लगाकर, आज राक्षस उसको मारने के उपक्रम में हैं। इतना जब सीता जी ने सुना तब अग्नि के पास आईं और अग्नि से बोलीं–

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः।।

वा०रा० ५/५३/२७

हे अग्निदेव! यदि मैंने गुरुजनों की सेवा की है, यदि मैंने विशुद्ध मन से मनसा, वाचा, कर्मणा तपस्या की है, यदि मैं राघवेन्द्र सरकार की एकमात्र पत्नी हूँ और कोई दूसरी पत्नी राघव जी की नहीं है तो आप हनुमान जी के लिये ठण्डे हो जाओ! हनुमान जी लंका जलाते रहे और उनको यही लगता रहा कि उनकी पूँछ में करोड़ों मन बर्फ की सिल्ली लगी हुई है। पूरी लंका हनुमान जी महाराज ने जला दी पर उनकी पूँछ का एक रोआँ भी नहीं जला, यह कथा है 'वाल्मीकि रामायण' की परन्तु तुलसीदास जी महाराज की कथा यह नहीं है। वाल्मीकि रामायण में सीताजी के अग्निवास का प्रकरण नहीं है इसलिये उनको वहाँ जाना पड़ा और तुलसीकृत रामायण में यह प्रकरण है–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

तुम अग्नि में निवास करो और यही हुआ। देखिये, यह प्राश्न मैं आपसे कर रहा हूँ! आप आँख बन्द किये हों या सो रहे हों और आपके तलवे में कोई जलती हुई माचिस की काणी का स्पर्श करा दे, तो क्या आपको देखने की आवश्यकता पड़ेगी ? अग्नि तो अपने आप पता चल जाता है, चाहे देखो या न देखो! जलेगा तो पता चलेगा ही। अग्नि तो स्पर्श–सम्वेद्य है। अग्नि का ज्ञान तो स्पर्श से ही होगा 'उष्णस्पर्शवान् अग्निः' 'उष्णस्पर्शवत् तेजः' तेज का स्वभाव उष्ण स्पर्शवान् होता है। आँख बन्द रखो या खोलकर, छूते ही लगेगा। ये गरम है! परन्तु यहाँ हनुमान जी को अग्नि देखनी पड़ रही है–

'पावक जरत 'देखि' हनुमन्ता।' यहाँ 'जानि' नहीं लिखा प्रत्युत 'देखि' लिखा क्योंकि उनको तो शीतल स्पर्श हो रहा था तो उनको पता ही नहीं चला कि आग लग रही है या नहीं। वो तो जब इधर उधर देखा कि और वस्तुएँ जल रही हैं तो कहा अरे! ये तो आग लग गई। माने हनुमान जी ने अग्नि को जाना नहीं, देखा क्योंकि स्पर्श से

उनको अग्नि का ज्ञान नहीं हो पाया क्योंकि उनके लिये थी शीतलता। सबके लिये अग्नि था, उनके लिये चन्दन का लेप था।

बालधी विशाल बिकराल ज्वालमाल मानो,
लंकिनी लिबेको काल रसना पसारी है।
'तुलसी' सुरेश चाप कैधों दामिनी कलाप,
कैधों चली मेरु तें कृशानु सम्भारी है।
कैधों व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीर रस वीर तरवार सों उघारी है।
देखि जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजारी अब नगर प्रजारी है।।

मानो व्योमवीधिका में धूमकेतु भरे हुए हैं। यहाँ धूमकेतु माने अग्नि है। धूमकेतु के दो अर्थ होते हैं पुच्छल तारा और अग्नि। 'कैधों व्योमवीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु' अब आप सोचिये कि इतना प्रबल है अग्नि तो तुलसीदास जी ने यहाँ यह नहीं कहा कि सीता जी ने प्रार्थना की। प्रार्थना सीताजी क्यों करेंगी ? भगवान राम जानते हैं कि हमार हनुमनऊ बड़े कोमल हैं और हनुमान जी जब लंका जलाने लगेंगे, तो यदि तुम अग्नि में रहोगी सीते, तो अग्नि नियन्त्रित रहेगा कि लंका जले पर हनुमान जी को जरा सा ताप भी नहीं लगना चाहिये। फफोला भी नहीं पड़ना चाहिये। इसलिये जब तक मैं निशाचरों का नाश कर रहा हूँ तब तक-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अब तीसरी बात, अग्नि लग गया। बुझाए नहीं बुझ रहा। यहाँ तक कि 'कोपि दशकण्ठ तब प्रलय पयोद बोलो' कवितावली रामायण में रावण ने प्रलयकारी बादलों को बुला लिया और कहा कि जल्दी करो!

कह्यो लंकपति लंक, बरत बुताओ बेगि।
बानर बहाइ मारो महाबारि बोरि कै।।

लंका को बुझा दो और बानर को प्रवाहित कर दो। परन्तु 'जीवन ते जागि आगि चपर चौगुनी लागि' आग और चौगुनी हो गई। जैसे घी डालने पर जितनी द्रुत गति से अग्नि चलता है वैसे ही जल डालने पर भी अग्नि और भकभकाकर जलने लगा और

मेघ भी जलने लगे! मेघों ने कहा कि रावण तुम्हारी ऐसी की तैसी! अब हम लोग जा रहे हैं। रावण ने कहा कि क्यों ? तब बादलों ने कहा-

तुलसी सुन्यो न कान सलिल सरपी समान,
बड़ो अचरज कियो केसरीकुमार हैं।

आज तक सलिल को सरपी अर्थात् घी के समान जलते हुए तो हमने नहीं देखा। तो कौन जला रहा था ?

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा भगवान राम कहते हैं कि सीते, मैं आपको कहाँ निवास कराऊँ ? फिर कहते हैं कि मेरा क्रोध भी अग्नि है और इसका प्रमाण है-

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि शलभ सकल कुल तोरा।।

जटायु कह चुके हैं कि 'राम रोष पावक' राम जी का रोष पावक है। भगवान कहते हैं कि सीते, आप मेरे क्रोध में निवास करिये! मेरे क्रोध को शक्ति मिल जाए अथवा कहीं मेरा क्रोध प्रलय न करने लग जाए, तो क्रोध में भी जब मेरी कृपा रहेगी तो राक्षसों का कल्याण हो जाएगा। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

मेरा क्रोध 'पावक' है क्योंकि-

उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरहिं मोहिं निशिचर।

राक्षस, वैर-भाव से मेरा स्मरण करते हैं।

चित्ते कृपा समर निष्ठुरता च दृष्टा।

चित्त में कृपा, समर में निष्ठुरता, तो कहा कि दुर्गा कृत समर में तो निष्ठुरता होती है पर मुझको समर में कहीं निष्ठुरता न हो जाए, इसीलिये भगवान राम को युद्ध में निष्ठुरता नहीं आई क्योंकि क्रोध में सीता जी रह रही हैं, इसलिये-

बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गँभीर।
द्वन्द्व जुद्ध देखहु सकल, श्रमित भए अति बीर।।

इसीलिये गोस्वामी जी ने कहा-

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं शिशु सेवक जद्यपि बामा।।

शत्रुओं का भी राघव अहित नहीं करते। 'बैरिउ राम बड़ाई करहीं', बैरी भी राम

जी की बड़ाई करते हैं। इसलिये सीते, तुम मेरे क्रोध में निवास करो क्योंकि क्रोध अन्धा होता है 'क्रोधात् भवति सम्मोहः' क्रोध से, मोह होता है, तो भगवान राम ने कहा कि मुझे क्रोध आएगा तो कहीं मुझे भी सम्मोह न हो जाए। और लोगों के क्रोध से सम्मोह होता है और आप जब रहेंगी तो मेरे क्रोध से सम्मोह नहीं सम्मोक्ष होगा, क्योंकि ब्रह्मविद्या से मोक्ष मिलता है और सीते, आप ब्रह्मविद्या हैं 'आनुवीक्षकी त्रयी वार्ता' इसलिये कहा-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

जब तक मैं निशाचरों का नाश करूँ, तब तक आप पावक में रह लीजिये अर्थात् मेरे क्रोध-पावक में रह लीजिये जिससे मैं प्रत्येक राक्षस को मोक्ष दे सकूँ इसलिये सीता जी से कहा कि 'ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती और आप साक्षात् ज्ञान की शक्ति हैं इसलिये और 'भक्त्यामामभिजानाति' भक्ति से ही व्यक्ति जानता है और 'भक्त्याविमुच्येन्नरः' भक्ति से ही विमुक्त होता है। ज्ञान से केवल मुक्त होता है और भक्ति से विमुक्त हो जाता है। मुक्त और विमुक्त में क्या अन्तर है आप जानते हैं ? मुक्त व्यक्ति फिर बँध सकता है पर विमुक्त कभी भी नहीं बँधता, नमोराघवाय हो जाती है। इसलिये, सीता जी से कहा कि आप भक्ति हैं और भक्ति जब मेरे क्रोध में रहेगी तो उसके स्पर्श से राक्षसों को मोक्ष का अधिकार मिल जाएगा। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा, भगवान राम जानते हैं कि रावण सीता जी का भक्त है। माया की सीता का नहीं, वास्तविक सीता जी का भक्त है। आगे कहेंगे कि-

सुनत बचन दशशीश रिसाना। चरन बन्दि मन महँ सुख माना।।

भगवान ने कहा कि सीते, तुम अग्नि में निवास करो क्योंकि अन्त में सारे राक्षस मेरे मुख में आने वाले हैं और यही बात श्रीमद्भगवद् गीता जी के ग्यारहवें अध्याय के अट्ठाइसवें और उन्तिसवें श्लोक में कही गई। अर्जुन कह रहे हैं-

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।

अर्थात् जिस प्रकार धधकते हुये अग्नि में अपने ही नाश के लिये पतंगे वेग पूर्वक कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार ये सम्पूर्ण लोक स्वयम् को समाप्त करने के लिये ही आप श्री के मुखों में दौड़-दौड़ कर प्रविष्ट हो रहे है।

यह अग्नि है कौन ?

आनन अनल अम्बुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।।

भगवान का मुख भी है अग्नि। इसलिये कहा-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

जब तक मैं राक्षसों का वध करूँ तब तक आप पावक माने मेरे मुख की अग्नि में निवास कर लीजिये और कहीं मत रहिये! भगवान का नाम आपने सुना होगा 'श्रीमुख'।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदय समाई।।

श्रीमुख माने 'श्रीः मुखे यस्य' श्री जी जिसके मुख में रहें उसी को श्रीमुख कहेंगे और 'आनन अनल' मुख है भगवान की अग्नि, इसलिये

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

और देखिये, सीता जी ने कहा कि आप मुझे अग्नि में क्यों रखना चाहते हैं ? भगवान राम ने कहा कि बात ऐसी है कि दशरथ जी ने कहा था कि-

मइके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मन मान।
तब तहँ रहब सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान।।

सुमन्त्र जी से उन्होंने सन्देशा कहलवाया था कि मैके और ससुरे में दोनों में सुख है और जब तक आपका जहाँ मन हो, वहाँ रह लीजिये। तो सीते, तेरह वर्ष तो आप मैके में रहीं। अरे! भूमि पर रहीं तो भूमि उनका मैका हो गया क्योंकि पृथ्वी पर शयन किया और वन में रहीं। मैका माने होता है कि जहाँ भाई भी मिले और माई भी मिले। तो वन के वृक्ष उनके भाई और पृथ्वी उनकी माई। भाई और माई दोनों मिले तो मैके में रह रही हैं। राम जी भी बड़े ही आनन्द में रहे, बड़े प्रसन्न रहे। अरे भाई, ससुराल में प्रत्येक व्यक्ति को आनन्द आता है, राम जी को भी आनन्द आया। रामजी ने कहा कि आप मैके में तो रह चुकीं, अब थोड़े दिन के लिये ससुरे में रहना है, जब तक विपत्ति रहेगी तब तक ससुरे में रहना है। सीताजी के जीवन में तीन ससुरों की भूमिका है।

१. 'दशरथ' जी चले जा चुके हैं इसलिये वो कैकेई के कारण वहाँ रह नहीं सकतीं।

२. 'जटायु' पक्षी है, वो इन्हें रख नहीं सकते।

३. तीसरे ससुर हैं 'अग्निदेव' क्योंकि 'प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें' अग्निदेव के दिये हुए चरू से राम जी का प्राकट्य हुआ है। इसलिये अग्निदेव आपके ससुर भी हैं और पिता जी कह चुके हैं-

पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी।।

इसलिये,

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा, एक नियम होता है कि जब संकट पड़ता है तो राजमहिषी ब्राह्मण के यहाँ रहती है। कुछ लोग मेरे वक्तव्य से यह न समझें कि ब्राह्मणवाद का प्रकरण कर रहे हैं। यह नियम है कि जब राजमहिषी का पति संकट में हो तो उसको और कहीं न रहकर ब्राह्मण के यहाँ रहना चाहिये। सीता जी राजमहिषी तो हैं ही! अब आप कहेंगे कि अभी राजमहिषी कहाँ हैं, अभी राम जी राजा तो बने नहीं हैं। राजा बनेंगे राम जी उत्तरकाण्ड में परन्तु नहीं, राम जी राजा बन गए-

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।

इसलिये केवट ने भी कहा-

सब परिवार मेरो याही लाग राजा जी,
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।।

राम जी राजा बन गए तो उनकी पत्नी रानी बन गईं या नहीं! वो राजमहिषी तो बन ही गईं-

राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी।।

और अयोध्याकाण्ड में वसिष्ठ जी ने भी कह दिया-

धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा राम स्वबस भगवानू।।

राम जी राजा बन गए और आप कहें कि तुलसीदास जी तो कहते ही रहते हैं और किसी ने भी कहा है क्या ? तो कहते हैं कि वाल्मीकि जी ने भी अरण्यकाण्ड में मारीच के माध्यम से कह दिया-

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः।।

'राजा सर्वस्य लोकस्य' राम जी राजा हैं और रावण भी कहता है 'जेहि' बिधि हरि आनउँ नृपनारी' नृप नारी माने राजा की पत्नी अर्थात् सीता जी 'राजमहिषी' हैं, राजरानी हैं और आज संयोग से विपत्ति पड़ रही है तो यह नियम ही है कि राजमहिषी ब्राह्मण के यहाँ रहे।

आपने एक प्रसिद्ध नाटक सुना होगा। नाटकों के इतिहास में न्यायतः रोचक नाटकों में पहला नाटक है 'स्वप्नवासवदत्तम्'। इस नाटक में उदयन बहुत आसक्त हो जाता है। 'उदयन' को प्रवृत्त करने के लिये किसी प्रकार 'वासवदत्ता' को दूर करने की योजना बनाई जाती है और उदयन से यह बता दिया गया कि गाँव में वासवदत्ता जल गई। और उधर वासवदत्ता को 'यौगन्धरायण' अपने पास ले आए। यौगन्धरायण ब्राह्मण हैं। अन्ततोगत्वा वासवदत्ता पर कोई सन्देह न करे तो उन्होंने पद्मावती के यहाँ लाकर उसको रख दिया। पद्मावती से जब उदयन का विवाह हुआ तो जब विवाह की चित्रावली देखी! चूँकि उधर पद्मावती के यहाँ वासवदत्ता सेविका भाव में अवन्तिका नाम की उसकी सहेली बनकर रह रही थी। जब उदयन ने चित्र देखा तो कहा कि अरे, यह तो मेरी वासवदत्ता है। सबने कहा कि नहीं यह तो वासवदत्ता नहीं है और तब तक उनको मगधराज की सहायता मिल चुकी थी। युद्ध जीता जा चुका था। अन्ततः वो फिर आ गई। तो 'राजमहिषी' विपत्तिकाल में ब्राह्मण के यहाँ रहती है, यह एक सिद्धान्त है।

इसी सिद्धान्त को रामचन्द्र जी कह रहे हैं कि आज मेरे ऊपर विपत्ति पड़ रही है। राक्षसों का मुझको नाश करना है और 'अग्नि ज्येष्ठो हि ब्राह्मणः' अग्नि ब्राह्मण के बड़े भैय्या हैं, सबसे बड़े ब्राह्मण हैं, इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

आप 'पावक' में निवास करिये जिससे रावण इसको छेड़ न सके क्योंकि अग्नि के सामने रावण नहीं आ सकता 'अग्निर्देवता' 'वासोदेवता' आप देवि हैं सीता जी और देवी को देवता की शरण में रखना है अग्नि की शरण में क्योंकि अग्नि सबसे निर्दोष व्यक्ति है और आपको निर्दोष के यहाँ रखना पड़ेगा।

समरथ के नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं।।

चार लोग समर्थ हैं, जो निर्दोष हैं-विष्णु, सूर्य, अग्नि और गंगा।

समस्या यह है कि विष्णु के यहाँ सीता जी को दिया नहीं जा सकता, क्योंकि विष्णु इनको सँभाल नहीं सकते हैं। विष्णु अंश हैं। विष्णु पहले से ही रावण से पराजित हो चुके हैं। विष्णु, राम जी के अंश हैं तो अंश, अंशिनी की रक्षा नहीं कर सकता! रावण का धान कूटते-कूटते तो लक्ष्मी के हाथ में फफोले पड़ गए, तो वो क्या रक्षा कर पाएँगे ? इसलिये विष्णु सीताजी की रक्षा नहीं कर पाएँगे-

साहेब महेश सदा शंकित रमेश मोहि

दूसरी बात, इनको गंगा जी भी नहीं सँभाल सकतीं। उनकी भी कक्षा बड़ी छोटी है। वहाँ तो रावण चला जाएगा।

सूर्यनारायण भी नहीं सँभाल सकते! उनकी शक्ति के बाहर की वस्तु है। सूर्यनारायण पर भी वह विश्वास नहीं हो सकता, क्योंकि 'रवि शशि पवन वरुन धनधारी' सब उसके वश में रहते हैं।

केवल अग्नि एक ऐसा व्यक्ति है 'वसूनां पावकश्चारिम' वहाँ ठीक रहेगा। वहाँ शरमाएँगी भी नहीं। सूर्यनारायण तो उनके कुल के प्रवर्तक हैं इसलिये वहाँ शरमाएँगी। सूर्य नारायण क्षत्रिय कुल के प्रवर्तक होने से क्षत्रिय स्वभाव के हैं तो वहाँ क्षत्राणी को नहीं रखा जा सकता। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

नियम यह होता है कि क्षत्रिय की पत्नी को ब्राह्मण सुरक्षा दे सकता है, सूर्यनारायण नहीं दे सकते!

'पावक' कौन है ? किस पावक में रखेंगे ? भगवान राम ने कहा कि सीते, मेरा नाम भी तो 'पावक' है-

जासु नाम 'पावक' अघतूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला।।

इसलिये, मेरा राम नाम भी तो पावक है। जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक वहाँ रह लो! जब राम राम कहकर राक्षस मरेंगे, तो तुम्हारा नाम लेंगे और इनका मोक्ष होता रहेगा। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

राम, राम कहेंगे-

गर्जेसि मरत घोर रव भारी। कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।।

अब तक राम जी ने मुख में रहने के लिये कहा था, अब नाम में रहने के लिये

कह रहे हैं क्योंकि मुख में, 'तासु तेज समान प्रभु आनन', वहाँ भी रहेंगी तो कम से कम उनको आपके दर्शन हो जाएँगे। मेरा नाम भी यदि रावण लेगा, तो आपकी कृपा होगी क्योंकि जब तक सीता जी की कृपा नहीं होती, तब तक व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी नहीं बन सकता। इसलिये- 'जासु कृपा निर्मल मति पावउँ' निर्मल मति के बिना व्यक्ति को कैसे मोक्ष मिलेगा ? 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इसलिये कह दिया कि चलिये, आप मेरे नाम में भी रह लीजिये।

अथवा भगवान राम ने कहा कि सीते, मैं राक्षसों को मारूँगा कैसे, मैं यहाँ तलवार तो नहीं चलाउँगा। मैं बाण ही तो चलाउँगा और मेरा बाण क्या है, वो है 'रघुपति बान कृशानु' राम जी के बाण अग्नि हैं, इसलिये सीते जब तक मैं राक्षसों का वध करूँ, तब तक तुम अग्नि में रह लो अर्थात् मेरे बाणों में रह लो। जब मेरे बाण राक्षसों को लगेंगे तो उनको पीड़ा भी नहीं होगी और मोक्ष भी मिलता रहेगा। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा, मेरा व्यक्तिगत अग्निबाण भी है

पावक शर छाँड़े रघुबीरा। छन महँ जरे निशाचर तीरा।।

मेरा पावक बाण भी तो है, तो मेरे अग्निबाण में भी रह लीजिये। सामान्य बाण भी अग्नि हैं और अग्नि बाण भी हैं। उसमें भी रह लीजिये।

सीता जी ने कहा कि यदि अग्नि बाण में रहूँगी तो क्या लाभ होगा ?

भगवान राम ने कहा कि यदि आप अग्नि बाण में रहेंगी और मैं समुद्र पर बाण चलाउँगा-

लछिमन बान शरासन आनू। सोषौं बारिधि बिशिख कृशानू।।

मैं अग्निबाण का सन्धान करूँगा और जब आप रहेंगी तो समुद्र बच जाएगा, नहीं तो भस्म हो जाएगा बेचारा !

सन्धानेउ प्रभु विशिख कराला। उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।।

ज्वाला तो हुई पर सागर नहीं जला, क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

कितना सुन्दर आनन्द भगवान कर रहे हैं। कहते हैं कि आप नाम में रह लीजिये जिससे अग्नि को साक्षी देकर हनुमान जी सुग्रीव से मित्रता कराएँगे, तो वहाँ

भी आप रहेंगी क्योंकि जब तक सीता जी की कृपा नहीं होती, जीव भगवान के प्रेम का पात्र नहीं बन पाता-

तब हनुमन्त उभय दिशि, कै सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।

तो,

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा, जब मैं अग्निबाण का प्रयोग करूँगा तो मुझे प्रकाश चाहिये और अग्नि के पास प्रकाश नहीं है-

तेजहीन पावक शशि तरनी' अतएव 'तुम पावक महँ करहु निवासा।

शेष चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

षष्ठ वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।।

❖❖❖❖

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ सप्तम वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १८-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।
कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।
कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।
श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान, मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु, सीताभिराम श्रीराम, अब भगवती जी से एक अनुनय की भाषा में कह रहे हैं कि 'सुनहु प्रिया, हे प्रिया, आप सुनिये' 'व्रत रुचिर' व्रत से सुन्दर लगने वाली पतिव्रते, आप सुनिये, 'सुशीला' आपका शील बहुत शोभन है इसलिये आप सुनिये! क्या सुनूं ? 'मैं कछु करब ललित नर लीला' यहाँ तीन विशेषण देकर कुछ और कहना चाहा भगवान ने! भगवान ने कहा कि आपके हरण के पश्चात् मुझे तीन नारियाँ मिलेंगी और तीनों की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होंगी। एक कुमारी मिलेगी, एक नारी मिलेगी और एक महतारी मिलेगी। कुमारी मिलेगी स्वयंप्रभा, नारी मिलेगी तारा और महतारी मिलेगी शबरी। अतः मुझे ललित नरलीला करनी है। इसलिये तीन विशेषण दिये कि आप प्रिया हैं, व्रत रुचिर हैं और सुशीला हैं और आपके रहते इन तीनों के मनोरथ नहीं पूरे किये जा सकते। अतः अग्नि में निवास करो। कौन सी अग्नि में ?

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

'पावक' की कल बहुत व्याख्या की जा चुकी है, अब अगली व्याख्या, भगवान राम ने सीता जी से अग्नि में निवास के लिये क्यों कहा, ये आप सुन चुके हैं। उनको लंका जलानी है और लंका जलाने के लिये अग्नि के पास तेज नहीं रहा, रावण ने उसका तेज समाप्त कर दिया है 'तेजहीन पावक शशि तरनी' इसलिये यदि आप अग्नि में रहेंगी तो अग्नि को तेज मिल जाएगा और दूसरा स्वार्थ यह है कि हनुमान जी बच जाएँगे। दूसरी बात भगवान ने कहा कि आप मेरे नाम में रह लीजिये क्योंकि 'पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।' तीसरी बात आप मेरे मुख में रह लीजिये। 'आनन अनल अम्बुपति जीहा' चौथा अग्नि, आप मेरे क्रोध में रह लीजिये 'राम रोष पावक अति घोरा' पाँचवाँ अग्नि, मेरे बाण में रह लीजिये 'रघुपति बान कृशानु' और छठा आप मेरे अग्नि बाण में रह लीजिये! विषय बिल्कुल समझते चलिये। यदि

सीता जी अग्नि बाण में रहेंगी तो अग्नि तो जला देता है पर उतना प्रकाश नहीं करता परन्तु आप जब रहेंगी तो अग्नि प्रकाश करेगा क्योंकि-

पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकाश फिरइ फुलवाई।।

आपमें प्रकाश है और अग्नि को प्रकाश चाहिये और इसका उपयोग तब होगा जब अकम्पन और अतिकाय माया का प्रयोग करेंगे-

अनिप अकम्पन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्ह तिन्ह माया।।

जब माया का प्रयोग हुआ तो 'भयउ दिवस महँ अति अँधियारा' दिन में अँधेरा हो गया। किसी को कुछ नहीं दिख रहा है-

देखि दिवस महँ निबिड़तम, कपिदल भयउ खभार।

आकाश में अन्धकार छा गया। सब भयभीत हो गए-

एकहिं एक न देखहीं, जहँ तहँ करहिं पुकार।।

सब लोग एक दूसरे को पुकार रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। तब अंगद और हनुमान को भगवान ने बुलाया और कहा कि राक्षसों का वध करो, तब उन्होंने कहा कि करेंगे पर हमें दिखाई तो पड़े-

पुनि कृपालु हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा।।

तब भगवान ने मुस्कुराकर धनुष पर डोरी चढ़ाई और आग्नेय बाण छोड़ा! तो आग्नेय बाण तो अब तक जलाता रहा पर आज जलाने का काम नहीं कर रहा है।

भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदय जिमि संशय जाहीं।।

ये प्रकाश कहाँ से आएगा-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

कहाँ से प्रकाश आया-

पूजन गौरि सखी लै आईं। करत प्रकाश फिरइ फुलवाई।।

'भयउ प्रकाश' इसलिये 'तुम पावक महँ करहु निवासा' पावक में सीता जी के निवास की आवश्यकता है। पावक को यदि प्रकाश मिलेगा तो सीता जी से मिलेगा। अतः भगवान राम ने कहा कि जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, बहुत से ऐसे प्रकरण आएँगे, जब अँधियारा हो जाएगा-

बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न काहुहि हाथ पसारा।।

मेघनाद ने भी जब माया का प्रयोग किया तो धूल की वर्षा करके उसने अँधेरा

कर दिया। वानर अँधेरे में बहुत डरता है। 'कपि अकुलाने माया देखे।' दिन में चाहे जितना उससे उछल कूद करवा लो पर रात में चुपके से जाकर सो जाता है।

कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने।।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया।।

एक ही बाण से सम्पूर्ण माया को काट दिया जैसे सूर्य भगवान अन्धकार समूह को समाप्त कर देते हैं। इसलिये 'तुम पावक महँ करहु निवासा', कितनी बढ़िया बात है! जब जहाँ भी आप देखेंगे 'रघुबीर एकहि तीर कोप निमेष महँ माया हरी' जब माया का विनाश करना होता है तो भगवान को आग्नेय बाण चलाना पड़ता है।

एक और बढ़िया पक्ष है, भगवान ने कहा कि आपको अग्निबाण में निवास करना पड़ेगा क्योंकि माया का मैं इसी से विनाश करूँगा। यही मेरा बाण माया का विनाशक होगा और माया का विनाश बिना महामाया के नहीं हो सकता और आप मायाओं की भी माँ हैं। आपको अयोध्याकाण्ड का स्मरण हो गया! अयोध्याकाण्ड के दो सौ बावनवें दोहे की दूसरी पंक्ति से सीताजी ने एक बड़ा सुन्दर चरित्र किया। जब चित्रकूट में सीताजी की सभी सासुएँ, उनसे मिलने के लिये पधारीं। सीता जी ने कहा कि ये सात सौ सासुएँ हैं, कोई एक दो तो हैं नहीं, तो जिनकी पहले सेवा करूँगी, वो तो जानेंगी कि मुझे बहुत प्रेम करती हैं और जिनकी सेवा अन्त में करूँगी वो ये समझेंगी कि मुझसे प्रेम नहीं करती हैं और मुझको सबको समान स्नेह देना है, तो कैसे करूँ ? तुरन्त सीता जी ने माया का प्रयोग किया-

सीय सासु प्रतिबेष बनाई। सादर करहिं सरिस सेवकाई।।

फिर तो जितनी सासुएँ, उतनी ही सीताजी बन गईं और एक साथ सबकी सेवा होने लगी! एक साथ सबके चरण दबा रही हैं, एक साथ सबको नहला रही हैं, एक साथ सबकी चोटी बाँध रही हैं। सबने कहा कि अरे! बड़ी बहूरानी तो बड़ी सेवा कर रही हैं मेरी! किसी ने कहा अरे चलो, तुमसे अधिक सेवा तो मेरी करती हैं। दूसरी ने कहा कि तुमसे अधिक तो मेरी सेवा करती हैं पर इस मर्म को किसी ने नहीं जाना। लक्ष्मण जी भी नहीं जान पाए कि आज हमारी भाभी माँ ने सात सौ सीता के रूप बना डाले हैं। इस बात को तो भगवान राम ही जान पाए।

लखा न मरम राम बिनु काहू। माया सब सिय माया माहू।।

कोई भी यह मर्म नहीं जान पाया केवल भगवान राम ने यह मर्म जाना कि अरे! कर दिया राजनीति सीता जी ने। 'माया सब' सभी तो मायाएँ हैं और 'सिय माया

माहू' सीता जी तो मायाओं की भी माँ हैं। वहीं से सारी मायाएँ प्रकट होती हैं। इसलिये भगवान राम कहते हैं कि राक्षसों की माया को दूर करने के लिये मुझे 'महामाया' की आवश्यकता पड़ेगी और महामाया का प्रयोग मैं बाण के द्वारा ही कर सकूँगा। इसलिये आप मेरे आग्नेय बाण में रह लीजिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

यदि वा, सीता जी ने कहा कि मैं कहाँ रहूँ ? भगवान राम ने कहा कि आप पावक में रहिये! सीधी सी बात है सीते कि मैं अग्नि हूँ क्योंकि आपके पीहर में परशुराम जी ने कहा था-

जय रघुवंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुलदहन कृशानू।।

हे सूर्य-कुल-कमल को विकसित करने के लिये सूर्य, राक्षस कुल रूप वन को जलाने के लिये आप अग्नि हैं। अतः हे सीते मैं जब तक राक्षसों का विनाश करूँ, तब तक आप मेरे बाएँ भाग में मत बैठिये, बल्कि मुझमें ही समा जाइये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

आप 'पावक' में निवास कर लीजिये अर्थात् मुझमें ही समा जाइये और कहाँ जाइयेगा आप!

अब इस पर आपको मैं बहुत गम्भीर चर्चा सुना रहा हूँ। वास्तव में यह बात बिल्कुल सही है और यह तथ्य इतना सटीक है, इतना अनुकूल है, इसका वर्णन किया नहीं जा सकता। देखिये, यदि भगवान राम का यह संकेत न होता कि आप मुझमें समा जाइये, तो कदाचित् सीता जी उनकी बात न मानतीं! देखिये, सीता जी के वियोग के दो प्रकरण हैं-एक प्रकरण है अयोध्या में और एक प्रकरण है पञ्चवटी में। अयोध्या में भी भगवान राम सीता जी से अलग होने के लिये कह रहे हैं पञ्चवटी में भी परन्तु सीता जी क्यों अयोध्या वाला प्रकरण नहीं मानती हैं और पञ्चवटी वाला प्रकरण मान लेती हैं।

आइये, विषय को और स्पष्ट करने के लिये अपनी माताओं, बहनों और मित्रों को अयोध्या ले चलते हैं। देखिये, अयोध्या का राजमहल है। भगवती सीता जी के सम्बन्ध में जो कौसल्या जी की मान्यता है, उसे वह राम जी के समक्ष स्पष्ट कह देती हैं कि देखो, तुम्हारा जाना तो स्पष्ट हो गया है 'जाहु सुखेन बनहिं' पर सीता जी का क्या होगा ?

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहिं पियारी।।

सीता जी बहुत सुकुमारी हैं। वो अपनी सासुओं को, ससुर जी को और अपने परिजनों अर्थात् परिवार वालों को अत्यन्त प्रिय हैं। ये वन को नहीं जा सकतीं। कौसल्या जी पक्ष दे रही हैं कि सीता जी किसी भी प्रकार वन को नहीं जा सकतीं क्योंकि-

पलँग पीठ तजि गोद हिण्डोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।।

सीता जी ने कभी कठोर पृथ्वी पर चरण रक्खा ही नहीं और सबसे बड़ी समस्या है, वन विष की वाटिका है और सीता जी सञ्जीवनी मूरी हैं।

करि केहरि निशिचर चरहिं, दुष्ट जन्तु बन भूरि।
विष वाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि।।

विष की वाटिका में कहीं सञ्जीवनी मूरी अच्छी लगती है मानों राम जी ने विनोद किया कि यदि ऐसा है तो राम जी को वन में ले ज़ाना पड़ेगा, क्योंकि लक्ष्मण जी मूर्छित होंगे-

लाय सँजीवनि लखन जियाए। श्री रघुबीर हरषि उर लाए।।

सीताजी सञ्जीवनी तो हैं ही। कौसल्या जी ने साफ कह दिया कि ये वन को नहीं जा सकतीं क्योंकि-

सिय बन बसिहिं तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती।।

लगता है राम जी इसीलिये और चिन्तित हैं कि निशाचरों के नाश में वानरों की आवश्यकता होगी क्योंकि बिना वानरों के राक्षसों का मरण होगा नहीं,

हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे।।

रावण ने कह दिया वानर और मनुष्यों को छोड़कर हम किसी के मारे नहीं मरेंगे और कौसल्या जी तो कहती हैं कि सीता जी तो बानरों का चित्र देखकर भी डर जाती हैं। तो राम जी ने कहा कि सीते, जब आप वानरों का चित्र भी देख कर डर जाती हैं और यहाँ वानरों के बिना कुछ काम ही नहीं चलने वाला है। आप अट्ठारह यूथपति वानरों को कैसे देखेंगी ? इसलिये कृपा करके-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

सीताजी ने कहा निशाचरों के नाश तक क्यों ? क्योंकि 'चित्रलिखित कपि देखि डेराती।' आप तो चित्रलिखित कपि को देखकर डर जाती हैं और यहाँ तो-

अस मैं सुना श्रवन दशकन्धर। पदुम अठारह जूथप बन्दर।।

इसीलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अतएव भगवती जी अग्नि में रहेंगी और वो भिन्न-भिन्न अग्नि होंगी। अब मेरा अन्तिम के पक्षों में एक पक्ष यह है कि सीता जी से भगवान राम कह रहे हैं कि आप मेरे में ही रह जाओ, वाम भाग में मत रहो क्योंकि अब तक तो 'जानकी मम उर वास है', जानकी जी के हृदय में मैं रहता हूँ और अब जानकी जी मुझमें रहें तो आनन्द आएगा! भगवान का स्वभाव रसगुल्ले के समान है। रसगुल्ले के बाहर भी रस और रसगुल्ले के भीतर भी रस। रस में रसगुल्ला और रसगुल्ले में रस। उसी प्रकार सीता जी में राम जी और राम जी में सीताजी देखो, तुम लोग नजर मत लगाना!

एतावता, कौसल्या जी ने तो कह दिया कि सीताजी किसी प्रकार वन नहीं जा सकतीं। यदि भवन में रहें तो मेरे लिये बहुत अच्छा रहेगा। अब राम जी भी उनको समझाने का प्रयास कर रहे हैं। आश्चर्य यह है कि राम जी ने भगवती जी को तीन दोहे में समझाया और तीन ही दोहे में सीताजी ने उनके पक्ष का खण्डन भी किया। राम जी की स्थापना हो रही है कि आप अयोध्या में रहो और सीताजी उनके एक-एक सिद्धान्त का खण्डन उसी प्रकार कर रही हैं जिस प्रकार कोई महिला फटाफट सब्जी काट देती है। मानो आज वो सब्जी काटने की लीला कर रही हैं। राम जी कहते हैं कि सीते-

राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू।।

हे राजकुमारी, मेरी सिखावन सुनो! मैं शिक्षा दे रहा हूँ।

सीता जी का खण्डन यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। सीता जी कहती हैं कि सिखावन दिया किसको जाता है पहले यह निश्चित हो जाए। सिखावन तो विद्यार्थी को दिया जाता है और मैं आपकी विद्यार्थी हूँ क्या ? मैं आपकी विद्यार्थी नहीं, जो आप मुझे सिखावन दें, मैं आपकी मित्र हूँ! मैं शिष्या नारद जी की हूँ तो शिक्षा मैं नारद जी की सुन सकती हूँ। सीताजी ने भगवान जी से एक विनोद किया कि सिखावन तो नारी देती है तो क्या आप नारी हैं ? आप तो नारायण हैं। तो नारायण कबसे सिखावन देने लगे ? इसलिये सिखावन देने का आपका अधिकार ही नहीं है और यहीं से प्रारम्भ हो गया उनका खण्डन।

अब, फिर राम जी ने कहा-

आपन मोर नीक जौ चहहू। बचन हमार मानि घर रहहू।।

यदि आप अपना और मेरा भला चाहती हैं तो मेरा वचन मानकर घर में रह लीजिये!

सीता जी ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। मैं आपका वचन मानकर घर में रहूँगी पर पहले यह निश्चित हो जाए कि घर है कौन ? क्या अयोध्या को आप घर मानते हैं ?

राम जी ने कहा कि अयोध्या घर नहीं है क्या ?

सीता जी ने कहा कि अयोध्या घर नहीं है। अयोध्यावासी ही कह रहे हैं–

घर मसान पुरजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।।

ये श्मशान है, घर नहीं।

राम जी ने कहा कि आप इसे श्मशान कैसे कहती हैं ? तो सीता जी ने कहा कि श्मशान उसे ही तो कहते हैं, जहाँ मुर्दा सोया हो और पिताजी की मृत्यु हो रही है यहाँ सो रहे हैं 'तेल नाव भरि नृपतनु राखा' जहाँ आठ आठ दिन तक मुर्दा सोया रहे तो वह श्मशान नहीं है? इसलिये मुझे आप श्मशान में रहने की तो बात नहीं कर रहे हैं?

भगवान ने कहा नहीं, नहीं। ये बताओ कि फिर घर क्या है ?

सीता जी ने कहा–

लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।

अब तो बन ही मेरा घर है! पूरा खण्डन कर दिया। 'नगर सफल जनु गहबरि गारीं' नगर तो वन हो गया और वन भवन हो गया।

राम जी कहते हैं कि मैं आपको आज्ञा दे रहा हूँ।

आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।।

आप सासुओं की सेवा करियेगा!

सीता जी ने कहा कि पहले यह निश्चित हो जाए कि सासू हैं कौन ? क्या कौसल्या जी सासू हैं ?

राम जी ने कहा कि हाँ।

सीताजी ने कहा कि कैसे ? जो सासू है वो तो कह ही नहीं रही हैं और आप कहते हैं कि कौसल्या जी सासू हैं। कौसल्या जी तो स्वयं कह रही हैं कि आज से मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ और न दशरथ जी तुम्हारे पिता हैं।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी।।

वनदेव तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ तुम्हारी माता होंगी! सीता जी ने कहा कि जो आपकी माँ होंगी, वही तो मेरी सासू होंगी। अब तुम्हारी माता वनदेवी तो फिर वनदेवी हुईं हमारी सासू और यदि जंगल में नहीं चलूँगी तो फिर सासू की सेवा कहाँ से मैं कर पाउँगी ? अतः कहती हैं-

बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।।

राम जी ने कहा कि आदर पूर्वक सास ससुर की सेवा करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है-

एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।।

सीता जी ने कहा कि बिल्कुल ठीक! तब तो मुझे वन चलना ही पड़ेगा। क्योंकि-

सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असन अमिय सम कन्द मूल फर।।

सीता जी ने राम जी से फिर कहा कि यदि यही सबसे बड़ा धर्म है तो मैं तो वन अवश्य ही चलूँगी क्योंकि मुनि पत्नियाँ मेरी सासू हैं और मुनिवर मेरे ससुर हैं, तो अब तो उन्हीं के चरणों की पूजा करूँगी।

जितने पक्ष राघव सरकार दे रहे हैं, उन सभी पक्षों को सीता जी सहजता से काट देती हैं। कितनी बुद्धिमत्ता है हमारी बहूरानी जी में!

अब राम जी फिर कह रहे हैं कि मैं तुम्हें माता के हित के लिये रख रहा हूँ 'सुमुखि मातु हित राखहुँ तोही, क्योंकि-

जब जब मातु करिहिं सुधि मोरी। होइहिं प्रेम बिकल मति भोरी।।

जब-जब माताजी मेरा स्मरण करके पागल जैसी जाएँ

तब तब तुम कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझाएहु मृदु बानी।।

तब-तब आप पुरानी कथा कहकर मेरी माता को समझाइयेगा।

सीता जी ने कहा, आप नारी होते तो नारी की परिस्थिति समझ पाते। आप तो नारायण बने, नारी तो बने नहीं। एक बार मोहनी में बने थे तो गड़बड़ कर दिया था। अच्छा ये बताइये कि कथा सुनाने का काम किसका होता है ? छोटों को बड़े कथा सुनाते हैं या बड़ों को छोटे कथा सुनाते हैं। आज तक आपने संसार में सुना है कि सासू को बहू नहीं समझाती! मैं समझाने लगूँगी तो कौसल्या माँ चार डण्डे मारेंगी कि तुम मुझे समझाने आई हो! इसलिये आपका यह वाक्य पूर्ण अव्यवहारिक है। यह

धर्मसंगत नहीं है। आप विग्रहवान धर्म होंगे पर नारी धर्म समझाना आपके बस का नहीं। राघव जी के एक-एक पक्ष का खण्डन कर दिया सीता जी ने। कुछ सुस्थिर ही नहीं हो पा रहा है।

राम जी ने कहा कि हठ मत करो!

गुरु श्रुति सम्मत धर्म फल, पाइय बिनहिं कलेश।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश।।

जो धर्म गुरु, श्रुति सम्मत हो, उसका फल मिलता है।

भगवती जी ने कहा कि बिल्कुल, पति का अनुगमन करना, पत्नी के लिये श्रुति सम्मत भी है और गुरु-सम्मत भी है। गुरुजन भी कहते हैं कि पतिव्रता को पति का अनुगमन करना चाहिये। श्रुतियाँ भी कहती हैं-

मार्गं मनुष्येश्वर धर्मपत्नी
श्रुतेरिवार्थं श्रुतिरन्वगच्छत।

पत्नी तो पति के साथ रहती ही है।

अनुचरति शशांकं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वन वृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति नहि करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्रम्
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथाहि नार्यः।।

अरे, चन्द्रग्रहण लगने पर भी रोहिणी चन्द्रमा को नहीं छोड़ती। जो वृक्ष गिरता है तो लता साथ-साथ गिर पड़ती है। कीचड़ में फँसे हुए हाथी को हथिनी नहीं छोड़ती उसी प्रकार सीता को तो राम जी के साथ जाना ही चाहिये क्योंकि 'भर्तृनाथाहि नार्यः।'

एतावता, राम जी ने कहा कि आप हठ करेंगी तो दुख मिलेगा!

सीता जी ने कहा कि मैं हठ नहीं कर रही हूँ, मैं तो धर्म का पालन कर रही हूँ। यदि पिता को धर्मात्मा बनाने के लिये, आप धर्म का पालन करने के लिये वन को चले जा रहे हैं तो अपने धर्म का पालन करने के लिये मुझे भी आपके साथ चलना चाहिये। नहीं तो नारी ही क्या ? बहुत सुन्दर पक्ष दिया कि आप यही तो कह रहे हैं कि मैं यहाँ सुख से रहूँगी, तो ऐसा नहीं है-

तन धन धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू।।

कितना उज्ज्वल पक्ष है सीताजी का! सीता जी ने कहा कि देखिये ये बारह नाते हैं-

मात पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सदन समुदाई।।

सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुशील सुखदाई।।

माता, पिता, बहन, भाई, परिवार और गृह ये छः सम्बन्ध पीहर के और सासू, ससुर, गुरु, मित्र, सहायक और पुत्र ये छः सम्बन्ध ससुराल के, इस प्रकार ये बारहों सम्बन्ध पति के बिना, बारहों सूर्य के समान तपाने वाले हो जाते हैं।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते।।

बारहों सूर्य मिलकर के उतना कष्ट नहीं दे पाते। पति के बिना माता, पिता कोई भी हो, सब कष्ट ही तो देते हैं और कौन सुख देता है! कितने भी बड़े घर की बेटी हो, परन्तु बेटी पीहर में किसी को कुछ दे नहीं सकती है, देने के लिये कहेगी, पहले मैं अपने भैय्या से पूछ लूँ, अपने भतीजे से पूछ लूँ परन्तु जब वो अपने घर में चली जाती है तो कहती है कि अब किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं, पति से पूछने की आवश्यकता नहीं। मेरा अधिकार है मैं दे रही हूँ। आप दिन रात व्यापार करते हैं, तब सेठ बनते हैं और घरवाली बिना कुछ किये ही चकाचक सेठानी बन जाती है। वकील साहब के तो चश्मा लग गया भारतीय संविधान करते-करते और उनकी पत्नी बिना परिश्रम के वकीलाइन बन गईं। डॉक्टर ने श्रम किया, तब वह किसी प्रकार एम०बी०बी०एस० और एम०डी० कर पाया और उसकी पत्नी को चाहे सुई लगाना भी न आता हो, कुछ भी न आता हो, पर वो डाक्टराइन बन गई। तो, ये उसका एक अपना अधिकार है। कभी पत्नी अपने पति से पूछने नहीं जाती क्योंकि ये उसका अपना अधिकार है। वाइफ़ अपने हसबैण्ड से पूछती है पर पत्नी, पति से नहीं पूछती। क्योंकि इसकी कोई आवश्यकता नहीं। पति को भी अपनी पत्नी से कभी हिसाब नहीं लेना चाहिये कि कितना खर्च किया! अरे, जितना लाए हो, दे दो, फिर घर चलाने का अधिकार उनका। जिस दिन पत्नी से पति ने हिसाब ले लिया तो घर बरबाद हो जाएगा, यह सिद्धान्त है! लिखित ले लो। 'द्वापर' काव्य में यही तो 'मैथिलीशरण गुप्त' जी ने लिखा-कि जब भगवान कृष्ण आ रहे हैं और उनको भूख लगी है। सभी ब्राह्मणियाँ उनके लिये भोजन ले जा रही हैं। उस समय एक ब्राह्मणी भी उनके लिये भोजन ले जा रही थी तब तक दौड़कर उसके पति ने पकड़ लिया कि कहाँ जा रही हो ? उसने कहा कि मैं भगवान कृष्ण के लिये भोजन लेकर जा रही हूँ।

ब्राह्मण ने कहा कि उसके लिये क्यों भोजन लेकर जा रही हो, वो तो छैला है।

ब्राह्मणी ने कहा कि तुम्हें शरम नहीं आई ? क्या इतना भी मेरा अधिकार नहीं रहा ? घर की नौकरानी मैं बनी ! क्या केवल बच्चे उत्पन्न करने के लिये ही पत्नी का प्रयोग होता है ? उसने कहा–

हम तुम पति पत्नी दोनो थे,
जग के इस अध्वर में।
पर मेरा पत्नीत्व मिटाया,
तुमने यह क्षण भर में।
मुट्ठी भर भी मैं न दे सकी,
दासी मैं थी आहा!
यज्ञ नष्ट हो गया तुम्हारा,
मेरा सब कुछ स्वाहा!

वो फिर कहती है–

कामुक! चाटुकारिता ही थी,
क्या यह गिरा तुम्हारी।
एक नहीं दो दो मात्रा में,
नर से भारी नारी।।
किन्तु आर्य नारी तेरा हो,
केवल एक ठिकाना।
तू चल वहाँ जहाँ से तेरा।
ना हो लौटकर आना।।

ले जाओ इस शरीर को ! माता पिता ने तुम्हें यह शरीर दिया है परन्तु आत्मा तो कृष्ण की है ! परमात्मा की है ! जा रही हूँ और यह कहकर शरीर छोड़ दिया और दिव्य शरीर से भगवान कृष्ण के पास चली गई।

भारतीय संविधान में नारी दासी नहीं है, वो गृह स्वामिनी है, गृहलक्ष्मी है। सीता जी को नींद आ जाती है और प्रभु श्रीराम उनको धीरे धीरे निहार रहे हैं और कहते हैं–

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः,
रसावस्यास्पर्शो वपुषबहलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिर मसृणो मौक्तिक सरः,
किमस्या नो प्रेयो यदि परमसह्यस्तुविरहः।।

भगवान राम ने कहा कि 'इयं गेहे लक्ष्मी' सीता जी मेरे घर की लक्ष्मी हैं 'इयममृतवर्तिर्नयनयोः' सीता जी मेरी आँखों की अमृतवर्तिका हैं। 'असावस्यास्पर्शः वपुष बहलश्चन्दनरसः' सीताजी का स्पर्श मुझे इतना शीतल लगता है मानों मेरे शरीर पर चन्दन का छिड़काव हो रहा है। 'अयं कण्ठे बाहुः' हमारे गले में पड़ी हुई जो सीता जी की बाहु है लगता है मानों कोमल और चिकनी मोती की लड़ी है। भगवान राम ने कहा कि इनका सब कुछ प्रिय है केवल वियोग अप्रिय है।

इसलिये, जहाँ भारतीय व्यक्तित्वों का वर्णन होता है, भारतीय मूल्यों का वर्णन होता है, स्पष्ट है कि पत्नी का क्या प्रयोग होना चाहिये 'पत्युर्नुं यज्ञ संयोगे' यज्ञ के संयोग में उसका प्रयोग होता है। एतावता, सीता जी ने राम जी के सभी पक्षों का खण्डन किया कि आप कहते हैं कि यहाँ रहो तो तुमको सुख मिलेगा तो क्या आप मुझे रुग्ण करना चाहते हैं, बीमार करना चाहते हैं ?

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।

मेरे लिये भोग रोग के समान है, आभूषण भार हैं, सारा संसार यम यातना देने वाला है।

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसे नाथ पुरुष बिनु नारी।।

मेरा जीवन क्या है! सारे सुख आपसे ही हैं। सीता जी ने फिर कहा कि आप ये बताइये कि कष्ट क्या है। राम जी ने कहा-

भूमि शयन बलकल बसन, अशन कन्द फल मूल।
सो कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल।।

सीते, आपको पृथ्वी पर सोना पड़ेगा, वल्कल पहनना पड़ेगा, कन्द मूल खाना पड़ेगा!

भगवती जी ने कहा कि अच्छा एक बात बताइये कि आपके सामने दो वस्तु रक्खी जाएँ, एक ओर फूलों से सजी हुई सेज और दूसरी ओर भाता कौसल्या की गोद, तो आप हृदय से बताइये कि आप इन दोनों में से किसको चुनेंगे ?

राम जी ने कहा कि माता की गोद को चुनूँगा।

सीता जी ने कहा कि जब से मैंने जन्म लिया है, मैं अपनी माँ की गोद के लिये तरसती रही हूँ कि मुझे अपनी माँ की गोद मिल जाती! जन्मी तो जनक जी ने पाला, गद्दे रजाई दे डाले। विवाहित हुई तो आपके यहाँ आ गई और मेरी माँ तो है पृथ्वी तो जिस माँ की गोद के लिये मैं अब तक तरसती रही, तो कम से कम अब चौदह वर्ष तक अपनी माँ की गोद में तो रह लूँगी!

आप कहते हैं कि वल्कल वस्त्र पहनना पड़ेगा तो आप ये तो जानते ही हैं न, कि नैहर की बालू भी प्रिय होती है। गरीब से गरीब भाई तो भाई होता है और ये पेड़ मेरे भाई हैं और आपकी माता जी ने मेरे आभूषण तो उतरवा ही दिये हैं तो मैं गर्व से कहूँगी कि चौदह वर्षों तक मैने आपका कपड़ा नहीं पहना, अपने भैय्या का कपड़ा पहना। तो वृक्षों की छाल ही मेरे भाई की दी हुई साड़ी होगी।

कन्दमूल फल तो मेरी माँ के दिये हुए पदार्थ हैं। मैं कन्द मूल फल खाऊँगी और चौदह वर्षों तक तुम्हारी माँ का दिया हुआ नहीं खाऊँगी।

राम जी चकित रह गए। सारे पक्ष खण्डित हो गए, ये क्या हो रहा है ? राम जी ने कहा–

कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी।।

कानन बड़ा भयंकर है। बड़ा तीखा घाम लगेगा, सर्दी लगेगी।

सीता जी ने कहा कि सब ठीक है! मुझे सब सहन होगा! तब सीता जी ने एक बड़ा सुन्दर पक्ष दिया! अच्छा ये बताओ, कि यदि कड़ाके की धूप हो और उस धूप के सामने बादल आ जाए, तो क्या धूप लगेगी ? नहीं लगेगी! जब धूप लगेगी तो आपके शरीर को तो माता जी ने कहा ही है–'लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा' तो आप जब मेरे सामने रहेंगे तो बादल मुझे मिलता ही रहेगा और मुझे धूप नहीं लगेगी। माने कितनी चतुरता से खण्डन करती हैं।

राम जी ने कहा कि अच्छा एक बात है–

कुश कण्टक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना।।

कुश, कण्टक, कंकड़ ये बड़े भयंकर भयंकर हैं और कोई जूता तो है नहीं।

सीता जी ने कहा कि ये मुझे कष्ट नहीं देंगे क्योंकि ये हमारे भैय्या हैं। तो भैय्या थोड़े ही बहन को कष्ट देता है? और सबको ये कष्ट दे सकते हैं पर मुझे कष्ट ये नहीं देंगे, क्योंकि मैं भी भूमि–नन्दिनी हूँ और ये भी भूमि से उत्पन्न हुए हैं।

भगवान राम ने कहा कि आप जानती तो हैं ही तो कि-

नराहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं।

नरभक्षी राक्षस वहाँ रहेंगे।

सीता जी ने कहा कि उनसे मैं नहीं डरती क्योंकि जब मैंने आपसे विवाह किया था तो आप उस समय राक्षसों को मारकर आए थे। विश्वामित्र जी ने परिचय दिया था-

राम लखन दोउ बन्धुवर, रूप शील बलधाम।
मख राखे सुर साखि जग, जिते असुर संग्राम।।

तो जब आप बाल्यावस्था में राक्षसों को मार सकते थे, तो अब नहीं मार सकते?

राम जी ने अगला पक्ष दिया कि 'निशिचर निकर नारि नर चोरा' ये राक्षस बड़े चोर होते हैं।

सीता जी ने कहा कि मैं चोरों से नहीं डरती क्योंकि चोर के साथ तो मैं भी ब्याहकर आई हूँ!

राम जी ने कहा चोर के साथ ब्याह कर आई हो ?

सीता जी ने कहा कि हाँ, जनकपुर वालों ने आपको चोर कहा था-

श्याम गौर मृदु बयस किशोरा। लोचन सुखद बिश्व चितचोरा।।

आप विश्व चितचोर हैं और-

सुन्दर श्यामल गौर तनु बिश्व बिलोचन चोर।

तो मैं तो चोर के साथ ही ब्याहकर आई हूँ और ये भी चोर हैं तो 'चोर-चोर मौसेरे भाई' ये थोड़े ही चुराएँगे। सीता जी ने इतने सुन्दर-सुन्दर पक्ष दिये कि राम जी का कोई पक्ष ठहर ही नहीं रहा है।

राम जी ने कहा-

डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।।

धीर लोग भी वन का स्मरण करने पर डरते हैं और तुम तो स्वभाव से ही डरने वाली हो।

सीता जी ने कहा कि पहले यह बताइये कि मैने जब आपके साथ विवाह किया था, तो सब लोग डर रहे थे, मैं भी डर रही थी पर आप तो नहीं डर रहे थे ? इसलिये मेरा वन जाना बहुत आवश्यक है।

सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु।

हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्रीरघुबीरु।।

राम जी ने कहा कि तुम वन जाने योग्य नहीं हो।

हंसगमनि तुम नहिं बन जोगू। सुनि अपजस मोहि देहइँ लोगू।।

हे हंसगमनी तुम वन के योग्य नहीं हो! मेरी माताजी ने कहा कि-

सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।।

हंसकुमारी डाबर के योग्य नहीं होती! हंसकुमारी मरुस्थल के योग्य नहीं होती और तुम हंसगमनी हो।

सीता जी ने कहा कि ऐसा है कि आप अपनी माँ की बात मानिये और मैं अपनी माँ की बात मानूँगी। आपकी माँ ने मुझे हंसकुमारी कहा और मेरी माता सुनयना जी ने आपको बाल मराल कहा-

सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मन्दर लेहीं।।

तो ये बताइये कि जब बाल मराल वन में जा सकता है तो बाल मरालिका वन में क्यों नहीं जा सकती ? यदि मेरा वन जाना निरस्त होगा तो आपका वन जाना भी तो निरस्त होगा। इस प्रकार इसका भी गम्भीर खण्डन कर दिया।

राम जी ने कहा कि अच्छा देखो, करील के वन में कोयल नहीं रह सकती-

नवरसाल बन बिहरहिं शीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।।

सीता जी ने कहा कि वहाँ करील कहाँ है ? वहाँ तो आम हैं-

नाथ देखियहिं बिटप बिशाला। पाकरि जम्बु रसाल तमाला।।

ये लीजिये खण्डन हो गया! आप कहते हैं कि करील के वन में कोकिला नहीं रहती पर रसाल में तो कोयल रहेगी। इसलिये चित्रकूट में तो कोयल कूजेगी ही।

कोई पक्ष ही नहीं रहने दे रही हैं। सारे पक्षों का खण्डन भगवती जी ने कर दिया।

राम जी ने कहा कि मुझे बहुत डर लग रहा है 'निशिचर निकर नारि कर चोरा।

सीता जी ने कहा कि अच्छा, आप यह बताइये कि जब आप धनुष तोड़ने आ रहे थे तो कैसी ठवनि में थे। कैसे मटक रहे थे आप, सही बता दीजिये! मैंने आपको देख लिया था, तभी तो आपके गले में जयमाला डाली थी। उस समय-

ठाढ़े भए उठि सहज सुहाए। ठवनि जुवा मृगराज लजाए।।

आप मृगराज के समान हैं और आपके भैय्या लक्ष्मण जी सिंह के बच्चे के समान हैं तो मैंने सोचा कि जब शेर है और शेर का बच्चा है तो शेरनी होनी चाहिये इसलिये मैं सिंह की बहू हूँ।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंहबधुहिं जिमि शशक सियारा।।

आपके साथ रहते हुए मुझे कौन देखने का साहस कर सकता है ? क्या सिंहनी को खरगोश और गीदड़ देखा करते हैं ? इसलिये मैं वन चलूँगी और मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी–

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू।।

या तो शरीर, प्राण दोनों चलें यदि शरीर नहीं जाएगा तो प्राण जाएँगे, यह निश्चित है। तब भगवान राम ने स्वीकार कर लिया।

मैं यह निवेदन कर रहा था कि जो सीताजी एक भी क्षण राम जी का वियोग नहीं सह पा रही थीं, और आज राम जी सीधा कह रहे हैं–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

बताइये, इतनी बड़ी विभीषिका को सीताजी सह कैसे रही हैं ? जो 'बचन बियोग न सकी सँभारीं जब राम जी ने वहाँ कहा तो–

अस कहि सीय बिकल भईं भारी। बचन बियोग न सकीं सँभारी।।

जो राघव जी के वचन का वियोग भी नहीं सह पाईं, इतना ही नहीं, जब सुमन्त्र जी के समक्ष प्रस्ताव आया तो वहाँ स्पष्ट खण्डन करते हुए कहा–

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।।

कि सूर्यनारायण को छोड़कर प्रभा कहाँ जाएगी ? चन्द्रमा को छोड़कर चन्द्रिका कहाँ जाएगी ?

इससे यह स्पष्ट लगता है कि सीताजी की मान्यता आज अयोध्या से कुछ भिन्न हो चुकी है परन्तु मान्यता भिन्न नहीं है। मान्यता तो वही है, जो पहले थी। सीताजी, राम जी से अलग नहीं हो सकतीं और राम जी, सीताजी से अलग नहीं हो सकते! वहाँ राम जी उनसे अलग होने की बात कर रहे थे परन्तु यहाँ अलग होने की बात नहीं कर रहे हैं। यहाँ तो यह ही कह रहे हैं–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

ऐसा इसलिये है क्योंकि भगवान यह संकेत कर रहे हैं कि वह पावक मैं ही हूँ

'वसूनां पावकश्चास्मि' वसुओं में अग्नि मैं हूँ। अग्नि मेरी विभूति है और परशुराम जी स्वयं यह कह चुके हैं और सीताजी सुन चुकी हैं-

जय रघुवंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू।।

परशुराम जी ने तो कहा ही पर इतना ही नहीं उनके गुरुदेव अर्थात् शंकर भगवान भी कहते हैं कि रामचन्द्र जी अग्नि हैं और यह बात भी सीता जी ने सुना उस समय सीताजी राम जी के वामभाग में विराज रही थीं। शंकर भगवान ने कहा-

मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृतबरचाप रुचिर कर सायक।।

मोह महा घन पटल प्रभञ्जन। संशय बिपिन अनल सुर रञ्जन।।

रामचन्द्र जी, संशय रूप वन को नष्ट करने के लिये अग्नि हैं।

आगे चलकर अयोध्यावासी भी कहेंगे-

संशय शोक निबिड़तम भानुहिं। दनुज गहन घन दहन कृशानुहिं।।

रामचन्द्र जी साक्षात् अग्नि हैं। 'अग्निमीले पुरोहितम्' वेद ने सबसे पहला जो मंगलाचरण किया तो कहा-

अग्निमीले पुरोहितम्। यज्ञस्यदेवमृत्विजम्, होतारं रत्नधातवम्।

ये पहला मन्त्र है अग्नि का। तो प्रश्न हो सकता है कि वेद का पहला मन्त्र अग्नि के लिये क्यों हो गया ? तो कहते हैं कि अग्नि के लिये नहीं, पहले राम जी के लिये हुआ 'अग्निमीले पुरोहितम्', वेद ने कहा कि जो पुरोहित है, हमारा पुरोधा है उस अग्नि की हम पूजा करते हैं, स्तुति करते हैं अथवा 'पुरोहितम्' पुरःहितं यस्य' जो सामने-सामने हित करता है, छिपकर हित नहीं करता है, 'अग्नि' 'अग्रेनीयते' जो सबसे आगे रहता है, 'राम राम सत्य हैं' सबसे पहले राम का ही नाम लिया जाता है। 'यज्ञस्य देवं ऋत्विजम्' जो यज्ञ का देवता है, ऋत्विज भी है, जो स्वयं ऋत्विज 'ऋतुषुयजते' जो हवन करने वाला है, 'रत्नधातवम्' जो रत्नान्य धातुओं को जन्म देता है, ऐसे परमात्मा श्रीराम हैं।

एतावता, आज भगवान राम ने कहा कि प्रिये, आज मैं ललित नरलीला करूँगा। मेरा शरीर भी अग्नि है। अग्नि के समान नहीं, साक्षात् अग्नि है। भुषुण्डी जी भी कह रहे हैं-

काल कोटि शत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूमकेतु शत कोटि सम दुराधरष भगवन्त।।

करोड़ों धूमकेतु माने अग्नि के समान, इसलिये 'अग्निर्देवता' भगवान साक्षात् अग्नि हैं।

'अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्योदेवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रादेवतादित्यादेवता मरुतोदेवता विश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवता वरुणो देवता" इसका क्या अर्थ है ? देवता माने रामचन्द्र। 'अग्निर्देवता' अग्नि भी रामचन्द्र हैं। 'वातोदेवता' वायु भी रामचन्द्र हैं। 'सूर्योदेवता' सूर्य नारायण भी रामचन्द्र हैं। 'चन्द्रमादेवता' चन्द्रमा भी रामचन्द्र हैं। 'वसवोदेवता' वसुगण भी रामचन्द्र ही हैं। 'रुद्रादेवता' रुद्रगण भी राम रूप ही हैं, राम हैं, रुद्र भी राम हैं। 'आदित्यादेवता' सूर्यनारायण के स्वरूप बारहों आदित्य भी रामचन्द्र जी ही हैं। 'मरुतोदेवता' मरुद्गण भी रामचन्द्र जी ही हैं। 'विश्वेदेवादेवता' सभी देवता रामचन्द्र जी ही हैं। 'बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवता' बृहस्पति भी राम हैं, इन्द्र भी राम हैं। 'वरुणोदेवता' वरुण भी राम हैं। सब कुछ राम हैं। राम के बिना कुछ नहीं। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

और देखिये, जब हनुमान जी महाराज सीता जी के सामने पहुँचे और राम जी का सन्देशा सुनाया, तो सीताजी ने कहा कि 'तुमहिं देखि शीतल भइ छाती' तुम्हें देखकर मेरी छाती शीतल हो गई तो हनुमान जी थोड़ा सा मुस्कुराने लगे। तब सीता जी ने कहा कि क्यों मुस्कुरा रहे हो ? हनुमान जी ने कहा कि एक बात मुझे समझ में नहीं आई कि एक बार तो आप पहले यह कह चुकी हैं कि-

कबहुँ नयन मम शीतल ताता। होइहैं निरखि श्याम मृदु गाता।।

क्या श्याम शरीर रघुनाथ जी को निहारकर कभी मेरे नेत्र शीतल होंगे ? आज वही सीता जी फिर यह कैसे कह रही हैं कि

तुमहिं देखि शीतल भइ छाती। पुनि मो कहँ सोइ दिन सोइ राती।।

यह कैसे हो गया ? आप दो बातें कैसे बोलने लगीं ?

तब सीता जी ने कहा कि मेरे बच्चे, मैं दो बातें नहीं बोल रही हूँ पर तुमको समझ में नहीं आ रहा है क्योंकि जब मैंने यह कहा था कि 'कबहुँ नयन मम शीतल ताता। होइहैं निरखि श्याम मृदु गाता।। उसके पश्चात् ही मेरी दृष्टि तुम्हारी छाती पर पड़ गई और-

जासु हृदय आगार बसहिं राम शर चाप धर।

तब मुझे तुम्हारे हृदय में राम जी के दर्शन हो गए और तब राम जी का दर्शन

कर मेरी आँखें शीतल हो गईं। इसलिये मेरी बात बिलकुल सही है और मेरी प्रतिज्ञा बिल्कुल सही है। एतावता, एक मुझको जिज्ञासा है कि राम जी को तुमने हृदय में कैसे रक्खा है और तुमको क्यों मुस्कुराहट आ गई ?

हनुमान जी ने कहा कि मुझे मुस्कराहट इसलिये आ गई क्योंकि मैने राम जी को अपने हृदय में अग्नि के रूप में रक्खा क्योंकि नियम होता है, सुग्रीव जी ने कहा था कि-

भानु पीठि सेइय उर आगी। स्वामिहिं सर्वभाव छल त्यागी।।

'भानु पीठि' सूर्यनारायण का सेवन पीठ से करना चाहिये और अग्नि को हृदय से सेवन करना चाहिये, तो मैने माता जी भगवान को दोनों ओर से लिया। सूर्य मानकर, 'लिये दोऊ जन पीठि चढ़ाई' मैने उनको पीठ पर बैठा लिया और अग्नि मानकर मैंने उनको हृदय में रख लिया।

सीता जी ने कहा कि वहाँ तुमने पहले 'अग्नि' क्यों नहीं माना ?

हनुमान जी ने कहा कि सुग्रीव भानुपुत्र थे और मुझे 'भानु-पुत्र' सुग्रीव को 'भानु' (रामचन्द्र जी) से मिलाना था, इसलिये मैंने राम जी को सूर्य माना इसीलिये मैंने 'लिये दोऊ जन पीठि चढ़ाई' और जब लंका में आना था तो मुझे रावण की नगरी लंका को जलाना था और लंका को जलाने के लिये मुझे अग्नि चाहिये थी। इसलिये राम जी को मैंने अग्नि मान लिया, परन्तु मुझको यह जिज्ञासा है कि अग्नि को देखकर आपको शीतलता का अनुभव क्यों हो रहा है ?

सीता जी ने कहा कि यही तो बात है कि अग्नि शीतलता का भी कार्य करती है और तुम इसे समझ नहीं पा रहे हो! अग्नि से बिजली भी तो उत्पन्न होती है। फ्रिज, एयरकण्डीशनर आदि सब बिजली से ही तो ठण्डा कर देते हैं। इसलिये ही तो मैंने कहा-

कबहुँ नयन मम शीतल ताता। होइहैं निरखि श्याम मृदु गाता।।

धूमज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातक्वमेघः।

ज्योति का ही परिणाम शीतलता है 'अग्नेरापः' अग्नि से जल की उत्पत्ति होती है। इसलिये, हनुमान जी महाराज, राम जी से शीतलता ही मिलेगी! इसीलिये 'तोहि देखि शीतल भइ छाती।'

इसलिये भगवान राम ने कह दिया कि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अथवा भगवान राम एक बहुत अच्छी बात कह रहे हैं वो कहते हैं कि 'तुम पावक महँ करहु निवासा' मेरा प्रताप भी तो अग्नि है-

राम प्रताप 'हुताशन' कक्ष विपक्ष समीर समीर दुलारो।

मेरा प्रताप भी अग्नि है। इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

मेरे प्रताप रूप अग्नि में भी आप विराजमान हो जाओ!

अथवा, भगवान ने कहा कि एक काम करो सीते, मैं तुमको एक बहुत सुन्दर अग्नि बता रहा हूँ-

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ज्ञान घन।

हनुमान जी स्वयं 'खल बन 'पावक' हैं-'दनुजवनकृशानुम्' इसलिये एक काम करो-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

तुम हनुमान जी रूप अग्नि में निवास कर लो, तब हनुमान जी को शक्ति मिल जाएगी! अब तक शक्ति नहीं मिली, बालि और सुग्रीव का युद्ध होता रहा और हनुमान जी पूँछ दबाकर चुपके से देखते रहे, कुछ भी नहीं कर पाए इसलिये तुम हनुमान जी में निवास करो जिससे हनुमान जी में शक्ति आ जाए। एक मुष्ठिका लगाने पर फिर राक्षसों का प्राणान्त हो जाए।

सीता जी ने कहा कि कब तक ?

भगवान राम ने कहा कि जब तक मैं राक्षसों का नाश करता हूँ तब तक आप उनमें निवास कर लो! इसका लाभ यह रहेगा कि हनुमान जी को यह ज्ञान रहेगा कि सबको जलाना चाहिये पर विभीषण को बचाना चाहिये क्योंकि-

पुनि सब कथा विभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।।

इसलिये आप हनुमान जी रूप अग्नि में निवास करिये। तभी तो-

जारा नगर निमिष एक माहीं। एक विभीषन कर गृह नाहीं।।

इतना जब कहा तो-

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।

सीता जी ने अपने हृदय में भगवान राम के चरणों को धारण किया और 'अनल समानी' अर्थात् भिन्न-भिन्न व्याख्यात् अग्नियों में सीताजी समा गईं, प्रवेश कर गईं।

आज बहुत प्रसन्न नहीं हैं सीताजी। वो आज मुस्कुराई भी नहीं, कुछ बोली भी नहीं। कोई बात नहीं, आज्ञा है तो आज्ञा का पालन करना चाहिये परन्तु उन्हें लक्ष्मण जी का वियोग खटक रहा था। राघव जी तो मुझे मिल जाएँगे पर मेरा लखन मुझे नहीं मिलेगा। माने उनको लक्ष्मण जी का वियोग था पर अग्नि में समा गईं और अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रख दिया–

निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील बिनीता।।

उसी प्रकार का रूप, उसी प्रकार का शील, उसी प्रकार की विनम्रता रखकर सीता जी अग्नि में पधार गईं।

लछिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।

लक्ष्मण जी भी इस मर्म को नहीं जान पाए, अग्नि में प्रवेश हो चुका!

अब हम और आप दो दिन में यह सिद्ध करेंगे, अभी एक चर्चा और कर लेते हैं। नरलीला का प्रारम्भ हो गया और नरलीला के प्रारम्भ में सबसे पहली नरलीला जहाँ की गई, कनक मृग का वध हुआ।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा।।

भगवान ने ललित नरलीला का प्रारम्भ कर दिया। माया की सीता ने फिर कहा–

जाहु बेगि संकट तव भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता।।

लक्ष्मण जी ने समझाया कि उन पर भला कोई संकट पड़ेगा क्या!

सीता जी ने हठ किया पर लक्ष्मण जी नहीं मान रहे हैं। सीता जी पक्ष दे रही हैं पर लक्ष्मण जी यही कह रहे हैं कि नहीं जाऊँगा।

तब सीता जी ने राम जी से कहा कि लक्ष्मण जी नहीं मान रहे हैं क्या करूँ ? वायरलेस लगाकर पूँछा।

तब राम जी ने कहा कि फिर बता दो, तब–

मरम बचन सीता जब बोली। हरि प्रेरित लछिमन मति डोली।।

सीता जी मरम वचन बोलीं। कौन सा मरम वचन ? वही मरम वचन 'लछिमन हूँ यह मरम न जाना' सीता जी बोल रही हैं। सीता जी ने कह दिया कि बार बार कह रही हूँ, हठ करते हो ? अरे पगले, मैं तुम्हारी सीता माँ नहीं हूँ, यह जो छिपा हुआ मर्म था, जिसको नहीं बताया जा सकता था कि मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ, मैं माया की

सीता हूँ। यदि तुम नहीं जाओगे तो मेरा हरण नहीं होगा और मेरा हरण नहीं होगा तो राक्षसों का मरण भी नहीं होगा और जब राक्षसों का मरण नहीं होगा तो काहे को आए हो यहाँ अवतार लेकर, कचौड़ी खाने आए हो क्या ? अरे, तुम्हारे आगमन का क्या प्रयोजन है ?

तब लक्ष्मण जी की मति डोल गई और फिर लक्ष्मण जी चल दिये, ये नरलीला का प्रारम्भ हुआ और नरलीला सीमा तक गई और जहाँ-जहाँ प्रकरण देखियेगा, नरलीला होती ही गई और अग्नि की सीता साक्षी बनी रहीं। माया की सीता कभी-कभी ऊब जाती और इस रहस्य को कुछ लोग जानते थे। सती जी भी पश्चात् इस बात को जान पाईं कि ये माया की सीता हैं। इसीलिये सती जी ने 'अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।' अपने को योगाग्नि में जला दिया क्योंकि वो जानती हैं कि गलती मैंने की है और वो गलती भी सीता जी के प्रति ही की है, उनके प्रति ही यह अपराध किया है। वो सीता जी को ढूंढ़ने भी गईं कि सीताजी हैं कहाँ? तब उन्हें पता चला कि सीता जी अग्नि में हैं तो उन्होंने सोचा कि तब तो मैं अपने को अग्नि में जलाकर ही अग्नि में रहने वाली सीता जी से क्षमा माँग लूँगी। इसीलिये आप देखिये कि सुन्दरकाण्ड में बार-बार माया की सीता अग्नि माँग रही हैं-

१. त्रिजटा से कहती हैं-**आन काठ रचि चिता बनाई।**

२. ब्रह्मा से कहती हैं- **मिलहिं न पावक मिटइ न शूला।**

३. ताराओं से कहती हैं-**देखियत प्रगट गगन अंगारा।**

४. चन्द्रमा से कहती हैं-**पावकमय शशि स्त्रवत न आगी।**

५. अशोक से कहती हैं-**सुनहु बिनय मम बिटप अशोक।**

अब आप विचार करिये कि इन पाँचों से सीता जी अग्नि क्यों माँग रही हैं, इसका एक ही तात्पर्य है कि माया की सीता अब ऊब गई हैं और मानो सीता जी से कहने लगीं कि जब संयोग का समय था, तब तो आप थीं और जब कष्ट का समय आया तो आपने मुझे बैठा दिया! जब प्रिय वाणी सुनने का समय था तब तो आप थीं और अब 'सुनै को श्रवन शूल सम बानी रावण की शूल सी वाणी सुनने के लिये आपने मुझे बैठा दिया, बहन मैं तो चली, अपना कार्यभार सँभालो।

सीता जी ने कहा कि नहीं, अभी ऐसा न करो! अभी आनन्द करो क्योंकि मैं तो अभी अग्नि में हूँ।

माया की सीता ने कहा कि आप अग्नि में हैं परन्तु राम जी का संयोग है और यहाँ तो मेरा शरीर ही अग्नि से जल रहा है। आप भीतर अग्नि में और मैं बाहर अग्नि में जलूँ! आप सञ्जोगाग्नि में हैं और मैं वियोगाग्नि में हूँ।

अन्ततोगत्वा रावण का वध हो रहा है और रावण के वध के पश्चात् अब वह वास्तविक सीता जी कैसे आएँगी, इसकी चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

सप्तम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।।

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ अष्टम् वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क १९-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।

श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।

कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।

श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान आनन्दकन्द प्रभु, नरलीला की सफलता के लिये प्रिया जी को अग्नि में निवास करने की बात कह रहे हैं कि आपकी उपस्थिति में मैं ललित नरलीला नहीं कर सकता, उदात्त नरलीला कर सकता हूँ और अभी मुझे कुछ ललित नरलीला करनी है। हमारी भारतीय संस्कृति की जो साहित्यिक परम्परा है उसमें चार प्रकार के नायक होते हैं–

१. धीरोदात्त
२. धीरोद्धत्त
३. धीर ललित, और
४. धीर प्रशान्त

सीताजी धीरोदात्त नायक की नायिका हैं 'मुग्धा नायिका' और यहाँ 'विदग्धा नायिका' की आवश्यकता होगी इसलिये, अब माया की सीता चाहिये और गोस्वामीपाद 'उत्तरकाण्ड' में बहुत स्पष्ट कह रहे हैं–

पुनि माया सीता कर हरना। श्री रघुबीर बिरह कछु बरना।।

ये माया की सीता हैं और इनके साथ मायापति ललित नरलीला कर सकते हैं। यहाँ सब कुछ करना पड़ेगा! लीला शक्ति में छल करना पड़ेगा। सब झूठा झूठा करना पड़ेगा। माया माने झूठा। अब रोना पड़ेगा। यहाँ राम जी रोएँगे। खग-मृग, पशु-पक्षी सबसे सीता जी के सम्बन्ध में पूछेंगे। वहाँ कोई पूछने वाला है क्या ? उनसे कोई पूँछे कि क्यों प्रभु, ये दोहरे मापदण्ड क्यों ? आप इसीलिये तो रो रहे हैं कि आपको कोई भगवान न माने, परन्तु जब जटायु को मोक्ष देना होता है तो आपका भगवत्व क्या छिपा रहता है ? क्या साधारण व्यक्ति जो नारी के विरह में रो रहा है वो जटायु को मोक्ष दे देगा ? जो नारी के वियोग में रो रहा है वो क्या जटायु का दाह

संस्कार अपने हाथ पर करवाएगा ? जो नारी के विरह में रो रहा है वो क्या एक बाण से बालि को मार सकेगा ? जो नारी के वियोग में रो रहा है, क्या वो धनुष पर सन्धाने हुए बाण द्वारा सागर को खौला सकेगा ? जो नारी के वियोग में रो रहा है, क्या उसका नाम लेकर सागर में पत्थर तैरेंगे ? इसलिये भगवान ने कहा कि सारी नरलीला ललित नहीं करूँगा 'कछु करब' ऐश्वर्य तो रहेगा पर कहीं-कहीं कुछ ललित नरलीला मैं करूँगा, इसलिये आप अग्नि में निवास कर जाओ और वही हुआ 'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी' सीता जी अपने हृदय में भगवान के चरणों को धारण करके अनल में समा गईं। अनल माने 'न अलं यस्मिन्' जिसमें अलम् नहीं रहता, जिसमें कभी पर्याप्ति नहीं होती, यहाँ तक कि सीताजी भी समा गईं, कोई अन्तर नहीं पड़ा और सीता जी के कारण ही अग्नि का भरपूर प्रयोग किया गया और संयोग से लंका में वियोग की लीला, माया की सीता ने बहुत अच्छी की क्योंकि सीताजी का वियोग राम जी से हो ही नहीं सकता। भगवान राम से सीताजी पूछती हैं कि क्यों मेरी उपस्थिति में आपको नरलीला करने में आपत्ति आएगी ?भगवान ने कहा कि ललित नरलीला में वियोग का अभिनय करना पड़ेगा और तुमसे मेरा वियोग हो नहीं सकता क्योंकि-

गिरा अरथ जल बीचि सम, देखियत भिन्न न भिन्न।

अन्य प्रतियों में 'कहियत भिन्न न भिन्न' पाठ है परन्तु वास्तव में है 'देखियत भिन्न न भिन्न।'

जैसे वाणी को अर्थ से नहीं अलग कर सकते, जैसे जल को लहर से नहीं अलग कर सकते, उसी प्रकार सीताजी राम जी से अलग हो ही नहीं सकतीं और यदि अलग न होने पर भी राम जी वियोग का अभिनय करेंगे तो राम जी को झूठा कहा जाएगा असत्यवादी कहा जाएगा। देखो, जीव और ब्रह्म में एक ही अन्तर है कि जीव असत्य बोल सकता है पर भगवान कभी असत्य नहीं बोलते ! अब भगवान सीता जी को ढूँढेंगे, असली सीता जी को थोड़े ही ढूँढ सकते हैं और वियोग का नाटक करने के लिये माया की सीता ही उनसे दूर हो सकती है। मायापति से माया दूर हो सकती है पर मायापति से उनकी निज की छाया कभी दूर नहीं हो सकती! इसलिये 'पुनि माया सीता कर हरना' अतएव वियोग का नाटक प्रारम्भ हो गया। लक्ष्मण जी के सामने कह दिया-

रघुपति आवत अनुजहिं देखी। बाहिज चिन्ता कीन्ह बिशेषी।।
जनकसुता परिहरी अकेली। आयउ तात बचन मम पेली।।

राम जी ने 'बहिज चिन्ता' की बाहर से चिन्ता की, मन में थोड़ी चिन्ता की। बाहिज माने बाहर से। राम जी ने कहा कि अरे लक्ष्मण, तुमने बहुत बड़ी गलती कर दी, जनकसुता को तुमने अकेली छोड़ दिया। सीता तो चली गईं। तब राम जी ने कहा कि चुप, चुप, चुप! मैं वियोग का अभिनय कर रहा हूँ और मैं वियोग का अभिनय करूँगा-

निशिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं।।

सीता जी मेरे मन में तो हैं परन्तु आश्रम में नहीं हैं अर्थात् माया वाली सीता का हरण हुआ है, अतः अब मैं वियोग का नाटक करूँगा वो माया वाली सीता जी के साथ करूँगा, ऐसा मत सोचना कि भैय्या झूठ बोल रहे हैं। मैं कभी झूठ नहीं बोलता-

अनृतं नोक्त पूर्वं में, न वक्ष्यामि कदाचन्।

वाल्मीकि रामायण में भगवान ने प्रतिज्ञा की कि मैंने कभी झूठ नहीं बोला और न बोलूँगा!

यहाँ गणित के विद्वान बैठे हैं, तो वो यही कहेंगे कि गुरुदेव, झूठ तो बोला था राम जी ने, ये गणित वाले तो अपने दादा को भी नहीं क्षमा करते। ये कहेंगे कि भगवान ने शूर्पणखा वाले प्रसंग में झूठ तो बोला था कि-

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।

सीता जी को निहारकर शूर्पणखा से राम जी ने कह दिया कि 'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता' मेरे छोटे भाई तो कुमार हैं जबकि उर्मिला जी के साथ ही लक्ष्मण जी का विवाह, राम जी के विवाह के साथ ही हुआ था। अब आप कहेंगे कि ये तो झूठ है गुरु जी, परन्तु हम तो यही कहेंगे कि यह झूठ तो है ही नहीं क्योंकि राम जी की प्रतिज्ञा है कि मैं कभी झूठ नहीं बोलता! परमात्मा कभी झूठ नहीं बोलते, क्योंकि-

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं,
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋत सत्य नेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

भगवान का व्रत भी सत्य है, भगवान सत्य में विराजते हैं, 'त्रिसत्यं' तीनों कालों में भगवान सत्य हैं, भगवान सत्य के जन्मदाता हैं, भगवान सत्य में ही निहित हैं,

भगवान सत्य के भी सत्य हैं, भगवान के ऋत और सत्य दोनों नेत्र हैं, 'सत्यात्मकं' सत्य भगवान की आत्मा भी है।

इसलिये, भगवान कभी झूठ नहीं बोलते! जीव झूठ बोलता है। युधिष्ठिर ने कहा कि मैं झूठ कभी नहीं बोलूँगा!

भगवान ने कहा कि तब तो तुम भगवान हो जाओगे और तुम्हें मुझे भगवान नहीं बनाना है। एक बार तो बच्चू, तुमको झूठ बोलना ही पड़ेगा 'अश्वत्थामा मृतो नरो वा कुञ्जरो।

युधिष्ठिर ने झूठ बोला कि 'अश्वत्थामा मृतो नरो वा कुञ्जरो' युधिष्ठिर को पता तो था ही कि अश्वत्थामा हाथी मरा है। अश्वत्थामा हाथी भी है और अश्वत्थामा द्रोण का पुत्र भी है तो द्रोण के पुत्र को तो किसी ने मारा नहीं है, हाथी को मारा है भीमसेन ने। और भगवान ने कहलवा दिया कि 'अश्वत्थामा मरा', 'अश्वत्थामा मरा', 'अश्वत्थामा मरा', सत्य तो यह है कि हाथी मर गया पर सब लोग तो यही कह रहे हैं द्रोणाचार्य से कि हाथी नहीं मरा, बेटा मर गया और द्रोणाचार्य को तो पुत्र के वियोग में ही मरना था। भगवान ने कहा कि अरे! मर गया बेटा! अब धनुष-बाण हटाओ बाबा, मर जाओ!

द्रोणाचार्य ने कहा कि सब लोग झूठ बोल सकते हैं पर युधिष्ठिर कभी झूठ नहीं बोल सकते।

भगवान ने कहा कि आज युधिष्ठिर को भी झूठ बोलना पड़ेगा!

युधिष्ठिर ने कहा कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा।

भगवान ने कहा कि आज तो युधिष्ठिर को भी झूठ बोलना पड़ेगा। बड़े सत्य के सम्राट बने हो, अरे जब द्रौपदी जी को भरी सभा में निर्वस्त्र किया जा रहा था, तब कहाँ गया था आपका सत्य ? जब छोटे से बालक को सात-सात महारथियों ने कपट से मारा, तब कहाँ गया था आपका सत्य ? इसलिये जो मैं कहूँ वही कहो-

युधिष्ठिर ने कहा फिर मैं क्या कहूँ ?

भगवान ने कहा कि केवल 'वा' बोल देना 'अश्वत्थामा नरो वा कुञ्जरो' नरः तक उनको सुनाई पड़ेगा, तब तक मैं 'पाञ्चजन्य शंख' बजा दूँगा तो वो 'वा कुञ्जरः नहीं सुन पाएँगे, नमो राघवाय हो जाएगा।

युधिष्ठिर ने कहा 'अश्वत्थामा मृतो नरो वा कुञ्जरः' नरो तक तो सुनाई पड़ा,

तब तक तो जोर से शंख बज गया 'वा कुञ्जरः' नहीं सुनाई पड़ा। अर्थात् युधिष्ठिर को भी थोड़ा सा झूठ बोलना पड़ा।

भगवान ही केवल ऐसे हैं जो कभी झूठ नहीं बोलते! यहाँ लग रहा है कि-

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।

शूर्पणखा ने भगवान राम से कहा था कि तुम मेरे साथ विवाह कर लो, तब भगवान राम ने कहा कि मेरे पास तो पत्नी है 'सीतहिं चितइ' सीता जी की ओर देखकर इशारा किया और कहा कि तुम रानी तो नहीं बन सकतीं तब और क्या बनना चाहती हो? युवरानी भी नहीं बन सकतीं। तब शूर्पणखा ने कहा कि कुँअरानी बनकर सन्तोष कर लूँगी पर रहूँगी तुम्हारे ही पास। तब भगवान ने कहा कि ठीक है-'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता' 'मेरे छोटे भाई अविवाहित हैं, क्या भगवान ऐसा कहना चाहते हैं? नहीं। तो फिर, भगवान कहना चाहते हैं कि 'कुमार' शब्द को ध्यान से सुन लीजियेगा तो आपको समझ में आ जाएगा। आज भगवान शूर्पणखा की भाषा में ही बोल रहे हैं और नियम यह होता है कि जो जिस भाषा में बोले, उससे उसी भाषा में बोलना चाहिये। अब मान लीजिये कि हम आध्यात्मिक भाषा में बोल रहे हैं और आप दूसरी भाषा में बोलें तो कैसे समझ में आएगा? कोई गणित की भाषा बोल रहा हो और आप संस्कृत के सूत्र लगाएँगे तो कैसे चलेगा? आज भगवान ने शूर्पणखा से कहा कि तुम्हारी भाषा का नियम यह है कि पति का न रहना, कुँआरापन का सूचक है, जबकि तुम्हारे पति की मृत्यु हो चुकी है पर तुम्हारे देश में ऐसा माना जाता है कि चाहे हजार विवाह किये जाएँ पर पति नहीं है तो वह अविवाहित मानी जाएगी। तो जैसे पति के न रहने से तुम अपने को कुमारी घोषित कर रही हो तो तुम्हारी ही परिभाषा के अनुसार लक्ष्मण जी की पत्नी नहीं हैं तो वह कुमार हैं 'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता', अब बताओ कि कहाँ झूठ बोला भगवान ने, बस उसकी ही भाषा में बोल दिया।

मायाचारो माया। माया वर्तितव्यः।

मायिक के सामने उसी भाषा में बोलना चाहिये।

अब दूसरी बात, देखिये, विनोद में बोला हुआ झूठ, झूठ नहीं माना जाता। बहुत लोग झूठ बोलते हैं विनोद में। पर विनोद में कभी भी असत्यभाषण का पाप नहीं लगता है। भागवत में एक व्यवस्था है-

स्त्रीषु नर्म विवाहे च, वृत्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणहिंसार्थे, नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।।

सामान्य स्त्रियों से यदि कोई असत्य भाषण कर दे, अपनी पत्नी से नहीं, अपनी पत्नी से कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये और आजकल यही तो हो रहा है। पत्नियाँ कहती हैं उनकी कि गुरु जी, ये हमसे झूठ बोलते हैं। आज व्यक्ति अपनी स्त्री से झूठ बोलता है पर सामान्य स्त्री से झूठ नहीं बोलता। नियम यह है कि अपनी पत्नी से कभी असत्य नहीं बोलना चाहिये। परनारी चौथ का चन्द्रमा है पर अपनी पत्नी द्वितीया का चाँद है। फिल्म वालों ने कहा कि चौदहवीं का चाँद, तो हमने कहा कि धूमकेतु, तुम नहीं जानते, अपनी पत्नी कभी चौदहवीं का चाँद नहीं होती, वो द्वितीया की चाँद होती है। द्वितीया का चाँद जितना सम्मान पाता है, उतना सम्मान किसी को नहीं मिला। अरे, भगवान शंकर के मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा ही सुशोभित होता है। इसलिये पत्नी द्वितीया का चाँद है जो विश्वास रूप शंकर के मस्तक पर विराजती है। द्वितीया के चाँद और चतुर्थी के चाँद में अन्तर है, भले ही चौदहवीं का चाँद, द्वितीया के चाँद की अपेक्षा चटकीला हो पर चौथ का चाँद कलंकित है और द्वितीया का चाँद वन्दित है-

१. सो परनारि लिलार गोसाईं। तजहु चौथ के चन्द की नाईं।।

इसलिये, शूर्पणखा सामान्य स्त्री है, वहाँ विनोद में झूठ बोलने में कोई पाप नहीं है। 'नर्म' माने विनोद। भगवान राम ने विनोद किया कि ये देखो इसकी मूर्खता कि स्वयं ये विवाहित है। अरे, इसका तो पति मर गया है और ये कहती है कि 'ताते अब लगि रहेउँ कुमारी', अरे चमोनी, जैसे तुम कुमारी तो वैसे मेरा भैय्या भी कुमार है।

२. 'विवाहे' विवाह में झूठ बोल दो तो चलेगा। बहुत लोग झूठ बोल देते हैं, कुण्डली तक बदलवा डालते हैं 'बायोडाटा' में अवस्था कम करवा देते हैं, क्या करेंगे आप! चलो, उसमें भी झूठ बोलने में पाप नहीं लगेगा क्योंकि विवाह हो जाने दो!

३. 'वृत्यर्थे' अर्थात् जीविका संकट में हो और वहाँ झूठ बोल दो तो वहाँ पाप नहीं लगेगा। इसीलिये तो व्यापारियों को झूठ बोलने में पाप नहीं लगता क्योंकि ये उनकी वृत्ति है।

४. 'प्राणसंकटे' अर्थात् जब प्राणसंकट में हों और आप झूठ बोल दो, तो कोई पाप नहीं लगेगा।

५. 'गोब्राह्मणार्थे' गौ और ब्राह्मण की रक्षा करने के लिये यदि आपको झूठ बोलना पड़े, तो कोई पाप नहीं लगेगा।

६. 'हिंसायाम्' यदि आपके झूठ बोलने से हिंसा रुक जाए तो झूठ बोलने में पाप नहीं लगेगा।

इस प्रकार, 'नर्म' अर्थात् विनोद में यदि भगवान ने झूठ भी बोला हो तो झूठ नहीं माना जाएगा। यद्यपि झूठ बोला ही नहीं, यह है दूसरा समाधान।

अब तीसरा समाधान, भगवान राम बिल्कुल सही कह रहे थे कि 'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।' देखो, यह जो कुमार शब्द है, वह विवाहित के लिये नहीं है। यह पारिभाषिक है। राजकुल में तीन ही पद लड़कों के होते हैं-

१. राजा

२. युवराज, और

३. राजकुमार

रामचन्द्र जी राजा हैं, भरत जी युवराज हैं और लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी राजकुमार हैं।

इसीलिये सुग्रीव जी, हनुमान जी से कह रहे हैं-

सुनु हनुमन्त संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा।।

ये देखिये, कुमार से यहाँ तात्पर्य लक्ष्मण जी से है अतः अहइ 'कुमार' मोर लघु भ्राता', तो भगवान ने कहाँ झूठ बोला ? उन्होंने कहा कि मैं राजा हूँ, भरत जी युवराज हैं और मेरे ये जो छोटे भैय्या, इस समय जो मेरे साथ हैं, कुमार हैं। इनके साथ ब्याह करके कुअँरानी बन जाना, चलो चल जाएगा!

अथवा, भगवान राम ने और बढ़िया बात कही वो कह रही थी कि 'मन माना कछु तुमहिं निहारी' आपको देखकर कुछ मेरा मन प्रसन्न हुआ है क्योंकि मैं तो गोरी-गोरी हूँ और आप साँवले पड़ते हैं।

भगवान ने कहा कि यदि तू मेरे कालेपन पर चिढ़ती है तो 'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता' मेरे छोटे भैय्या तो 'कुमार' हैं 'कुत्सितः मारः येन सःकुमारः' इतने सुन्दर हैं कि कामदेव भी उन पर कुत्सित हो गया है। 'कौमार इव कुमारः' 'कु' माने पृथ्वी और 'मार' माने कामदेव तो पृथ्वी पर साक्षात् कामदेव ही हैं-

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।

अथवा, पाणिनीय व्याकरण में एक धातु है 'कुमार धातु', उसका नाम है 'कुमार क्रीडायाम्' कुमार धातु माने खेलना।

भगवान ने कहा कि देखो, जब तुम अब तक कुमारी हो यह कहकर, तुम हिन्दू संस्कृति के साथ खिलवाड़ कर रही हो तो मेरा भाई 'लघु भ्राता कुमार, मोर अहै' कुमार मोर है अर्थात् मेरा भाई मोर का छोटा सा बच्चा है और तुम हो 'अहिनी' अर्थात् सर्पिणी तो मोर के बच्चे और सर्पिणी के बीच में, खेल-खेल में नाक कान कटें तो कोई हानि नहीं होगी। मेरा छोटा भाई तो 'कुमार' अर्थात् बहुत अच्छा खिलाड़ी है और खेल में किसी का अंग-भंग हो जाता है तो कोई पाप नहीं लगा करता।

अथवा, भगवान ने कहा कि शूर्पणखा, वास्तव में मेरे छोटे भाई कुमार हैं, अविवाहित हैं। सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण तो अविवाहित नहीं हैं क्योंकि उर्मिला से उनका विवाह हो चुका है किन्तु जबसे सीता जी ने इनको अपना पुत्र बनाया है 'तात तुम्हारि मातु बैदेही', तबसे अभी इनका विवाह नहीं हुआ है। तभी तो सीता जी कहती हैं कि 'जल को गए लखन हैं लरिका', इसलिये राम जी ने 'सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता' सीता जी की ओर देखकर इशारा किया कि तेरह वर्ष का हो गया है आपका बेटा, कब इसका विवाह करोगी ? देखो बहुत बढ़िया दुलहिन आई है, कर लो न विवाह! सीता जी की दृष्टि से लक्ष्मण जी अभी अविवाहित हैं। इसलिये 'सीतहिं चितइ' कहा। क्योंकि वनवास के समय लक्ष्मण जी शिशु थे। शिशु माने छोटा सा बच्चा। 'मैं शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला।' वनवास में तेरह वर्ष बीत गए, चौदहवाँ वर्ष चल रहा है अब ये विवाह के योग्य हो गए हैं। इसलिये-

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुमार मोर लघु भ्राता।।

एतावता, भगवान कभी झूठ नहीं बोलते। निरन्तर वो सत्य ही बोलते हैं। भगवान कहते हैं कि-

जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।

यदि मैं जानता कि वन में बन्धु का बिछोह होगा तो पिताजी की बात नहीं मानता। सही बात है वन में बिछोह कहाँ हुआ, अरे वन में बिछोह थोड़े ही हुआ। 'पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू' मर्यादा पुरुषोत्तम ऐसा क्यों बोलेंगे ? तो कहते हैं कि ठीक बोला! इस प्रकार बोलेंगे-'पिता बचन मनतेउँ' एक वाक्य और 'नहिं ओहू।' पिता जी की बात मान लेता और उनकी बात नहीं मानता अर्थात् सीता जी की बात नहीं मानता 'नहिं ओहू' क्योंकि पिताजी ने सुमन्त्र से कहलवाया था कि-

बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। फेरेहु सीय सहित दोउ भाई।।

वन दिखाकर, गंगा नहलाकर सीता सहित लक्ष्मण और राम को लौटा लाना और यदि राम जी न लौटें तो–

तौ तुम बिनय करब कर जोरी। फेरिहिं प्रभु मिथिलेश किशोरी।।

तो पिताजी की बात मानकर मैं सीताजी को अयोध्या लौटा देता और जब सीताजी अयोध्या में रहतीं तो रावण द्वारा उनका हरण कैसे होता ? यदि मैं जानता कि वन में मेरे भाई से मेरा बिछोह होगा तो पिताजी की बात मानकर सीता जी को वापस अयोध्या भेज देता और 'नहिं ओहू' अर्थात् सीताजी जो कह रही थीं कि 'प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।।' वो उनकी बात नहीं मानता अर्थात् पिताजी की बात ही प्रामाणिक रहती। बिल्कुल ठीक कहा।

अब तीसरा प्रश्न करो कि फिर राम जी ने कैसे कहा–

निज जननी के एक कुमारा। तासु तात तुम प्राण अधारा।।

राम जी लक्ष्मण जी के लिये कहते हैं कि तुम अपनी माता के इकलौते लड़के हो, उनको तुम प्राणों से अधिक प्यारे हो और 'सौंपेहु मोहि तुमहिं गहि पानी' उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर तुम्हें सौंपा है। मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ?

तो क्या लक्ष्मण जी, सुमित्रा जी के एक ही पुत्र हैं ? शत्रुघ्न जी उनके पुत्र नहीं हैं क्या ? सुमित्रा जी के दो पुत्र हैं–

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत भइ ओऊ।।

सुमित्रा जी के दो पुत्र लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न जी स्पष्ट हैं, फिर राम जी ने यह कैसे कहा कि 'निज जननी के एक कुमारा' यहाँ पर भी भगवान जी ने झूठ नहीं बोला है, क्योंकि 'एक' शब्द का अर्थ यहाँ 'प्रधान' है। 'एकः अन्ये प्रधाने च' एक माने प्रधान तो यहाँ पर 'निज जननी के 'एक' कुमारा' से यह तात्पर्य है कि अपनी माँ के मुख्य पुत्र तुम ही हो। कहाँ झूठ बोला भगवान ने ?

'निज जननी के एक कुमारा' का दूसरा अर्थ यह है कि वास्तव में राम जी बिल्कुल सही बोल रहे हैं क्योंकि यह भी विचार करो कि क्या वर्तमान में सुमित्रा जी उनकी माता हैं ? नहीं हैं, वर्तमान में लक्ष्मण जी की माताजी सीता जी हैं।

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।।

इसलिये–

निज जननी के एक कुमारा। तासु तात तुम प्राण अधारा।।

हे लक्ष्मण, अपनी माँ के तुम एकमात्र कुमार हो। सीता जी तुम्हें पुत्र मानती हैं। हनुमान जी तो माया की सीता के पुत्र हैं। और लक्ष्मण 'तासु तात तुम प्राण अधारा', उनके तुम प्राण के आधार हो। जब वो अग्नि में प्रवेश कर रही थीं तो 'सौंपेहु मोहि तुमहिं गहि पानी' मेरा हाथ पकड़कर कहा था कि, देखना, लक्ष्मण जी का बाल बाँका नहीं होना चाहिये! तो यह बताओ कि सीताजी को मैं क्या उत्तर दूँगा? 'उतर काह दैहउँ मैं जाई।'

इसलिये, जब परमात्मा वियोग की लीला करेंगे तो उन्हें वियोग की लीला में माया की सीता की उपस्थिति चाहिये। इसीलिये कह दिया कि–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

संयोग से, अब ललित नरलीला का उपसंहार होगा। फिर मर्यादापूर्ण लीला करने का चरित्र आएगा और अब सीता जी को अग्नि से प्रकट करना है क्योंकि जहाँ समाई थीं वहीं से निकलेंगी। आप पंक्ति पढ़िये–

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय 'अनल' समानी।।

'अनल' शब्द पकड़कर रखिये। 'अनल' में चली गई हैं सीताजी अतः अब वो इसी 'अनल' से निकलेंगी–

सीतहिं प्रथम 'अनल' महँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी।।

वही पंक्ति ध्यान करिये 'प्रभु पद धरि हिय 'अनल' समानी' और उसी प्रकार 'सीतहिं प्रथम 'अनल' महँ राखी', सीताजी को पहले 'अनल' में भगवान रख चुके हैं और अब उन्हींको 'प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी' अन्तर्साक्षी परमात्मा श्रीराम प्रकट करना चाहते हैं। रावण वध हो चुका, नरलीला हो चुकी। अब वियोग-लीला करने की आवश्यकता नहीं। अब विलाप नहीं करने पड़ेंगे। अब किसी का वध नहीं होगा। अब तो अवध में जा रही हैं। अवध जहाँ किसी का वध ही नहीं होता, वो अवध होता हैं। इसीलिये 'तेहि कारन करुनानिधि', कहे कछुक दुर्बाद।' माया की सीता को भगवान ने कुछ दुर्बाद अर्थात् कुछ कटु वचन कहे! क्या बिगाड़ा था माया की सीता ने जो भगवान ने कटु वचन कहे! अवश्य ही बिगाड़ा था क्योंकि यह भगवान का स्वभाव है कि वो अपने अपराध से कभी दुखी नहीं होते–

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।।

किन्तु–

जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।

मानस जी में शब्दों को मिलाने में ही तो आनन्द है! भगवान बृहस्पति जी इन्द्र से कह रहे हैं कि राम जी का स्वभाव है कि वो अपने अपराध पर कभी दुखी नहीं होते पर जब कोई भक्त का अपराध कर देता है तो राम जी के क्रोध की अग्नि में वो जल जाता है। आज माया की सीता से एक भक्त का अपराध हो गया है और वो भक्त हैं लक्ष्मण जी। राम जी ने तो लक्ष्मण जी से कहा है-

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी।।

यहाँ लक्ष्मण जी की कोई गलती तो नहीं है और वास्तव में सीताजी की भी कोई गलती नहीं है क्योंकि उनको तो लक्ष्मण जी को वहाँ से भेजना है परन्तु भगवान कहते हैं कि क्या किसी का गला काटकर भेजोगी ? हमारे लक्ष्मण को तुमने कटु वचन क्यों कहा, पहले यह बताओ हमार लछिमनुवा को कोई कटु नहीं कहता, क्योंकि-

लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।।

लालयेत् पंचवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

पाँच वर्षों तक बालक का लालन करो और फिर दस वर्षों तक उनको 'ताडयेत्' माने शिक्षा दो और सोलहवें वर्ष में पुत्र को मित्र मान लो, फिर कुछ मत बोलो!

लक्ष्मण जी के लिये सीता जी ने कहा कि तब तो मेरा ताडन का अधिकार है।

राम जी ने कहा कि नहीं, लक्ष्मण जी निरन्तर शिशु हैं। वो पाँच वर्ष से ऊपर कभी जाते ही नहीं हैं, समस्या तो इस बात की है। इसीलिये तो 'लालन जोग' उनका लालन करना चाहिये था और दूसरी बात, ताडन का अधिकार माँ को होता है, आप उनकी माँ थीं क्या ? अरे, आप तो उनकी मौसी थीं, तो मौसी को पीटने का अधिकार थोड़े ही होता है। आपने अपने अधिकार का दुरुपयोग किया है।

भगवान का यह स्वभाव रहा है कि भक्त के अपराध को वो नहीं सह पाते। एक उदाहरण से आप इस बात को ठीक-ठीक समझ जाओगे। आप सोचिये कि जब व्यक्ति भगवान का दर्शन करता है तो वह सारे पापों से छूट जाता है। फिर किसी प्रकार की विधि उसे करणीय नहीं रहती परन्तु आप आश्चर्य कर रहे होंगे कि जिन परशुराम जी ने अनेक क्षणों तक भगवान के दर्शन किये, परशुराम-लक्ष्मण संवाद के पश्चात् वही परशुराम तपस्या के लिये क्यों चले गए ?

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहिं तप हेतू।।

सोचिये, कि 'भृगुपति गए बनहिं तप हेतू' भृगुपति क्यों तपस्या करने के लिये बन को चले गए ? जबकि भरद्वाज जी कहते हैं कि राम जी के निहारने मात्र से सारी तपस्याएँ सफल हो जाती हैं-

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू। आज सुफल जप जोग बिरागू।।
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू।।

भरद्वाज जी भगवान राम से कहते हैं कि हे राघवेन्द्र, आपके निहारने मात्र से आज मेरी सम्पूर्ण तपस्या, तीर्थ, त्याग, जप, योग, वैराग्य सब सफल हो गए। भगवान को निहारने से जब तपस्या सफल होती है फिर क्यों परशुराम जी को भगवान के दर्शन के बाद भी तपस्या के लिये वन को जाना पड़ा। सिद्धान्त यह है-

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किं ?
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किं ?
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किं ?
नान्तर्बहिर्यदिहरिस्तपसा ततः किम् ?

भगवान के लिये ही तो तपस्या होती है। भगवान के दर्शन के पश्चात् भी परशुराम जी को तपस्या करनी पड़ी, इसका क्या कारण है ? और इसका कारण है, परशुराम जी समझ गए। भगवान ने कहा कि मेरे दर्शन का जो पुण्य हुआ था आपको आपने मेरे भक्त का अपमान करके उस पुण्य को समाप्त कर डाला है। लक्ष्मण जी को अपमानित करके आपने सारे पुण्य समाप्त कर डाले, अब आपके पास कोई पुण्य नहीं बचा ! अब आप तपस्या हेतु जाइये, इसलिये-

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहिं तप हेतू।।

परशुराम जी तपस्या हेतु इसीलिये तो गए कि उन्होंने भागवत का अपराध किया। भागवत माने भगवान का भक्त। भगवान के भक्त को ही संस्कृत में भागवत कहते हैं। 'श्रीमद्भागवतम्' का भी यही तो अर्थ है 'श्रीमन्तो भागवताः यस्मिन्' अर्थात् जिसमें श्री जी के कृपापात्र भागवतों का वर्णन किया गया उस ग्रन्थ को कहते हैं श्रीमद्भागवतम्। इसलिये भक्त का अपराध कभी नहीं करना चाहिये। आज सीता जी से एक भक्त का अपराध हो गया। ये माया की सीता हैं, जबकि इनको जलना नहीं था। आगे कहेंगे-

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे।

प्रचण्ड पावक में प्रतिबिम्ब इसीलिये तो जला क्योंकि–

जो अपराध भगत कर करई। राम रोष 'पावक' सो जरई।।

जो भक्त का अपराध करता है, वो राम जी के रोष–पावक में जल जाता है इसीलिये–

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे।

अब सीताजी समझ रही हैं कि लक्ष्मण जी से ही प्रायश्चित करना पड़ेगा, तो कहती हैं–

लछिमन होहु धरम के नेगी। 'पावक' प्रगट करहु तुम बेगी।।

हे लक्ष्मण, अब आप धर्म के नेगी बन जाइये! नेग में मिल रहा है आपको धर्म, इसको ले लीजिये 'पावक' प्रगट करहु तुम बेगी।' और उसी को 'तुम 'पावक' महँ करहु निवासा।' तो अब अग्नि को प्रकट करो लक्ष्मण! मैं प्रवेश करूँ।

देखि राम रुख लछिमन धाए। 'पावक' प्रगटि काठ बहु लाए।।

भगवती सीताजी आज अग्नि में प्रवेश कर रही हैं। लक्ष्मण जी ने पावक को प्रकट कर दिया। आज सारे पावक प्रकट हो रहे हैं। चाहे वो राम रोष का पावक हो, चाहे राम नाम का पावक हो या राम जी का मुखारविन्द हो, जो भी आप कह लीजिये, जितने पावकों की मैंने पहले उत्प्रेक्षा कीं, सारे पावक जहाँ–जहाँ सीताजी हैं, उनको वहाँ–वहाँ से प्रकट होना है–'पावक प्रगट करहु तुम बेगी।' और इधर 'पावक प्रगटि काठ बहु लाए।' रामचरितमानस का ये एक सौ नौवें (१०९) दोहे का बड़ा मधुर प्रसंग है। इस प्रसंग में तीन बार 'पावक' शब्द का प्रयोग किया गया–

१. लछिमन होहु धरम के नेगी। **'पावक' प्रगट करहु तुम बेगी।।**

२. देखि राम रुख लछिमन धाए। **'पावक' प्रगटि काठ बहु लाए।।**

३. 'पावक' प्रबल देखि वैदेही। **हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।।**

तीन बार 'पावक' का उच्चारण कर स्पष्ट कहते हैं 'पुनाति इति पावकः' जो सबको पवित्र करता है। लक्ष्मण जी ने युद्ध में 'पावक' प्रकट कर दिया। काठ आ गए, जलने लगा अग्नि।

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशंकेनान्तरात्मना।।

वा०रा० ६/११६/२९

ये हमारी भारतीय नारी है। पतिव्रता की क्या परीक्षा! ये परीक्षा नहीं थी। आपकी दृष्टि में यह परीक्षा है परन्तु राम जी उनकी परीक्षा नहीं ले रहे हैं, वो तो उन पर विश्वस्त हैं। वो जानते हैं कि हमारी सीता जी में कोई दोष थोड़े ही है। वो तो इसी बहाने से अग्नि में से उनको प्रकट कर रहे हैं-

सीतहिं प्रथम 'अनल' महँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अन्तर साखी।।

सीता जी को अग्नि में रक्खा हुआ है 'पावक प्रबल देखि बैदेही' सीता जी ने अग्नि को प्रबल देखा, बिल्कुल जल रहा है अग्नि परन्तु उनका हृदय हर्षित है किसी प्रकार का उनको दुःख नहीं है। वो कहती हैं कि अब मेरी वियोग लीला समाप्त होगी। अब मैंने अपना समस्त दायित्व पूर्ण कर लिया! अतः अब मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।

भगवान कहते हैं कि अभी कोई चिन्ता नहीं, अभी आप अग्नि में प्रवेश कर लो! द्वापर में आपको फिर अवसर मिलेगा। अभी आपने मेरी पत्नी का अभिनय किया, द्वापर में आपको हमारे मित्र की पत्नी का अभिनय करना पड़ेगा। यही द्रौपदी बनेंगी। प्रतिबिम्ब की सीता ही आगे चलकर द्रौपदी बनेंगी। द्रौपदी भी अग्नि से ही प्रकट हुई थीं।

सीता जी का व्यक्तित्व देखिये, कह दिया-

जौ मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।

हे अग्निदेव, यदि मन से, वाणी से, कर्म से, मेरे हृदय में राम जी के सिवा किसी की गति नहीं-

तौ कृशानु सबकी गति जाना। मोह कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।।

देखिये, सीता जी का स्वभाव है कि वो नकारात्मक से सकारात्मक करना चाहती हैं। सीता जी ने यह नहीं कहा कि यदि मैंने मन वाणी शरीर से किसी पुरुष का चिन्तन किया हो तो मुझे जला दो, ऐसा क्यों कहें सीताजी ? सीताजी का तो यह कहना है कि ऐसा कहने में भी पाप लगेगा। सीताजी तो यह ही कहती हैं कि यदि मन से, वाणी से, शरीर से, सपने में भी मेरे हृदय में किसी पुरुष का गमन नहीं हुआ है तो हे अग्निदेव, मेरे लिये चन्दन बन जाओ! गोस्वामी जी महाराज उस वाक्य से बिल्कुल सहमत नहीं हैं, जो संस्कृत का है-

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नसंगे,
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।

तदिह दह ममांगं पावनं पावकेदं।

सुकृतदुरित भाजां त्वं हि कर्मैक साक्षी।।

उपरोक्त कथन से तुलसीदास जी बिल्कुल सहमत नहीं हैं और सीताजी भी सहमत नहीं हैं। वो ये क्यों कहें कि यदि मैंने किसी का चिन्तन किया हो तो मुझे जला दो! अरे! जब चिन्तन किया ही नहीं तो 'किया हो' क्यों कहेंगी ? चिन्तन किया हो, तब न वो कहेंगी! इसलिये वो ये कह रही हैं-

जौं मन वच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।

यदि मैने मन से, वाणी से और शरीर से सपने में भी अपने हृदय में राम जी के अतिरिक्त किसी को नहीं बिठाया तो 'तजि रघुबीर आन गति नाहीं।' यहाँ 'रघुवीर' का प्रयोग क्यों कर रही हैं, यही तो बात है। मानस का कहाँ से कहाँ सम्बन्ध है, जरा सोचो आप! युद्धकाण्ड के एक सौ नौवें दोहे की यह सातवीं पंक्ति हैं और इसका सम्बन्ध जुड़ेगा बालकाण्ड के दोहा क्रमांक दो सौ अड़तालिस से, तब ग्रन्थ बनेगा, ऐसे ग्रन्थ नहीं बनते! कोई टिपिर टिपिर करके रामायण का वक्ता बन जाए, ऐसे थोड़े ही होता है। आज वही हाल है कि बीछी का मन्त्र नहीं जानते और साँप के मुँह में उँगली डाल देते हैं। एक अक्षर का ज्ञान नहीं है पर वक्ता बने बैठे हैं।

बालकाण्ड का दो सौ अड़तालिसवाँ दोहा देखिये-

गुरुजन लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि।

लगीं बिलोकन सखिन तन, रघुबीरहिं उर आनि।।

वही 'रघुवीर' शब्द यहाँ आया-

जौ मन वच क्रम मम उर माहीं। तजि 'रघुबीर' आनि गति नाहीं।।

मिथिला के स्वयंवर में जिस रघुवीर को मैंने मन से, वाणी से और शरीर से अपने हृदय में बिठाया, उन रघुवीर के अतिरिक्त मेरे हृदय में यदि किसी पुरुष की सपने में भी गति नहीं हुई तो 'तौ कृशानु' तुम तो कृशानु हो, और वही कृशानु हो-

लछिमन बान शरासन आनू। सोषौं बारिधि बिशिख कृशानू।।

और-

निशिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृशानु।

वो 'कृशानु' जो राक्षसों को पतंगे के समान जला सका। जिसने सागर को खौला डाला। वह कृशानु सबकी गति जानता है। राम जी के बाण के रूप में तुम सबकी गति जानते हो, इसलिये-

तौ 'कृशानु' सबकी गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।।

मेरे लिये 'श्रीखण्ड' बन जाओ! अपने में मैं प्रवेश करूँगी। लक्ष्मी बन जाओ! श्री + खण्ड – लक्ष्मी का खण्ड बन जाओ! परपुरुष नहीं। 'मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।' अथवा 'श्रीखण्ड' में बहुव्रीहि करो– श्रीः खण्डो यस्य, श्री भी जिसका अंश है और वो हैं–

जासु अंश उपजहिं गुन खानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।।

जिनके अंश से अनेक उमा, अनेक रमा, अनेक सरस्वती प्रगट होती हैं वो श्रीखण्ड, सीता जी के समान बन जाओ 'मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।' समान नहीं बन जाओ, जिसमें सीताजी समाई हुई हैं, वही जल्दी से आ जाओ–'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।' ये ग्रन्थ है।

ग्रन्थग्रन्थिरिहक्वचित् क्वचिदपिन्यासिप्रयत्नान्मया,
प्राज्ञंमन्यमनाहठेनपठिती मास्मिन् खलः खेलतु।
श्रद्धाराध्य गुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थि समासादयत्,
त्वेतत्काव्य रसोर्मिमज्जन सुखव्या सज्जनं सज्जनः।।

जैसे श्रीहर्ष कहते हैं, उसी प्रकार गोस्वामी जी को भी समझो कि 'ग्रन्थ ग्रन्थिरिहक्वचित् क्वचिदपिन्यासिप्रयत्नान्मया' बड़े-बड़े प्रयत्न से ग्रन्थों की ग्रन्थियाँ इसमें रक्खी गई हैं और 'प्राज्ञंमन्यमना' जो अपने को बद्धिमान मानता है और उसमें बुद्धि है नहीं, 'हठेन पठिती' पढ़ने की बुद्धि नहीं है पर हठात् पढ़ता रहता है ऐसे 'मास्मिन् खलः खेलतु' खल को यहाँ नहीं खेलना चाहिये। जिसने गुरुदेव भगवान की श्रद्धा से आराधना की है 'श्लथीकृतदृढग्रन्थि' गुरुदेव भगवान की कृपा से जिसकी हृदय की गाँठें खुल गई हैं, वो सज्जन इस रामचरितमानस को समझ सकता है। इसलिये–

तौ 'कृशानु' सबकी गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।।

मेरे लिये चन्दन के समान ठण्डे बन जाओ! वही अग्नि कि जल्दी से आ जाओ, जिसमें सीता जी समाई थीं, वही 'अरण्यकाण्ड' वाली अग्नि आ जाओ।

इंग्लैण्ड में एक कॉन्फ्रेंस हुई थी जिसमें नारी की चर्चा चल रही थी और उस कॉन्फ्रेंस का मैं अध्यक्ष था। बोलने में मैं संकोच नहीं करता, यह मेरा नियम है। हमारी जौनपुर की भाषा में 'हने तो हने, न दोष पाप गने' हमारा नियम है कि पहले

तो नहीं मारेंगे और मारेंगे तो थुथुर देंगे, फिर संकोच नहीं करेंगे। हमने कहा कि नारी का सम्मान तुमने क्या किया है ?

१. अंग्रेजी संस्कृति में नारी 'बेबी' है।

२. मुसलमानो की संस्कृति में नारी 'बीबी' है।

३. हमारी संस्कृति में नारी 'देवी' है।

हम जितना नारी का सम्मान करते हैं, उतना कौन करेगा ? जहाँ शेक्सपियर ने कहा कि अरे, मजबूरी तुम्हारा ही नाम तो नारी है। हम तो कहते हैं मजबूरी नारी का नाम नहीं है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता।

हमारे यहाँ तो नारी 'शक्ति' है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

तथा-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो।

हमारे यहाँ नारी श्रद्धा है। हमारे यहाँ नारी 'मैडम' नहीं है, हमारे यहाँ नारी 'महोदया' है। महोदया माने 'महान उदयःयस्याः' जिसका महान उदय है उसको कहते हैं महोदया। संसार का जो सबसे शक्तिमान प्राणी है, उसको हमने अपनी नारी का वाहन बनाया शेरावाली माँ की जय हो। हमने अपने यहाँ नारी को सिंह पर बैठाया। इसके अतिरिक्त आप देखो कि विश्व में किसी देश का नाम क्या माता से जुड़ा है ? कहीं हमने सुना है ब्रिटेन माता की जय या यू०के० माता की जय या यू०एस० माता की जय। केवल हमारे यहाँ भारत माता की जय या 'वन्दे मातरम' कहते हैं। 'वन्दे मातरम्' कहकर हजारों लोगों ने गोलियाँ खाईं पर 'वन्दे मातरम्' नहीं छोड़ा। कभी वन्दे पितरम् कहा जाता है क्या ? पिताको तो किसी ने नहीं प्रणाम किया। माँ एक ऐसा शब्द है कि पशु भी बोल लेता है। गाय का बच्चा भी माँ, माँ करता है। माँ तो कितनी प्यारी होती है कि हम लोग तो त्रिदण्डी सन्यासी हैं। हमको किसी को प्रणाम करने का अधिकार नहीं हैं। हम अपने पिता को भी नहीं प्रणाम कर सकते। वो हमको 'नमो राघवाय' करते हैं तो हम भी 'नमो राघवाय' करते हैं पर जब माँ होती हैं तो हम त्रिदण्ड रखकर प्रणाम करते हैं।

दण्डधारणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।

तात्पर्य यह है कि जब हाथ में त्रिदण्ड आ गया तो व्यक्ति साक्षात् नारायण होता है और नारायण भी नारी को प्रणाम करता है-

सर्वमंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।

हमने 'नारी' कहा। नारी माने ना + अरि जिसका कोई 'अरि' माने शत्रु ही नहीं होता, उसको नारी कहते हैं। बड़े-बड़े लोग नारी के आगे झुकते हैं चाहे वकील हों, डॉक्टर हों या कलेक्टर हों, घरवाली के आगे तो झुकना ही झुकना है। जो वकील, बड़े से बड़े लोगों को, यहाँ तक कि न्यायाधीशों तक को चुप कर देते हैं, उनकी घरवाली कह देती है कि तुम्हें तो कुछ भी नहीं आता! अब कौन रोकेगा उनको ? और क्या करेंगे आप! आप कुछ नहीं कर सकते, उनका तो ये अधिकार है। वास्तव में उनके आगे मूर्ख बनने में ही शोभा है। हमारे यहाँ यही नियम है। भारतीय व्यक्ति नारी का जितना सम्मान करना जानता है, उतना कोई जानता ही नहीं। सीता जी का हरण थोड़े ही हुआ था। रावण ने सीता जी की परछाईं का हरण किया था और रामचन्द्र जी ने दिखा दिया कि हमारी भारतीय नारी की यदि परछाईं का भी कोई अपमान करता है तो जब तक भारतीय युवक उसके कबन्धों को काट-काट करके नचा नहीं देता, तब तक उसको सन्तोष नहीं होता! यही है हमारी गौरव-गाथा! इसलिये अग्नि को शीतल होना पड़ रहा है।

तौ कृशानु सबकी गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।।

कितना सुन्दर वह व्यक्तित्व होगा, वह कैसा दाम्पत्य होगा 'अलौकिकं हि दाम्पत्यं दृश्यते रामसीतयोः।' ऐसा दाम्पत्य किसी का थोड़े ही हो सकता है। कह दिया कि आप पावक में रह लीजिये! आज किसी से आप कहें कि अग्नि में रह लो तो यही कहेगी कि तुम्हारा काम, तुम जाओ जहाँ जाना हो, हम थोड़े ही आग में कूदने जाएँगे पर यहाँ सीता जी को भगवान अग्नि में रहने के लिये कह रहे हैं और सीताजी यह जानती हैं कि मैं जहाँ रहूँगी, वहाँ प्रभु रहेंगे और प्रभु रहेंगे तो अग्नि मुझे जला नहीं सकेगा, क्योंकि मेरे पास तो बादल रहेगा और बादल जब अमृत की वर्षा करेगा तो आप क्या करेंगे ?

लक्ष्मण जी ने, राम जी से प्रश्न किया कि क्या कर रहे हैं आप, भाभी को जलाएँगे ?

राम जी ने कहा, चुप-चुप! जलाएँगे नहीं। वहींसे तुम्हारी भाभी को निकालना चाहते हैं। अग्नि में मैंने उन्हें रख दिया था।

लक्ष्मण जी ने कहा कि तो वहाँ नहीं जली होंगी ?

राम जी ने कहा कि नहीं। सीताजी तो आत्मतत्व हैं।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

'नैनं दहति पावकः' इसलिये-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

भगवान आनन्दकन्द इस बात को जानते हैं कि सीता जी को अग्नि नहीं जला सकता, शस्त्र नहीं काट सकते, जल नहीं गीला कर सकता, वायु नहीं सुखा सकती, क्योंकि सीता जी तो परमात्मत्तत्व है। 'वसुधायाश्च वसुधां श्रियः' श्रीं भर्तृवत्सलाम्।' सीता जी पृथ्वी की भी पृथ्वी हैं, लक्ष्मी की भी लक्ष्मी हैं और भर्तृवत्सला हैं, उनको अग्नि क्या जलाएँगे ?

प्रतिबिम्ब की सीता जी के मुख से मुख्य सीता जी ने कहा कि श्रीखण्ड बनो और मुझको जलाना नहीं।

जौ मन वच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृशानु सबकी गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।।

पहले भगवान राम की परिक्रमा की फिर सीताजी ब्राह्मणों को प्रणाम किया-

एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशंकेनान्तरात्मना।।

सबके देखते-देखते भगवती श्री जनकनन्दिनी जी अग्नि में प्रवेश कर रही हैं।

इसके पहले एक बार किसी ने पूछा कि सीताजी तो अग्नि में प्रवेश कर गई थीं पर क्या राम जी की भी कभी 'अग्नि-परीक्षा' हुई थी ? तो कहा कि हाँ हुई थी। देखिये, अग्नि परीक्षा तब देनी पड़ती है, जब व्यक्ति सन्देह के घेरे में आता है। सीता जी को अग्निपरीक्षा इसलिये देनी पड़ी क्योंकि वो रावण के यहाँ रही हैं और इस कारण वो सन्देह के घेरे में हैं और उनको अपनी पवित्रता प्रमाणित करनी है। इस प्रकार सीता जी सन्देह के घेरे में आईं लंका में और राम जी सन्देह के घेरे में आए मिथिला में। मिथिलानियों ने हमारे राघव को निहारा। चमाचम, क्या बात है !

क्या गजब चाल अलबेले की, गज लाज रहा मस्ते मस्ते।
जिसको उँसने मुड़ देखा, मन लूट लिया हँसते-हँसते।।

आनन्द कर दिया। मन्द-मन्द, दिव्य-दिव्य, भव्य-भव्य, नव्य-नव्य, मृदुल-मृदुल, अरुण-अरुण, तरुण-तरुण, वो सुन्दर-सुन्दर, कोटि-कोटि कमलों से भी प्यारे-प्यारे श्रीमद्चरणारविन्द और वो बालदिवाकर द्युति को भी विनिन्दित करने वाला सुन्दर-सुन्दर पीताम्बर श्रीविग्रह पर इतना सुन्दर लग रहा है मानो तीसी के फूल पर किसी ने सरसों का पराग लेप दिया हो, इतना सुन्दर वह पीताम्बर, मधुर-मधुर मुस्कुरान, दो-दो दन्तावलियों की शोभा अरुण-अरुण ओष्ठ पर मानों गुलाब की पंखुड़ियों पर शरदकाल के पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणें छिटक रही हों। सुन्दर-सुन्दर गोल-गोल कपोल पर लटकते हुए वो घुँघराले-घुँघराले काले बाल मानों शरदकाल के भोले-भोले चन्द्रमा को निरीह बादल घेरने का दुस्साहस कर रहे हों, भगवान आनन्दकन्द का वह मधुर मुखारविन्द, उभरे हुए कपोल, सुन्दर मस्तक पर चमाचम ऊर्ध्वपुण्ड तिलक, ऐसा श्रीविग्रह भगवान आनन्दकन्द का, तो मिथिलानियों का सम्मोहन तो स्वाभाविक है और वो मोहित हुईं, ऐसा भी नहीं कि मोहित नहीं हुईं। 'रघुराज' जी ने लिखा कि वहाँ पर तीन प्रकार की मिथिलानियाँ थीं, एक बिना ब्याह वाली, एक ब्याह वाली और एक जिनका गौना हो गया है, तो बिना ब्याह वाली तो फूली फिर रही थीं क्या पता हमें ही स्वीकार कर लें भगवान राम और ब्याह वाली चुप रहीं कि अब तो गड़बड़ हो गया, दूसरे की हो चुकीं और गौने वाली मिथिलानियों ने तो मुँह बन्द कर लिया कि अब जो करम में लिखा था, वो तो हो ही गया-

अनब्याही फूली फिरैं ब्याही मींजत हाथ।
गौने की मौनी भईं रूप देखि रघुनाथ।।

इसलिये-

जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नरनारी।।

अपने रूप की मोहिनी डालकर नगर के नर नारियों को स्व-वश कर लिया अथवा 'स्ववश नगर नर-नारी कीन्हें' अपने वश में होने वाले नगर के नरों को भी नारी बना दिया! कितना सुन्दर है यह व्यक्तित्व! कितना भोला है-

जुबतीं भवन झरोखनि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं।।

सब देख रहे हैं, कोई यह नहीं कह सकता कि मैने नहीं देखा। लड़कियाँ भी देख रही हैं, भले ही राम जी उनके फूफा लगते थे पर देख रही हैं क्या करें अब, कोई

बहनोई मानकर, जीजा मानकर, फूफा मानकर सब कुछ न कुछ मानकर देख रही थीं। एक छोटी लड़की देखकर कह रही थी कि आहा! कितने सुन्दर! किसी ने कहा कि ये तो तुम्हारे फूफा हैं। उसने कहा कि फूफा हैं तो क्या हुआ, रूप तो सुन्दर है। सबने मन ही मन में सोच लिया कि मेरे साथ ब्याह हो जाता तो कितना अच्छा होता! तब भगवान राम ने कहा कि इस बार तो एक नारीव्रत हूँ अगली बार जब मैं कृष्ण बनूँगा तब तुम लोग गोपिका बन जाना, सोलह कलावतारी के लिये सब ठीक रहेगा! इस बार तो एक नारीव्रतधर हैं।

इसलिये मैं यह निवेदन कर रहा था कि मिथिला की इतनी नारियों ने भगवान राम को देखा, भगवान राम सन्देह के घेरे में हैं कि तुम्हें भले ही सब नारियों ने देखा पर क्या तुमने सीता जी के अतिरिक्त किसी नारी को देखा है ? विवाह के पहले इसकी परीक्षा करनी पड़ेगी पर परीक्षक कौन बने ? राम जी की परीक्षा कौन ले ? सीता जी ने कहा कि बिना परीक्षा के तो हम उनको नहीं स्वीकारेंगे, झगड़ा हो जाएगा। तब शंकर जी ने कहा कि कोई बात नहीं, जब मेरा धनुष तोड़कर परीक्षा दी गई है तो चलो एक बार फिर परीक्षा कर लेते हैं। मेरा धनुष तोड़कर इन्होंने ईश्वरत्व सिद्ध कर दिया पर एकनारीव्रत तो कभी-कभी ईश्वर में भी नहीं रहता, गड़बड़ हो जाता है। अब क्या करें ? तब कहा कि ये तब परमेश्वर माने जाएँगे, पुराण पुरुषोत्तम तब माने जाएँगे जब ये शंकर के तृतीय नेत्र से भी न जल सकें। मेरा तृतीय नेत्र खुले और इनका एक रोआँ भी न जले-

तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।

'काम' तो रोल्ड गोल्ड का है तृतीय नेत्र खुला तो काम तो जल गया। अब राम जी के सामने पाँच पाँच तीसरे नेत्र खुल रहे हैं, यहाँ-

शंकर राम रूप अनुरागे। नयन पञ्चदश अति प्रिय लागे।।

नयन पञ्चदश माने पन्द्रह नेत्र, पाँच सूर्य के, पाँच चन्द्र के और पाँच अग्नि के।

राम रूप नख शिख सुभग, बारहिं बार निहारि।
पुलकि गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि।।

तीसरा नेत्र खुला पर फ्यूज़ उड़ गया। सब गड़बड़ हो गया। राम जी को एक बार नहीं, बार-बार निहार रहे हैं। काम को देखकर लोचन में अनल आया था पर यहाँ तो 'लोचन सजल उमा समेत पुरारि।' तीसरा नेत्र खुलते ही फ्यूज़ उड़ गया,

गड़बड़ हो गया, हीटर ही गड़बड़ हो गया। जिस नेत्र से कामदेव को देखकर आग बरस रही थी, जहाँ से अंगार बरस रहे थे, वहीं से अब जल धारा बरसने लगी! हो गई अग्निपरीक्षा या नहीं! चकाचक अग्निपरीक्षा हो गई। यदि सीता जी के अतिरिक्त किसी नारी को देखा होता तो एक क्षण में जल जाते! क्या बात है! पन्द्रहों नेत्र खुले, पाँच नेत्रों से सूर्य जलाना चाहे या पाँच नेत्रों से अग्नि जलाना चाहे पर नहीं जले, पाँच नेत्रों से चन्द्रमा गलाना चाहे पर नहीं गले।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

गीता २/२३

इसलिये, यह व्यक्तित्व, ये भगवान राम, आज सीता जी की अग्निपरीक्षा देख रहे हैं और सीताजी–

श्रीखण्ड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोशलेश महेश बन्दित चरन रति अति निर्मली।।
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे
प्रभु चरित काहु न लख्यो नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खड़े।।

कितना सुन्दर छन्द है! मैथिली जी अब श्रीखण्ड के समान अग्नि में प्रवेश कर रही हैं। अब तक अग्नि उनके लिये तप रहा था, अब श्रीखण्ड बन गया। जय-जयकार हो रही है। सब प्रतिबिम्ब जल गया। क्योंकि 'राम रोष पावक सो जरई।' प्रभु का यह चरित्र किसी ने नहीं देखा। सीता जी अग्नि में विराज रही हैं। साड़ी का एक भी पल्लू नहीं जल रहा है और अब आएँगी कैसे, इसकी चर्चा कल।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र की जय।।

।।पवनसुत हनुमान की जय।।

अष्टम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।

❖❖❖❖

।। श्रीः ।।

।। श्री राघवो विजयते।।

अथ नवम वाक् पुष्पाञ्जलि

दिनाङ्क २०-९-२००३

मङ्गलाचरण

आगच्छ वायुसूनो त्वं मया रामायणी कथा ।
प्रारभ्यते भव श्रोता गृहाणासनमुत्तमम् ।।
कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम् ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम् ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ।।
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी ।
सुजन चकोरकदम्बो यत्कविता कौमुदीं पिवति।।
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरुश्परम्पराम् ।।
कन्दावदातं जनपारिजातं काकानुगं कल्पित काकपक्षम् ।
श्रीराघवं बाणधनुर्दधानं वक्रालकं बालकमाश्रयामि।।
श्रीगुरुचरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनउँ रघुवर बिमल जस जो दायक फल चारि ।।

।। सियावर रामचन्द्र भगवान की जय ।।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।
सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम ।
सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।
तुम पावक महँ करहु निवासा । जब लगि करौं निशाचर नासा ।।
जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसइ रूप सुशील विनीता ।।
लछिमनहूँ यह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान राम ने यहाँ एक युक्ति बनाई थी। उपक्रम इसका आपने देखा

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। कहउँ उमा सोइ कथा सुहाई।।

भगवान भूतभावन ने कहा कि पार्वती जी, उधर रावण सीता जी का हरण करने के लिये ज्यों मारीच के यहाँ चला-

चला अकेल यान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिन्धु तट जहवाँ।।

ज्यों ही रावण यान पर चढ़कर मारीच के यहाँ गया, उधर उसका प्रस्थान, इधर लक्ष्मण जी चले कन्द-मूल लेने और इधर राम जी ने युक्ति बना ली। भगवान राम ने भगवती जी से कहा कि अब मैं ललित नरलीला करना चाहता हूँ। जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ, तब तक आप अग्नि में रह लें। भिन्न-भिन्न उपक्रम किये कि कहाँ रहें, कहाँ रहें ? सब मैं आपको बता चुका हूँ बड़ी विस्तृत चर्चा की है मैंने! सीता जी कुछ न कहकर हृदय में प्रभु के चरणों को धारण कर 'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।' वही दृश्य है, इस बात को भक्त कभी-कभी जान जाते हैं। शंकर जी तो कह ही रहे हैं पर लक्ष्मण जी नहीं जान पाए परन्तु जब विभीषण शरणागति होने लगी तो विभीषण जान गए। उसी का स्मरण किया विभीषण जी ने कि आहा हा! आज मैं उन्हीं चरणों को देखूँगा-

जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए।।

'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी' उसी दृश्य को विभीषण जी ने जान लिया कि हमारी वास्तविक सीताजी को रावण नहीं चुरा सका है। वास्तविक सीता जी तो प्रभु के हृदय में निवास कर रही हैं। रावण को वास्तविक सीता जी की आवश्यकता भी नहीं पर उसने सीता सीता कहते-कहते इतना चिन्तन किया कि सीता जी उसके हृदय

में चली गईं। रावण वास्तविक सीता जी का हरण नहीं कर सकता, यहाँ भगवान ने लीला कर ली है और विभीषण जी यह जानते हैं कि सीता जी बहुत चतुर हैं 'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी' राम जी के चरणों को हृदय में धारण कर उन्होंने अग्नि में प्रवेश किया है क्योंकि वो जानती हैं कि अरे! अग्नि में एक क्षण कोई रहे तो वह बिना जले रह सकता है क्या? व्यक्ति अग्नि में एक क्षण में ही खाक हो जाता है और उनको तो दस-दस महीने तक अग्नि में ही रहना है तो वो अग्नि की ज्वाला को कैसे सहन करेंगी? वो तो इतनी कोमल हैं कि 'रवि रुख नयन सकहिं किमि जोरी, जो सूर्यनारायण के सामने अपनी आँख नहीं कर पाती हैं, वो अग्नि का इतना ताप कैसे सह सकेंगी? तब उन्होंने कहा कि इसका उपाय मैं कर लेती हूँ और तब राघव जी के चरणों को उन्होंने हृदय में धारण कर लिया और जो राघव जी के चरणों को अपने हृदय में धारण कर लेता है, उसको किसी भी प्रकार का ताप नहीं लगता है! नदियों में सबसे शीतल नदी आप देख ही रहे हैं। हरिद्वार, ऋषिकेश में जाकर देखिये कि सबसे शीतल नदी गंगा जी हैं और गंगा जी निकलती हैं भगवान के चरणों से, तो जिसके अंश के चरण से निकली गंगा इतनी ठण्डी तो उसका अंशी कितना ठण्डा होगा, जरा सोचो आप! इसलिये भगवान के चरणों की शीतलता ही सीता जी को अग्नि के ताप से बचा देती है। अग्नि में वो रह रही हैं पर अग्नि उनको जला नहीं सकता! अग्नि भी सीता जी को अपनी गोद में पाकर धन्य हो गए। 'तुम पावक महँ करहु निवासा', मनोरथ किया था अग्नि ने, कि मेरे पास भी कुछ दिन रह लेतीं तो कितना अच्छा होता!

होम समय तनु धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिं।

अग्निदेव, जब विवाह के समय सीता जी से आहुति ले रहे थे, तब सीता जी ने कहा कि पिता जी थोड़ी देर तक आहुति ले लीजिये और बाद में मैं ही आपकी आहुति बन जाउँगी। आप 'हव्यवाट्' हैं। आप हव्य को देवताओं तक पहुँचाते हैं परन्तु जब मैं आहुति बनूँगी तो मुझे अन्य देवताओं के पास मत पहुँचाइयेगा, मुझे राघव जी के पास ही पहुँचाइयेगा।

इसलिये यह प्रवास हुआ अग्नि में और अब हम यह निवेदन करना चाह रहे हैं कि इसका कोई वैदिक आधार है या नहीं, क्योंकि हम सनातन धर्मियों का यह मानना है कि कोई भी बात यदि वेद प्रतिपादित नहीं है तो वो हमारे लिये मान्य नहीं! कितनी भी बड़ी बात हो यदि उसका वेदानुमोदन नहीं होगा तो वो हमारे लिये बिल्कुल ग्राह्य नहीं, ठीक उसी प्रकार जैसे आप सुन्दर-सुन्दर सूजी के हलुवे में घी

के बदले में मिट्टी का तेल डाल दो। इसलिये हमको सब कुछ वेदानुमोदित चाहिये। यदि वेदानुमोदित नहीं तो उसमें पुण्यजनकतावच्छेदकता भी नहीं होगी। इसलिये, बुद्ध को तो हम मानते हैं पर बुद्ध की नहीं मानते क्योंकि बुद्ध तो वेदानुमोदित हैं पर बुद्ध की बातें वेदानुमोदित नहीं हैं। एतावता, इस कथा का भी वेदानुमोदन होना चाहिये, इस कथा के लिये भी वेद का समर्थन होना चाहिये और समर्थन है भी। कहते हैं-

तब अनल भूसुर रूप गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इन्दिरा रामहिं समर्पीं आनि सो।।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति शोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।।

'धरि रूप पावक पानिग्रह श्री' यह पाठ प्रचलित प्रतियों का है पर हमने उसे नहीं माना है और 'पाणिग्रह श्री' उचित भी नहीं है 'तब अनल भूसुर' अग्नि ब्राह्मण के रूप में आ रहे हैं और सीता जी को लाकर उसी प्रकार सौंप रहे हैं, जिस प्रकार क्षीरसागर ने नारायण को, लक्ष्मी जी को सौंपा था और वहाँ गोस्वामी जी ने बड़ा मधुर वाक्य दिया है 'श्री सत्य श्रुति जग विदित जो' श्रुतियों के संसार में जो सत्य रूप से बहुत प्रसिद्ध है। अब श्रुतियों के संसार में सबसे प्रसिद्ध क्या हो सकता है ? श्रुतियों के संसार में सत्य रूप से, शिव रूप से, सुन्दर रूप से 'सत्यं, शिवं सुन्दरम्' इन तीन रूपों से तीन सूक्त प्रसिद्ध हैं-

१. सत्य रूप से-श्री सूक्त
२. शिव रूप से -रुद्र सूक्त और
३. सुन्दर रूप से -पुरुष सूक्त।

अब 'श्रीसूक्त' देखिये। वही बात है- 'मैं कछु करब ललित नरलीला' आज नरलीला का उपसंहार है पर बड़ी रोचक नरलीला है। सीता जी अग्नि में बड़ी गम्भीर मुद्रा में खड़ी हैं और सबके देखते ही देखते उनका प्रतिबिम्ब अग्नि में जल चुका। वही प्रतिबिम्ब जो अब तक लीला कर रहा था-

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे।
प्रभु चरित काहु न लख्यो नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।।

कहते हैं कि प्रतिबिम्ब जल गया। अच्छा यह बताओ कि क्या कभी किसी की

परछाईं जलती है ? नहीं, तो फिर यह कैसे लिख दिया कि 'प्रचण्ड पावक महँ जरे।' यहाँ पर देखो कि वैसे 'जरे' शब्द हिन्दी में दो अर्थों में आता है। एक तो जरे माने जलना और दूसरा अर्थ जरे माने जड़ना। जैसे साड़ी आदि में नग जड़े जाते हैं। इस प्रकार इस अर्थ में जैसे साड़ी में बूटे जड़े जाते हैं, गहनों में नग जड़े जाते हैं उसी प्रकार नग की भाँति प्रतिबिम्ब उसमें जर गया अर्थात् समा गया और सीता जी चमाचम बिल्कुल खड़ी हैं। मञ्जुल-मञ्जुल मुस्कुरा रही हैं। साड़ी का एक भी सूत नहीं जला -

ददृशुस्ते त्रयो लोकाः प्रविशन्तीं हुताशनम्।
सीतां सर्वानवद्यांगीं यज्ञे पूर्णाहुतीमिव।।

महर्षि वाल्मीकि कह रहे हैं कि सीता जी अग्नि में प्रवेश कर रही हैं, इसे सबने देखा। जैसे यज्ञ में पूर्णाहुति होती है तो श्रीफल डाला जाता है, यहाँ तो श्री ही पूर्णाहुति में हैं। श्रीफल अद्‌भुत फल है। क्या आनन्द हो रहा है!

पहले पति पत्नी में विनोद होता था परन्तु अब तो झगड़ा होता है। 'पत्युर्नुं यज्ञ संयोगे' इसलिये, एक पत्नी ने अपने पति से विनोद किया। उसको पूजा करनी थी और श्रीफल चाहिये था, तो उसने पति से कहा कि-

जहाँ पवन की गम नहीं, रवि शशि उदय न होय।
जो फल ब्रह्मा न रच्यो, पत्नी माँगत सोय।।

वास्तव में, ऐसा कौन फल हो सकता है ? यही है यहाँ 'पवन की गम नहीं' उसके नीचे वायु थोड़े ही जा सकता है और इतना कठोर है कि सूर्य, चन्द्रमा भी वहाँ नहीं उदित हो सकते और इस फल को ब्रह्मा जी ने नहीं बनाया, स्वयं लक्ष्मी जी ने अर्थात् 'श्री' जी ने बनाया, उसी फल को 'पत्नी माँगत सोय।'

तात्पर्य यह है कि लोग देख रहे हैं कि सीता जी वही हैं परन्तु हुआ यही कि वह प्रतिबिम्ब छिपा और सीता जी सामने खड़ी हो गईं पर अभी बिल्कुल अग्नि में खड़ी हैं और लोग इस दृश्य को देख रहे हैं कि सीता जी अग्नि में नहीं जल रही हैं। उन्होंने नई साड़ी पहन रखी है। वेद तो बहुत अच्छा कह रहे हैं। ऋग्वेद ने इस प्रसंग को जब देखा तो ऋग्वेद के दशम मण्डल में कहा-

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्।।

ऋग्वेद १०/२/३

कहते हैं कि 'भद्रया' परम कल्याणमयी सीता जी के द्वारा सेवित 'भद्रः' माने रामभद्र भगवान रामचन्द्र जी वन में आए तो 'जार' माने चरित्रहीन रावण 'स्वसारं' अपनी बहन के समान पूज्या सीता जी का हरण करके ले गया। फिर तो अग्नि के समान तेजस्वी भगवान राम जी ने 'सुप्रकेतैः' सुन्दर नोकों वाले चमकते हुए बाणों के साथ और 'सुप्रकेतैः' सुन्दर पताका वाले वानरों के साथ भी 'वितिष्ठन्' रावण की लंका पर आक्रमण किया और रावण का वध किया फिर 'नुषद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्' सुन्दर वर्णों वाली, नाना प्रकार के आभूषणों से सजी हुई सीताजी अग्नि के साथ अब 'अभिरामं अस्थात्' राम जी के समक्ष आ गईं। ये वर्णन वेद कर रहे हैं।

अब 'सत्य श्रुति जग विदित जो', सीता जी खड़ी हैं। देवतागण देख रहे हैं। फूलों की वर्षा हो रही है। अग्नि धू-धूकर जल भी रहे हैं। 'पावक प्रगटि काठ बहु लाए' लक्ष्मण जी खूब लकड़ी ले आए हैं। घी मनों-मनों डाला जा रहा है। अग्नि जाज्वल्यमान है। ऊँची-ऊँची लपटें हैं। सीता जी मुस्कुरा रही हैं। उनको पसीना तक नहीं आ रहा है। उनके सिर पर सुन्दर-सुन्दर बाल हैं, सिर पर आँचल डाले हैं और सुन्दर-सुन्दर गहनों से सजी हुई हैं। तब भगवान राम, ललित नरलीला करते हुए 'श्रीसूक्त' का पाठ कर रहे हैं-

ऊँ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।

'जातवेदो' हे अग्निदेव, अब ऐसा करो कि जो हिरण्वर्णा है, सोने के समान जिसका वर्ण है। स्वर्ण का रंग तब चमकता है जब आग में तपाया जाता है। 'हरिणीं' जिनके हरिण के समान नेत्र हैं और 'हरिणीं' अर्थात् 'हरिं नयति;' जिन्होंने मुझ राम रूप हरि को भी अपने हृदय में धारण किया है, 'सुवर्णरजतस्त्रजाम्' जिन्होंने दो प्रकार की माला धारण कर रक्खी है सुवर्ण के समान और रजत के समान। पीली माला और श्वेत माला दोनों प्रकार की मालाएँ जिन्होंने धारण कर रखी हैं और मालाएँ भी नहीं जल रही हैं। सुन्दर-सुन्दर पीले कमल और श्वेत कमलों की अथवा पीली चम्पा और श्वेत चम्पा की माला सीता जी ने धारण कर रखी है। 'चन्द्रां' चन्द्रमा के समान जो आह्लादिनी हैं। 'हिरण्मयीं' जो स्वर्ण के आभूषणों से लसी हुई हैं, ऐसी 'मे लक्ष्मीं' मेरी लक्ष्मी को 'आ वह' हे अग्नि, अब तुम वापस कर दो। अब दस महीने हो गए!

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अब राक्षसों का नाश हो चुका है अब 'मे लक्ष्मीं आ वह' मेरी लक्ष्मी जी को अग्निदेव लौटा दीजिये, वापस कर दीजिये! कितना सुन्दर वर्णन है!

तब अनल भूसुर रूप गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो।

पहला मन्त्र पढ़ा भगवान राम ने। नहीं तो अग्नि का लक्ष्मी से क्या सम्बन्ध है? कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि अग्नि लग जाए तो लक्ष्मी नष्ट हो जाएगी। सब कुछ जलाकर अग्नि रख देती है तो कहाँ रहेगी लक्ष्मी। अग्नि का, लक्ष्मी से कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ लक्ष्मी के लिये कहा जा सकता है 'जातवेदो म आ वह' इसका अर्थ यह है कि यह 'श्रीसूक्त' इसीलिये बनाया गया, इसीलिये प्रयुक्त हुआ ये भगवान राम के लिये प्रयुक्त हुआ। भगवान राम कह रहे हैं कि जो मैने आपको सीता जी सौंपी थीं, राक्षसों का नाश हो चुका है, अब आप उनको वापस कर दीजिये!

वे सीता जी किस प्रकार की हैं-

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्।।

हे जातवेदः अर्थात् हे अग्निदेव, जातवेदः 'जातं वेदः यस्य' वेदः वेदसी, वेदांसि। 'वेदस्' शब्द 'ज्ञानवाचक' भी है और 'धनवाचक' भी है।

वेदः, वेदौ, वेदाः माने वेद और 'वेदस्' माने धन। हेज्ञानसम्पन्न और धनसम्पन्न अग्निदेव, अब मेरी लक्ष्मी को वापस करो! अग्निदेव ने कहा कि मैं वापस तो कर दूँगा पर फिर आप अग्नि में निवास करने को कहेंगे, तब भगवान प्रलिज्ञा करते हैं कि आज के पश्चात् मैं सीता जी को अपने से अलग नहीं करूँगा क्योंकि अब राक्षसों का नाश हो चुका है और मैंने उनको अलग थोड़े ही किया है। तुमने उनको रक्खा और उन्होंने मुझको अपने हृदय में रखा 'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी' इस प्रकार वो मुझसे अलग नहीं हुईं। 'अनपगामिनीम्' न अपगच्छति, न दूरं गच्छति तच्छीला इति अनपगामिनी ताम्' जो मुझसे दूर अब कभी नहीं जाएँगी ऐसी 'मे लक्ष्मीं' सीता जी मेरे घर की लक्ष्मी हैं-

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः
रसावस्या स्पर्शो वपुषिबहलश्चन्दनरसः।
अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिक शरः
किमस्या नो प्रेयो यदि परं सह्यस्तु विरहः।।

'इयं गेहे लक्ष्मीः' सीता जी हमारे घर की लक्ष्मी हैं, गृहलक्ष्मी हैं वे। और पत्नियाँ श्रीमती होती हैं और ये 'श्री' हैं। ये श्रीमती नहीं साक्षात् श्री हैं। इसलिये, हे अग्निदेव, उन मेरी गृहलक्ष्मी को आप वापस कर दें, जो मुझसे अब कभी अलग नहीं हो सकतीं और जब सीता जी आ जाएँगी, तब ही मैं अयोध्या का राजा बनूँगा। 'यस्यां' सीता जी के आ जाने पर मैं अब 'गां' अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी को प्राप्त करूँगा। स्वर्ण से भरा हुआ भण्डार, राजकोष सम्पूर्ण पृथ्वी को, पृथ्वी के सोने, चाँदी, हीरे मोती मणि माणिक के भाण्डागार को प्राप्त करूँगा, घोड़ों को प्राप्त करूँगा, अपने सेवकों को प्राप्त करूँगा अर्थात् मैं पूरे भूमण्डल का राजा बनूँगा जब मेरी रानी सीता जी आ जाएँगी। इसलिये हे अग्निदेव, अब तुम मेरी गृहलक्ष्मी को लौटा दो। मैंने यही तो कहा था कि जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँगा, तब तक ये अग्नि में रहेंगी। अब तो राक्षसों का नाश हो चुका! विभीषण राजा बन चुके। अब मुझे राजा बनना है तो मुझे मेरी राज्यलक्ष्मी चाहिये। मुझे मेरी सीता चाहिये। बिना उनके अब मैं सिंहासन पर नहीं बैठूँगा–

कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता।।

सीता जी के साथ अब रामचन्द्र जी स्वर्ण के सिंहासन पर बैठेंगे तब चित्त में चेत होगी क्योंकि अयोध्या तो मूर्च्छित पड़ी है। मेरी अयोध्या के लोग मूर्च्छित पड़े हैं। चित्रकूट में उन्होंने भगवान से वरदान माँगा है–

राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी।।

इसलिये जब तक सीता जी मेरे पास नहीं आएँगी, तब तक मैं पृथ्वी का राजा नहीं बनूँगा और तब तक मुझको न स्वर्ण मिलेगा, न स्वर्ण के भण्डार मिलेंगे, न पुरुष मिलेंगे। कुछ भी नहीं मिलेगा। इसलिये–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

और स्पष्ट सुनिये। अब भगवान राम तीसरा छन्द पढ़ रहे हैं–

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्।।

भगवान राम तीसरे छन्द को पढ़ते भी जा रहे हैं और हवन भी करते जा रहे हैं। घी का हवन भी करते जा रहे हैं। स्वयं अग्नि में हवन कर रहे हैं और घी डाल रहे हैं। देवता, वानर सब चकित हैं कि ये क्या हो रहा है ? सीता जी को इन्हें निकालना चाहिये पर ये तो स्वयं अग्नि को प्रज्ज्वलित करते जा रहे हैं। पत्नी अग्नि में खड़ी

हैं तो इनको अग्नि को बुझाना चाहिये कि और जलाना चाहिये, पर ये तो और हवन कर रहे हैं। इन्हीं मन्त्रों को पढ़ते जा रहे हैं 'स्वाहा' और हवन कर रहे हैं। देख लो सब लोग यह नहीं है कि घी कम था, इसलिये सीता जी नहीं जली होंगी, तो लो घी डालता जा रहा हूँ। लंका से मँगवाकर खूब घी डाल रहे हैं। कामधेनु का घी ले आए कि आज खूब हवन करूँगा।

'अश्वपूर्वां', जिनके आगे-आगे घोड़े चलते हैं, 'रथमध्यां' जिनके अगल बगल में रथ चलते हैं। मध्यभाग के व्यूह में रथ चलते हैं। 'हस्तिनादप्रबोधिनीम्' हाथियों के घण्टे के नाद से जिनकी नींद खुलती हैं। साक्षात् दिशाओं के दिग्गज जब घण्टा बजाते हैं, तब भगवती जी की नींद खुलती हैं। जैसे हम लोग 'अलार्म' बजाते हैं तो दिग्गजों के घण्टों का नाद ही जिनका अलार्म है, ऐसी 'श्रियं देवीमुपह्वये' श्री को अपनी देवी के रूप में, पत्नी के रूप में मैं अपने निकट बुला रहा हूँ। 'श्रीर्मा देवी जुषताम्' ऐसी श्री जी अब देवी रूप में, पत्नी रूप में, मेरा सेवन करें। मुझसे प्रेम करें। जुष् प्रीति सेवनेव हो।' हे सीते अब आप मुझसे प्रेम करें। जगत के कल्याण के लिये मैने अपनी प्राणप्रिया को कष्ट दिया। अग्नि में रक्खा-

तुम पावक महुँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

इसीलिये देखो, पहले उपक्रम में कहा-

जनकसुता सन बोले बिहँसि कृपा सुख वृन्द।।

और हँसे क्यों ? तब कहा - 'माया हास बाहु दिगपाला।' उनको माया प्रकट करनी थी। माया की सीता बनानी थी, इसलिये प्रभु हँसे!

राक्षसों का नाश हो गया, अब सीता जी मेरे पास आएँ!

अब सीता जी मुस्कुरा रही हैं कि वाह! अब मुझे बुला रहे हैं ? जाइये, दस महीने तक जिसको बुलाया था, उसी के साथ जाइये। हम नहीं आते! दिखा दिया बहूरानी ने अँगूठा कि जाइये, हम नहीं आते! अब क्या होगा ? परन्तु प्रभु को विनती करते देखकर थोड़ा सा आर्द्र भी हो गईं। चेहरे पर आर्द्रता आ गई। कितनी सुन्दर लीला हो रही है! मुझसे आपने अग्नि में रहने के लिये कहा पर अग्नि मुझको जला नहीं पाए। दूसरों के लिये अग्नि, अग्नि बने पर मेरे लिये तो उन्होंने शीतलता प्रदान की। जैसे बिजली, ठण्ड में 'हीटर' की व्यवस्था करती है और गर्मी में 'ए.सी.' की व्यवस्था कर देती है। इस अग्नि ने और लोगों को तो 'हीटर' दिया पर मुझको 'ए.सी.' दिया। चकाचक आनन्द हो गया!

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारां आर्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्।।

अब भगवान कहते हैं 'कां' कां माने 'सुखस्वरूपपिणी' जो साक्षात् सुखस्वरूपिणी हैं। 'सोस्मितां' सुस्मित था पर वेद के कारण 'प्रसोदरादीनि यथोपदिष्टम्' से 'ओकार' हो गया। जो मन्द-मन्द मुस्कुरा रही हैं। इधर, मैं तो रो रहा हूँ और वो मुस्कुरा रही हैं। 'हिरण्यप्राकारां' लग रहा है कि अग्नि है पर अग्नि नहीं मानों ऐसा लग रहा है जैसे स्वर्ण की चहारदीवारी में स्वर्ण के महल में विराजमान हैं। राम जी को दिखाई पड़ रहा है कि अग्नि ने सीता जी को स्वर्ण की चहारदीवारी वाले स्वर्ण के महल में रक्खा है। 'तुम पावक महँ करहु निवासा' तो क्या अग्निदेव अपनी बहूरानी को बिना महल के रक्खेंगे ? अग्नि ने अपनी बहूरानी के लिये सोने का महल बनाया है 'हिरण्यप्राकारां' हिरण्य ही जिसका प्राकार है अर्थात् स्वर्ण की जहाँ चहारदीवारी है। 'आर्द्रां' जो स्वयं आर्द्र हैं। मेरे प्रति जिनकी आँखों में प्रेम के आँसू हैं अथवा बालकों पर कृपा करने के लिये जो करुणामयी हैं। 'ज्वलन्तीं' जाज्वल्यमान हैं। प्रकाशमान हैं। जिनके सामने किसी की आँख नहीं ठहर पा रही है। 'तृप्तां' जो स्वयं मेरे प्रेम से तृप्त हैं। संसार में जिनको कुछ भी नहीं चाहिये। 'तर्पयन्तीं' दूसरों को जो सन्तुष्ट कर रही हैं। क्योंकि-

लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे।।

जिनके निहारने मात्र से रंक भी लोक दिग्पाल बन जाता है और सारी सिद्धियाँ हाथ जोड़कर जिनकी सेवा करती रहती हैं। तभी तो सिद्धि का प्रयोग सीता जी ने अपने विवाह में किया क्योंकि जनक जी बेचारे, सामान्य राजा। उन्होंने सोचा कि केवल अयोध्या के लोग विवाह में आएँगे और यद्यपि उनको भी सँभालना मेरे लिये कठिन होगा, क्योंकि जनक जी के लिये चक्रवर्ती सम्राट् को बुलाना कठिन तो है ही अब एक मुख्यमन्त्री यदि राष्ट्रपति को बुलाए तो उसके लिये कठिन तो है ही। फिर भी कुछ तो काम चला सकता है परन्तु इधर नारद जी के मन में अपूर्व उत्साह है। नारद जी ने कहा कि नहीं, यह कोई साधारण वरयात्रा अर्थात् बारात नहीं है। यह राघवेन्द्र श्रीराम और सीता जी के विवाह की बारात है, इसलिये केवल अयोध्या के लोग ही नहीं जाएँगे। उनसे पूछा गया कि इस विवाह में नाई कौन बनेगा ? तब नारद जी ने कहा कि मैं ही नाई बन जाऊँगा।

भुवन चारि दस भरेउ उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिबाहू।।

चौदहो भुवनों में नारद जी न्यौता दे आए कि सबको बारात में चलना है। अब इतनी बड़ी तो बारात और जनक जी बेचारे इतने सीधे कि पहले 'दधि चिउरा उपहार अपारा' उन्होंने दही चिउड़ा भिजवा दिया। एक तो ठण्डी का महीना और ठण्डी में सायंकाल किसी को दही खिला दो तो कैसी परिस्थिति बनेगी ? ठण्डी में तो गरम वस्तु देनी चाहिये थी। सीता जी ने कहा कि ये तो 'प्रथमग्रासे मक्षिका पात।' जब पहले ही ऐसी अव्यवस्था हो रही है, तब तो बाराती गरियाएँगे और यही कहेंगे कि सालों ने कुछ भी नहीं करा। अब क्या होगा ? तब सीता जी ने कहा कि भैय्या, इनसे कुछ नहीं सँभलेगा और तब उन्होंने सिद्धियों का प्रयोग कर दिया-

जानी सिय बरात पुर आई। निज महिमा कछु प्रगटि जनाई।।

सीता जी ने कहा कि मेरे बाबू जी की अपकीर्ति नहीं होनी चाहिये, उनका अपमान नहीं होना चाहिये। इसलिये तुरन्त अपनी महिमा का प्रयोग किया-

हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई। भूप पहुनई करन पठाई।।

तब सीता जी ने सारी सिद्धियों को बुला लिया, जो सेवा करती थीं।

जब सीता जी ने गंगा जी से मान्यता मानी कि-

सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउब मोरी।।
पति देवर सँग कुशल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी।।

कितना विशाल व्यक्तित्व है सीता जी का! सीता जी कहती हैं कि हे भगवती, जब मेरा मनोरथ पूरा होगा, पति और देवर के सहित यदि मैं कुशल अयोध्या लौटी, तो मैं आपकी पूजा करूँगी।

यहाँ सीता जी इतना आनन्द कर रही हैं कि सिद्धियों को बुला लिया और कहा कि महाराज की पहुनाई करो और देवताओं की पूरी व्यवस्था करना। किसी प्रकार की कमी नहीं रहनी चाहिये। सब (वी०वी०आई०पी०) अति महत्त्वपूर्ण लोग हैं।

तब सिद्धियों ने ऐसी व्यवस्था करी कि-

सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास।
लिये सम्पदा सकल सुख, सुरपुर भोग बिलास।।

पूरे देवलोक का पूरा-पूरा व्यवस्थापन उपस्थित करा दिया। प्रत्येक बाराती को सुन्दर-सुन्दर फ्लैट मिले। जो चाहो खाओ, पियो, आनन्द करो।

अब देवता बड़े प्रसन्न हो रहे हैं। सब कह रहे हैं कि वाह जनक जी! कितनी सुन्दर व्यवस्था है! इतनी सुन्दर व्यवस्था तो कोई कर ही नहीं सकता!

बिभव भेद कछु काहु न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना।।

जनक जी तो बेचारे जानते ही हैं कि मेरे पास क्या है ? सब तो जनक जी की व्यवस्था की प्रशंसा कर रहे हैं। इन्द्र ने कहा कि चक्रवर्ती जी महाराज, इतनी बड़ी व्यवस्था तो मैंने कहीं नहीं देखी!

दशरथ जी ने कहा कि क्या मेरा साधारण समधी है ?

राम जी सब जान गए–

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी।।

राम जी समझ गए कि यहाँ यह सब पूरा का पूरा उधर का प्रकरण है। हमारा गृहमन्त्रालय सक्रिय हो गया। इसलिये, 'कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारां' स्वर्ण का जिनका प्राकार है, 'आर्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्' ऐसी 'पद्मेस्थितां' अग्नि के ऊपर कमल बिछा है और उस पर वो खड़ी हैं, ऐसी कमल के समान 'पद्मवर्णां' कोमलांगी श्री जी को मैं बुला रहा हूँ।

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

क्या आनन्द हो रहा है!

अब–

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं, श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये, अलक्ष्मीर्मेनश्यतां त्वां वृणे।।

कहीं-कहीं पर 'त्वां वृणोमि' पाठ है परन्तु 'त्वां वृणे' पाठ मुख्य है।

अग्नि ने कहा कि देखिये, अब इनका नया जन्म हो रहा है। अब ऐसे मैं इनको नहीं दूँगा। अब तो इनसे विवाह करना पड़ेगा।

राम जी ने कहा कि बिल्कुल ठीक है। अब इनका मैं फिर से वरण कर रहा हूँ, 'त्वां वृणे।' 'वृ वरणे' मैं वरण कर रहा हूँ, 'चन्द्रां' जो चन्द्रमुखी हैं। 'प्रभासां' चारो ओर से जो देदीप्यमान हैं। 'यशसा ज्वलन्तीं' यश के द्वारा जो प्रकाशमान हो रही हैं। 'देवजुष्टां' देवता जिनकी सेवा करते हैं और यही देवता बानर बनकर जिनकी सेवा कर रहे हैं और इन्हींके लिये तो अपने प्राण वानरों ने दिये, और किसके लिये दिये? 'लोके देवजुष्टामुदाराम्।'

'तां पद्मिनीमीं' उस पद्मिनीं अर्थात् कमल को धारण करने वाली 'ई' अर्थात् लक्ष्मी, उन अपनी गृह की राज्यलक्ष्मी की शरण स्वीकार कर रहा हूँ। उनका

शरणागत हो रहा हूँ। आज वे मेरी शरण्य हैं और मैं उनका शरणागत हूँ। यदि सीता जी सहयोग न करतीं तो मैं नरलीला नहीं कर पाता। ऐसा कोई पत्नी सहयोग करेगी कि पति की इच्छा मानकर, अग्नि में प्रवास कर ले, इसलिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ और मैं उनका वरण कर रहा हूँ क्योंकि 'अलक्ष्मीर्मे नश्यतां' सीता जी के बिना मैं दरिद्र हो चुका हूँ। सीता जी मेरा धन हैं, तो उनकी कृपा से ही मेरी 'अलक्ष्मी' माने दरिद्रता दूर हो जाएगी। इसलिये मैं अपनी दरिद्रता दूर करने के लिये, सीता जी का वरण कर रहा हूँ।

अग्निदेव मुस्कुराए और कहा कि वरण करते समय तो महावर चाहिये। चरण लाल होने चाहिये। यहाँ कोई नाई या नाइन है क्या, जो आपके चरण में महावर लगाए ? कैसे वरण होगा?

राम जी ने कहा कि बात ऐसी है कि जो उपमा मेरे विवाह काल में दी गई 'केकि कण्ठ द्युति श्यामल अंगा।' वही उपमा उत्तरकाण्ड के मंगलाचरण में भी मिलेगी 'केकीकण्ठाभनीलं.....' इसका तात्पर्य यही है कि वहाँ तो सामान्य लाल रंग मेरे चरण में लगाया गया था और यहाँ तो रावण के लाल-लाल खून का ही महावर मैने लगा लिया है-

राम शरासन तें चले तीर रहे न शरीर, हड़ावरि फूटीं।
रावन धीर न पीर गनी लखि लै कर खप्पर जोगिनी जूटीं।।

योगिनियाँ खून पी रही हैं पर भगवान राम सोचते हैं कि रावण का कुछ अंश तो प्रयाग जाना चाहिये। अस्थियाँ ले नहीं जाई जा सकतीं क्योंकि पुष्पक मृतक को ले जा नहीं सकता। इसलिये कहा कि कोई बात नहीं। रावण के खून के बिन्दु अपने शरीर पर ले लूँगा और मैं पुष्पक पर बैठूँगा। जब प्रयाग पहुँचकर मैं प्रयाग में नहाऊँगा, तो मेरे शरीर पर लगा हुआ रावण का खून जब प्रयाग में जाएगा तो कम से कम रावण का रक्त तो प्रयाग में पहुँच जाएगा और इसका कल्याण हो जाएगा! इसलिये

शोनित छींट छटानि छटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटीं।
मानो मरक्कत-शैल बिशाल पे फैलि चलीं बहु बीरबहूटीं।।

कहते हैं कि रावण के शरीर से निकलकर खून के छींटे जब भगवान के शरीर पर आए तो इतने सुन्दर लग रहे हैं, एक तो भगवान का सुन्दर श्यामल अंग और उस पर रावण के खून के लाल-लाल छींटे, ऐसा लग रहा है मानों नीलम के पर्वत पर

बीरबहूटी माने लाल चिड़िया चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गई हैं और इसी बात को गोस्वामी जी ने भी रामचरितमानस जी में कहा–

भुजदण्ड शर कोदण्ड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने।।

भगवान के श्री विग्रह पर रावण के शरीर के खून के कण इतने सुन्दर लग रहे हैं मानों तमाल के वृक्ष पर रायमुनी माने लाल चिड़िया बैठी है। भगवान का शरीर तमाल का वृक्ष है और रावण के शरीर के खून के छींटे रायमुनी चिड़िया हैं। इसलिये तब कहा–

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे।।

मैं आपका वरण करता हूँ।

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

इसलिये–

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च वाह्या अलक्ष्मीः।।

अब कहते हैं कि हे 'आदित्यवर्णे', सूर्य के समान चमकने वाली अथवा 'आदित्यवर्णे' 'आदित्यं वर्णयति' आपने मेरे कुल में विवाहित होकर, अपने से सूर्यनारायण की कीर्ति को बढ़ा दिया। मेरा वंश धन्य हो गया। इसलिये, 'तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः' यह बिल्व नामक वनस्पति वृक्ष आपकी ही तपस्या का तो फल है और उसके जो फल आपकी तपस्या से प्राप्त हुए हैं, यह बिल्व का फल (आपने देखा होगा कि बिल्ब भी हवन में लिया जाता है। बिल्व का भी हवन होता है। सप्तशती वाले हवन में तो प्रयुक्त होता ही होता है।) हमारे वाह्य, माया, छल, अन्तराय 'वाह्य अलक्ष्मी' अर्थात् बाहरी दरिद्रता को भी नष्ट कर दे! आपके बिना मैं दरिद्र हो चुका हूँ, इसलिये आप हमारी दरिद्रता को नष्ट करने के लिये शीघ्र ही पधारें! अब आपकी अग्नि में प्रवास की अवधि पूरी हो गई। राक्षसों का नाश हो चुका।

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

हे सीते, आप जब आएँगी तो यश भी मुझे मिलेगा और कुबेर भी मेरे पास आएँगे और कुबेर के साथ–साथ उनका पुत्र मणिग्रीव भी मेरे पास आएगा।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मिराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे।।

हे कुबेर, अब तुम मेरे पास आ जाओ! 'देवसखः' हे 'देवस्य महादेवस्य सखा इति देवसखः' हे महादेव के मित्र कुबेर, 'मणिना सह' अर्थात् मणिग्रीव के साथ जल्दी से पधार जाओ। अपना विमान लाओ क्योंकि रावण के मरने के पश्चात् विमान आपके पास चला जा चुका है। अब मैं सीता जी को पुष्पक विमान से अयोध्या ले जाउँगा, इसलिये कुबेर को बुला लिया।

दूसरी बात, कुबेर का आना इसलिये आवश्यक है क्योंकि मुझे धन-धान्य चाहिये। मेरी सीता जी जब आएँगी तो उनकी भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ होंगी, तब मैं कैसे उनको पूर्ण करूँगा ? इसलिये कुबेर को बुला लिया 'उपैतु मां' हे कुबेर, मेरे निकट आ जाओ! मणिग्रीव के साथ मेरे निकट आ जाओ! हे यश की स्वामिनी कीर्ति, तुम भी आ जाओ! क्योंकि 'प्रादुर्भूतोऽस्मिराष्ट्रेऽस्मिन्' भारतराष्ट्र में मैंने जन्म लिया है इसलिये अब 'कीर्तिमृद्धिं ददातु मे' हे सीते, अब आप मुझे कीर्ति भी दें और ऋद्धि माने धन भी दें। क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अग्निदेव ने कहा कि आप इनका क्या प्रयोग करेंगे ?

भगवान राम ने कहा कि ये मेरी पत्नी हैं।

अग्निदेव ने कहा कि पत्नी हैं तो ये क्या आपके यहाँ सन्तान-उत्पादन में ही सहायता करेंगी ? क्या पुत्र के उत्पादन के लिये ही आप इनको बुला रहे हैं ?

भगवान ने कहा कि नहीं।

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।।

हे अग्निदेव, जब सीता जी मुझे मिलेंगी तो मैं सारे संसार की भूख मिटा दूँगा। जब मैं राजा बनूँगा तो मेरे संसार में कोई भूखा नहीं रहेगा।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।।

मैं किसी को भूखा नहीं रहने दूँगा क्योंकि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। सतयुग का नियम था कि एक बार जोतकर बो दो तो इक्कीस बार फसल काटने को मिलती थी, परन्तु रामराज्य में कहा कि यहाँ जोतना नहीं पड़ेगा 'अकृष्टपच्या'

तेरे राय राज दशरथ के बई लई बिनु जोते।

यहाँ जोतना नहीं पड़ता। बीज डाल दो, जब तक तुम जीवित रहोगे, तब तक अपने आप फसल उगती रहेगी। भगवान राम कह रहे हैं कि मैं किसी को भूखा नहीं रहने दूँगा। सबको मेरे राज्य में स्वच्छ पेयजल मिलेगा। कीटनाशक दवाओं से भरा हुआ पेयजल नहीं मिलेगा। मैं अवधबिहारी हूँ। मेरे राज्य में कोई भूखा नहीं रहेगा। मेरे राज्य में कोई प्यासा नहीं रहेगा। मेरे यहाँ कोई मलिन अर्थात् गन्दा नहीं रहेगा। मेरे यहाँ पर्यावरण स्वच्छ होगा। गन्दगी नहीं होगी। 'ज्येष्ठामलक्ष्मीं' मैं दरिद्रता नहीं रहने दूँगा। दरिद्रता को नष्ट करूँगा। धन के अभाव को 'नाशयाम्यहम्' नष्ट करूँगा! इसलिये हे सीते, 'अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्' मेरे घर में जो अभूति आ गई है, धन का अभाव आ गया है, ऐश्वर्य और 'असमृद्धि' अर्थात् धन का अभाव आ गया है। मन्थरा ने सब लीप दिया है 'सर्वां निर्गुण में गृहात्' मेरे घर से उसे नष्ट कर दो! अयोध्या को धनधान्य सम्पन्न, विभूतियुक्त, समृद्धियुक्त बना दो। क्योंकि–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

आठ मन्त्र हो गए। आठ आहुतियाँ पड़ गईं। एक-एक आहुति में, एक-एक भुवन का घी डाल रहे हैं भगवान राम। अभी सीता जी चुप हैं और अग्निदेव भी चुप हैं। नवाँ मन्त्र भगवान राम पढ़ते हैं–

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्।।

भगवान राम कहते हैं कि अग्नि, अब मैं श्री जी को अपने पास बुला रहा हूँ, वो मेरी पत्नी हैं, क्या तुम यह नहीं जानते हो ? 'गन्धद्वारां' माने 'गन्धः गन्धवती पृथ्वी द्वारं जन्मद्वारं यस्याः' गन्धवती पृथ्वी ही जिसका जन्मस्थान है, जो पृथ्वी से प्रकट हुई है। 'दुराधर्षां' रावणादि जिनको धृष्ट नहीं कर सके, जिनका धर्षण नहीं कर सके, कोई जिनका अपमान नहीं कर सका। रावणादि जिनको वश में नहीं कर सके। जिन्होंने शंकर का धनुष घसीटा। 'नित्यपुष्टां' जो निरन्तर पुष्ट हैं, स्वस्थ रहती हैं। 'करीषिणीम्' फिर भी गोबर लेकर जो यज्ञ स्थल को लीपा करती हैं, स्वच्छ किया करती हैं 'ईश्वरीं सर्वभूतानां' सारे संसार की जो ईश्वरी हैं, ऐसी श्री को मैं 'उप ह्वये' अपनी पत्नी के रूप में अपने पास बुलाना चाह रहा हूँ, क्योंकि–

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

नौ आहुतियाँ हो गईं। सीता जी अभी चुप हैं।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।

भगवान राम कहते हैं कि हे भगवती आप जब आएँगी 'मनसः कामं' मैं मन की सारी कामनाओं को पूर्ण कर लूँगा। जब आप होंगी तब मेरी कामनाएँ पूर्ण होंगी। बिना आपके मैं पूर्णकाम नहीं बन सकता।

सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। देखि राम भे पूरनकामा।।

अयोध्या के लोगों को अब तक राम जी नहीं मिले थे क्या ? इसके पहले वो राम जी को देख कर पूर्णकाम नहीं हुए परन्तु जब सीता जी आ गईं तो-

आवत देखि बरातिन्ह सीता। रूप राशि सब भाँति पुनीता।।
सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। देखि राम भे पूरनकामा।।

सबने सीता जी को प्रणाम किया और देखा कि अब राम जी पूर्ण हो गए अथवा सीता जी के सहित राम जी को देखकर अब बाराती पूर्णकाम हो गए कि अब ठीक है। इसलिये-

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।

मैं आपकी कृपा से ही अपने मन की कामना को 'अशीमहि' माने प्राप्त करूँगा और वाणी के 'आकूतिं' माने संकल्प को और वाणी के सत्य-भाषण को भी मैं प्राप्त करूँगा और 'पशूनां रूपमन्नस्य' 'पशूनां अन्नस्य रूपं' अनेक प्रकार के पशु और अनेक प्रकार के अन्नों को मैं प्राप्त कर लूँगा। 'मयि श्रीः श्रयतां यशः' और मैं यश को प्राप्त करूँगा। इसलिये हे श्री, अब मेरे समीप 'श्रयतां' आप श्रयण कीजिये, क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

समय पूर्ण हो रहा है अग्निदेव!

अब कहते हैं-

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।।

मैं जानता हूँ कि इन्हीं सीता जी का अंश लक्ष्मी जी ने ('कर्दमेन' में षष्ठी के अर्थ में तृतीया है) कर्दम की प्रजा अर्थात् कर्दम की सातवीं पुत्री 'ख्याति' में जन्म लिया था। सीता जी की अंश लक्ष्मी जी का पहला अवतार 'ख्याति' में हुआ था।

पहले श्री जी ने वहीं अवतार लिया था। इसीलिये 'श्रीपति' होने से भगवान नारायण भृगु जी के दामाद अर्थात् जमाई भी लगते हैं। फिर भी भृगु जी ने उनकी छाती में लात मारी थी।

यही 'श्री' जो कर्दम की प्रजा में उत्पन्न हुई थीं 'मयि सम्भव कर्दम।' हे कर्दम ऋषि! अब तुम यह कृपा करो कि अब उन्हीं श्री जी को मेरे सामने प्रकट कर दो! 'श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।' क्योंकि अब मैं कमल धारण करने वाली, सारे संसार की माता देवी श्री को अपने निकट बुला रहा हूँ, क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।।

बारहवें मन्त्र में भगवान राम कहते हैं कि भगवती सीता जी जब मेरे यहाँ आएँगी तो 'आपः सृजन्तु स्निग्धानि' हमारे वरुण देवता जो जल के देवता हैं और जलाभिमानिनी सरजू माता, हमसे प्रसन्न होंगी बिना सीता जी के सरजू माता भी हमसे असन्तुष्ट हो रही हैं और वास्तव में जबसे सीता जी गई हैं, सरजू माता निर्मल जल नहीं बहीं। जब सीता जी के आने का समय हुआ तब कहा-

बही सुहावनि त्रिविध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।

चौदह वर्ष पर्यन्त सरजू जी निर्मल जल नहीं बहीं। 'आपः सृजन्तु स्निग्धानि' अब सरजू माता भी हमारे यहाँ स्निग्ध पदार्थों की रचना करेंगी। सुन्दर बढ़िया जल हो और जल के पदार्थ भी सुन्दर-सुन्दर हों। पूरा वातावरण मेरा चिकना हो जाए, रूखा न रहे। ' चिक्लीत वस में गृहे' हे चिक्लीत, हे अग्निदेव, अब तुम मेरे घर में निवास करो क्योंकि मैं अग्निहोत्र करूँगा। बिना सीता जी के मैं अग्निहोत्र नहीं कर रहा हूँ और बिना सीता जी के मेरे घर में रसोईं नहीं बन रही है क्योंकि-

राम बिना मोरी सूनी अयोध्या,
लछिमन बिनु ठकुराई।
सीता बिना मोरी सूनी रसोइयाँ
कैसेक ब्यञ्जन बनाई।
आजु मोहे रघुबर की सुधि आई।

इसलिये 'नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले' अर्थात् 'च मे कुले मातरं श्रियं

निवासय।' अब तक तो मैंने उनको 'तुम पावक महँ करहु निवासा' कहा था कि अग्नि में निवास दो, अब मैं कह रहा हूँ, नहीं 'मे कुले निवासय' अब मेरे कुल में उनसे निवास करने के लिये कहो क्योंकि अब मैं उन्हें अयोध्या में निवास दे रहा हूँ क्योंकि जब तक निशाचरों का नाश करना था, तब तक उन्होंने अग्नि में निवास किया अब 'नि च देवीं मातरं' यहाँ पर सूत्र है 'व्यवहिताश्च' 'नि' तृतीय चरण में है और अन्वित होगा चतुर्थ चरण में।

नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।।

और होगा 'च मातरं श्रियं मे कुले निवासय।। इति पाण्डित्यम्।

इसलिये, हे अग्निदेव!

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।

'आर्द्रां' हे अग्निदेव, जो निरन्तर करुणा से आर्द्र रहती हैं। 'पुष्करिणीं' जो सारे संसार का पोषण कर रही हैं। 'पोषणं पुः तत्करोति पुष्करिणी ताम्' 'पुष्टिं' जो स्वयं पुष्टि स्वरूपिणी हैं। पोषणं तदनुग्रहः। निर्व्याज करुणा को ही शास्त्र ने पुष्टि कहा। बिना किसी हेतु के जो करुणा करती हैं। 'पिंगलां' जो स्वयं पीले वर्ण की हैं। 'पद्ममालिनीम्' कमल की माला पहने हैं और उस कमल की माला को हे अग्निदेव, तुम जला नहीं पाए! 'चन्द्रां' अग्नि में होकर भी जो चन्द्रमा के समान शीतल हैं। 'हिरण्मयीं' जो स्वर्ण से लसी हुई हैं ऐसी 'मे लक्ष्मीं जातवेदः म आ वह' मेरी गृहलक्ष्मी को हे अग्निदेव, तुम लौटा दो, नहीं तो झगड़ा हो जाएगा। क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

हे अग्निदेव, अब कृपा कर दो। देर मत करो!

आर्द्रां यशकरिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।

हे अग्निदेव, 'आर्द्रां' जो निरन्तर आर्द्र हैं। 'यशकरिणीं' यशः करोति इति यशकरिणी, जो यश को बढ़ाती हैं। 'यष्टिं' जो दुबली पतली सोने की छड़ी के समान हैं 'सुवर्णां यष्टिं'। 'सूर्यां' जो मेरी नई नई बहू हैं। 'सूर्या नववधूः प्रोक्ता' सूर्या माने नवोढा वधू, नव-विवाहिता पत्नी। जो आज मेरी नव-विवाहिता पत्नी हैं। 'हिरण्मयीं' स्वर्ण की माला धारण किये हैं। सूर्य के समान प्रकाशित और नई वधू के समान

चमकती हुई, ऐसी 'हिरणमयीं' सुवर्ण से युक्त मेरी गृहलक्ष्मी को अब तुम लौटा दो। क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अब पन्द्रहवाँ मन्त्र कहते हैं-

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्।।

हे अग्निदेव, अब आप उस मेरी लक्ष्मी को दीजिये 'तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्' जो मुझे छोड़कर कभी नहीं जाएगी!

'यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावोदास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्' अर्थात् जिनकी कृपा से मैं प्रभूत माने बहुत सा स्वर्ण प्राप्त करूँगा (यस्यां सुवर्णं प्रभूतं) बहुत स्वर्ण के भण्डार प्राप्त करूँ। जिनकी कृपा से मैं गौवें, दास, अश्व, राज्य, पूरा साम्राज्य प्राप्त कर लूँ, ऐसी मेरी गृहराज्यलक्ष्मी को आप लौटा दीजिये। क्योंकि-

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौं निशाचर नासा।।

अभी हवन चलता जा रहा है। अग्निदेव ने कहा कि नहीं, तुम सोलह कलाओं वाले हो, जब तक सोलह हवन नहीं होंगे, तब तक षोडशी तुम्हारे पास नहीं आएगी। इसलिये तब सोलहवाँ मन्त्र पढ़ा।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।।

भगवान कहते हैं कि जो प्रतिदिन इस प्रकार प्रयत्नशील होकर पन्द्रह ऋचाओं से आपकी स्तुति करेगा, वहाँ श्री मिलेगी। तो जब सबको मिलेगी तो मुझे क्यों नहीं मिल रही है।

यह 'फलश्रुति' है। जब फलश्रुति हो गई तो मुझे फल मिलना चाहिये। इतना जब सुना तब-

तब अनल भूसुर रूप गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इन्दिरा रामहिं समर्पीं आनि सो।।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति शोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।।

तब सबके देखते ही देखते अग्निदेव स्वयं ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए और

अग्नि की लपटों को बुझाया। सीता जी उसी प्रकार अलंकार धारण किये हैं, कुछ भी नहीं जला। श्रुति जगत में जो विदित है 'श्रीसूक्त', उसीकी प्रतिपाद्य, भगवती सीता जी को ले आए और कहा कि लीजिये राघव- 'जिमि छीरसागर इन्दिरा रामहिं समर्पी आनि सों।' जिस प्रकार क्षीरसागर ने इन्दिरा को, नारायण को सौंपा था, उसी प्रकार सीता जी को लेकर आए। लक्ष्मी जी जब रूठकर समुद्र में चली गईं थीं तब क्षीरसागर ने उनको नारायण को सौंपा था, यही यहाँ पर संकेत है। उस बार तो लक्ष्मी जी रूठकर समुद्र में चली गई थीं, तब समुद्र ने उन्हें सौंपा था और तब मन्थन किया था पर इस बार तो रूठकर नहीं, सन्तुष्टि से भगवती जी ने अग्नि में प्रवेश किया था और अब अग्निदेव भगवती सीता जी को भगवान राम को सौंप रहे हैं।

सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति शोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहु कनक पंकज की कली।।

भगवती जी श्रीराम जी के वाम भाग में अत्यन्त शोभा-सम्पन्न होकर उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानो नीले कमल के वाम-भाग में स्वर्ण पंकज की कलिका विराजमान हो रही हो। अर्थात् पूर्ण कौमार का संकेत यहाँ पर है कि अभी कली है। इस पर अभी भ्रमर नहीं मँडराया है। 'तुम पावक महँ करहु निवासा' इसने अग्नि में निवास किया तो वहाँ भ्रमर क्या मँडराएगा ? आज तो राम भी भ्रमर नहीं बन पाए हैं। नीले कमल के सामने स्वर्ण-कमल की कलिका भगवती सीता जी विराजमान हो गईं। नरलीला का यहाँ उपसंहार हो गया। भगवती सीता जी के साथ श्री राघवेन्द्र अब श्री अयोध्या में पधारे और-

श्री सहित दिनकर वंश भूषन काम बहु छवि सोहई।

सीता जी के सहित सिंहासन पर बैठे।

आनन्द हो गया। लोगों ने जय-जयकार की।

।।श्री सीताराम भगवान की जय।।

भगवती जनकनन्दिनी के साथ भगवान श्रीराम जी ने राज्यसिंहासन पर विराजकर सदा-सदा के लिये भारतीय जनता का मंगल किया है, करते रहे हैं और करते रहेंगे। हम तो यही भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हमारा भारत एक हो, अखण्ड हो, सार्वभौम हो और एक बार फिर अपने जगद्गुरुत्व की गरिमा को प्राप्त करे। एक बार फिर जगद्गुरु बने। इक्कीसवीं शती का भारत सारे विश्व का वन्दनीय भारत बन जाए और सब प्रकार से समृद्ध हो।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

सीताराम जय सीताराम। सीताराम जय सीताराम।

।।सियावर रामचन्द्र भगवान की जय।।

पवनसुत हनुमान जी महाराज की जय

उमापति महादेव जी भगवान की जय

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज की जय

सब सन्तन की जय।

जगद्गुरु स्वामी श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य भगवान की जय।

धर्म की जय हो।

अधर्म का नाश हो।

प्राणियों में सद्भावना हो।

विश्व का कल्याण हो

गौ माता, गंगा माता, भारत माता की जय हो।

।।जय जय श्री सीताराम।।

नवम वाक् पुष्पाञ्जलि सम्पूर्ण

श्री राघवः शन्तनोतु।।

❖❖❖❖